

**‘NAVUDARVAD KE DAUR MEIN HINDI
UPANYASON MEIN ABHIVYAKT KISAN JIVAN’**

A Thesis Submitted in Partial Fulfilment of the Requirement
For the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi



2021

Researcher

INDRA DEV SHARMA

15HHPH10

Supervisor

Dr. J ATMARAM

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad - 500046

Telangana

India

‘नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन’

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबंध



2021

शोधार्थी

इन्द्र देव शर्मा

15HHPH10

शोध-निर्देशक

डॉ. जे. आत्माराम

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत



DECLARATION

I **INDRA DEV SHARMA** (Registration No. **15HHPH10**) hereby declare that the thesis entitled '**NAVUDARVAD KE DAUR MEIN HINDI UPANYASON MEIN ABHIVYAKT KISAN JIVAN**' (नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन) submitted by me under the guidance and supervision of Professor **J ATMARAM** is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga/Inflibnet.

Signature of Supervisor

(Dr. J ATMARAM)

Signature of Student

INDRA DEV SHARMA

Regd. No. 15HHPH10

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled '**NAVUDARVAD KE DAUR MEIN HINDI UPANYASON MEIN ABHIVYAKT KISAN JIVAN**' (नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन) submitted by **INDRA DEV SHARMA** bearing Regd. No. **15HHPH10** in partial fulfilment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As far as I know, This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications :

1. 'KISAN JIVAN KE SANGHARSHON KI TRIWENI'. (APANI MAATI ISBN 2322-0724) NOV- 2017
2. 'BHOOMANDALIKARAN KE DAUR KE HINDI UPANYASON ME ANNDATA 'KISAN' KI KARUN GATHA'. (SAHITYA SETU, ISBN No 2348-6163), JAN-MAR 2019

B. Research Paper presented in the following conferences :

1. KISAN SE MAJDOOR BANA BHARAT KA ANNADATA (NATIONAL), NIGHT COLLEGE OF ARTS COMMERCE ICHALKARANJI, KOLHAPUR 7 DEC 2019.
2. BHOOMANDALIKARAN KE DAUR KE HINDI UPANYASON ME MAHILA KISANON KA SANGHARSH, (NATIONAL) LOKMANYA TILAK MAHAVIDYALAYA, WADWANI, MAHARASHTRA, 7 FEB. 2020.

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.:-

Course Code	Name	Credit	Result
1. 801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2. 802	Research Paper (Project work)	4	Pass
3. 826	Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
4. 827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M. Phil degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code	Name	Grade	Credit	Result
1. 701	Research Methodology	B	4	Pass
2. 721	Modern thought	B	4	Pass
3. 722	Sociology of literature	B	4	Pass
4. 726	Sahitya media aur sanskrauti	B+	4	Pass
5. 750	Dissertation	B+	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor

Head of Department

Dean of the School

अनुक्रमणिका

‘नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन’

भूमिका

पृष्ठ संख्या- 1-10

प्रथम अध्याय

नवउदारवाद की अवधारणा और स्वरूप

पृष्ठ संख्या-11-60

प्रस्तावना

1.1 उदारवाद की परिभाषा

1.2 भारत में उदारवाद की शुरुआत

1.3 नवउदारवाद की परिभाषा

1.4 वाशिंगटन आमराय के विचार और नवउदारवाद

1.5 नवउदारवाद की भूमिका

1.6 भूमंडलीकरण का अर्थ और स्वरूप

1.7 उदारवाद तथा नवउदारवाद में अन्तःसंबंध

1.8 भारत में नवउदारवाद का दौर और उसका स्वरूप

1.9 भारतीय अर्थव्यवस्था सुधार संबंधित नई अर्थनीति

1.10 नवउदारवाद का भारतीय समाज पर प्रभाव

1.10.1 सकारात्मक प्रभाव

1.10.2 नकारात्मक प्रभाव

1.11 नवउदारवाद का कृषक जीवन पर प्रभाव

- 1.11.1 समय की बचत
 - 1.11.2 व्यक्तिगत असमानता
 - 1.11.3 मिलावटी वस्तुओं द्वारा किसानों के साथ धोखाधड़ी
 - 1.11.4 कर्ज की समस्या और किसान आत्महत्या
 - 1.11.5 बी०टी०बीजों का दुष्प्रभाव
 - 1.11.6 किसानों के अस्तित्व की चुनौती
 - 1.11.7 कॉरपोरेट-कृषि का उदय
- निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन का स्वरूप

पृष्ठ संख्या-61-94

प्रस्तावना

- 2.1 आरंभिक दौर के हिंदी उपन्यासों का स्वरूप और किसान-जीवन ।
- 2.2 स्वतंत्रतापूर्व हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन । (1920 ई. – 1947 ई.)
- 2.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन । (1948 ई. – 1969 ई.)
- 2.4 समकालीन हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन । (1970 ई. – 1990 ई.)

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

प्रस्तावना

- 3.1 'बेदखल' : ताल्लुकेदारी प्रथा का शिकार भारतीय किसान
- 3.2 'जमीन अपनी तो थी' : भूमिहीन भारतीय किसान की वेदना
- 3.3 'हिडिम्ब' : किसानों की जमीनों पर पूँजीपतियों की गिद्ध दृष्टि
- 3.4 'हलफनामे' : किसानों का मुआवजा और प्रशासन का खेल
- 3.5 'रेहन पर रघू' : गंवई संस्कृति का बदलता स्वरूप और किसान का जीवन
- 3.6 'आखिरी छलाँग' : कर्ज की मर्ज से परेशान आत्महत्या करता किसान
- 3.7 'अधबुनी रस्सी:एक परिकथा' : चकबंदी अधिकारियों का षड्यंत्र
- 3.8 'नरक मसीहा' : खेती से पलायन होकर मजदूर बनता किसान
- 3.9 'जहां एक जंगल था' : जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण
- 3.10 'गाँव भीतर गाँव' : ग्रामीण राजनीति का शिकार होता दलित समाज और भूमिहीन किसान
- 3.11 'फाँस' : आत्महत्या के फाँस में फँसता भारतीय किसान
- 3.12 'अकाल में उत्सव' : किसान क्रेडिट कार्ड योजना का खोखलापन
- 3.13 'ये जमीन हमारी है' : कॉरपोरेट कंपनियों का बढ़ता प्रभाव
- 3.14 'ताकि बची रहे हरियाली' : जैविक खेती और कॉरपोरेट जगत

निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन

प्रस्तावना

- 4.1 पारंपरिक कृषि में परिवर्तन
- 4.2 गायब होते बैल और गाँव
- 4.3 बाजारवाद का प्रभाव और विदेशी बीजों का प्रयोग
- 4.4 सामूहिक श्रम का हास
- 4.5 पलायन और विस्थापन की समस्या
- 4.6 रासायनिक उर्वरकों का कृषि पर दुष्प्रभाव
- 4.7 बी० टी० बीजों का कृषि पर प्रभाव
- 4.8 कॉरपोरेट जगत और कृषि
- 4.9 किसान - आत्महत्या
- 4.10 भ्रष्ट शासन तंत्र और किसान
- 4.11 कृषक से मजदूर तक
- 4.12 महिला किसान
- 4.13 सरकारी योजनाओं का किसान-जीवन पर प्रभाव

निष्कर्ष

पंचम अध्याय

विवेच्य उपन्यासों की भाषा-शैली

पृष्ठ संख्या-203-251

प्रस्तावना

- 5.1 विषय वस्तु और अंतर्वस्तु
 - 5.2 उपन्यासों के नामकरण की सार्थकता
 - 5.3 उपन्यासों की आंतरिक संरचना
 - 5.4 उपन्यासों की भाषा
 - 5.5 सरकारी तंत्र और प्रशासन की भाषा
 - 5.6 साहूकारों की भाषा
 - 5.7 अंग्रेजी भाषा का प्रयोग
 - 5.8 स्थानीय या आँचलिक भाषा प्रयोग
 - 5.9 मीडिया की उपन्यासों में भाषा प्रयोग
 - 5.10 बिम्ब और प्रतीक
 - 5.11 लोकोक्ति और मुहावरों का रचनात्मक प्रयोग
 - 5.12 उपन्यासों का शिल्प
 - 5.12.1 वर्णनात्मक शैली
 - 5.12.2 संवादात्मक शैली
- निष्कर्ष

उपसंहार	पृष्ठ संख्या-252-263
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची (परिशिष्ट)	पृष्ठ संख्या-264-271
साक्षात्कार	पृष्ठ संख्या-272-283
शोध-आलेख	पृष्ठ संख्या-284-296
शोध-प्रपत्र	पृष्ठ संख्या-297-298

भूमिका

भारत कृषि-प्रधान देश है। भारत के गाँवों में रहने वाले सभी लोगों का जीवन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। यह बड़े दुःख की बात है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक बाद भी हमारे देश के अधिकांश किसान निर्धन हैं। समय बदला, समाज बदला लेकिन किसानों की स्थिति में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है। हालांकि, सरकार द्वारा समय-समय पर कृषि संबंधी सुधार कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं, जैसे कि 'हरित क्रांति'।

भारत में 'हरित क्रांति' के होने से पारंपरिक खेती में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। नए-नए कृषि उपकरणों और वैज्ञानिक-पद्धतियों से खेती होने लगी है, जिससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि हो रही है। उत्पादन में वृद्धि से किसानों की आर्थिक-स्थिति में भी सुधार होगा ऐसा लगता था, लेकिन आज के इस बाजारवादी दौर में किसान हाशिए पर चला गया है। किसान की फसल ही उसकी सबसे बड़ी समस्या बन गई है। फसलों का उचित-मूल्य न मिलने से वह कर्ज की समस्या से घिरता जा रहा है। बिजली, खाद और पानी की समस्याएँ उसे नित-दिन परेशान करती रहती हैं। इस प्रकार कई दृष्टियों से परेशान एवं शोषण का शिकार होता किसान अंततः खुदकुशी करने पर मजबूर हो रहा है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, जो धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है। किसानों के लिए खेती निरंतर घाटे का सौदा होता जा रहा है। किसानों का धीरे-धीरे खेती से मोहभंग हो रहा है। पिछले कुछ दशकों से बड़ी तादात में किसान कृषि से पलायन कर रहे हैं। जिससे उनकी स्थिति दिनोंदिन दयनीय होती जा रही है। किसी समय खेती-किसानी को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, इस संदर्भ में **कवि घाघ** की यह उक्ति प्रसिद्ध है — **‘उत्तम खेती मध्यम**

बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान', लेकिन आज खेती उत्तम न होकर अधम हो रही है और चाकरी आधारित व्यवस्था प्रधान होती जा रही है। वर्तमान समय में भारत के अधिकतर किसान सुल्तानी, जिस्मानी और आसमानी इन तीनों प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

एक समय भारत में जहाँ कृषि को खुशहाल-जीवन का आधार माना जाता था, पर आज कृषि करने वाला किसान तमाम तरह की समस्याओं से परेशान होकर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। स्वतंत्रता के बाद देश में अनेक प्रकार के भूमि सुधार कानून लागू किए गए जैसे- काश्तकारी सुधार, चकबंदी, हदबंदी और बिचौलिया उन्मूलन आदि, लेकिन भ्रष्ट शासन-व्यवस्था में जमींदारों तथा बड़े किसानों की साँठ-गाँठ, कानूनी दाव-पेंच, प्रशासन-व्यवस्था की कमजोरियों के कारण इन पर भी पानी फिर गया। जमींदारों ने हदबंदी के समय अधिकारियों और पटवारियों से साँठ-गाँठ कर अपने रिश्तेदारों, काल्पनिक नामों, और यहाँ तक कि अपनी जमीनों को अपने पशुओं के नाम करवा कर हदबंदी कानून की धज्जियाँ उड़ायी थी।

वर्तमान समय में देश किसान आन्दोलन और कर्जमाफी के दौर से गुजर रहा है। यही कारण है कि वर्तमान समय की राजनीति किसान केन्द्रित होती जा रही है। बहुत बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जिस व्यक्ति को सबसे अमीर होना चाहिए वह आज सबसे गरीब है। दिन-रात जीतोड़ मेहनत करने के बाद भी किसान को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं को हिंदी उपन्यासकारों ने अपने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिंदी कथा साहित्य में, विशेषकर उपन्यासों में किसान, मजदूर एवं ग्रामीण-जीवन को आधार बनाकर उत्कृष्ट साहित्य रचा जा रहा है। इस सन्दर्भ में, सबसे पहला नाम हिंदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का नाम लिया जा सकता है।

प्रेमचन्द हिंदी के पहले ऐसे रचनाकार हैं जिनके साहित्य में भारतीय गाँव और गाँव की संस्कृति को पूरी संजीदगी के साथ चित्रित किया गया है। प्रेमचन्द के आने से हिंदी कथा-साहित्य को एक नई दृष्टि मिली है, क्योंकि प्रेमचन्द ने पहली बार गरीबों, किसानों और मजदूरों को अपने उपन्यास का नायक बनाया है। प्रेमचन्द के समय के किसान जमींदार, सेठ, साहूकारों, महाजन और सूदखोरों द्वारा शोषित था जिसका जिक्र प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में किया है। ग्रामीण-जीवन और किसानों को केंद्र में रखकर प्रेमचन्द की इस परंपरा को आगे बढ़ाने काम फणीश्वरनाथ रेणु, शिव प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि उपन्यासकारों ने किया है।

समय की मांग और जरूरत के अनुसार सरकार द्वारा कृषि संबंधी सुधार कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं। फिर भी किसानों की आर्थिक-स्थिति में जितना सुधार होना चाहिए उतना नहीं हुआ है। आज भी अधिकतर किसान कर्ज जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहे हैं। अर्थव्यवस्था सुधार हेतु 1991 ई०में भारत सरकार ने ‘नई अर्थनीति’ लागू की और इस नीति से उदारीकरण, भूमंडलीकरण और निजीकरण को खुले तौर पर बढ़ावा मिला। इसे ‘नवउदारवाद’ के नाम से भी जाना जाता है। भूमंडलीकरण की आंधी ने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। नए-नए औद्योगिक कारखाने स्थापित किए गए। देश के विकास के लिए निजी संस्थाओं को भी बढ़ावा दिया गया। भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण की दुनिया में किसान ‘एक उत्पादक के रूप में’ अपनी समाजिक और आर्थिक पहचान खो रहा है।

गौरतलब है कि सभी यूरोपीय देशों ने जोर-शोर से भूमंडलीकरण को अपनाया। इसका प्रभाव यह हुआ कि सभी देशों के लिए मुक्त-बाजार का अवसर मिला। मुक्त-बाजार की नीति से भारत का कृषि-क्षेत्र भी प्रभावित हुआ और बड़ी तेजी से कॉरपोरेट कृषि का दबदबा बढ़ने लगा। इस प्रकार भारत में एक नई प्रकार की कृषि का उदय हुआ जिसे ‘ठेके पर खेती’ कहा जाता है।

ठेके पर खेती होने से अपने ही खेत में भारतीय किसान, किसान से मजदूर में तब्दील होता जा रहा है। बहरहाल, 70 के दशक से यानी 'हरित क्रांति' से ही कृषि क्षेत्र में यह परिवर्तन दिखाई देने लगा था। तब बड़ी संख्या में किसानों ने पारंपरिक खेती को छोड़कर आधुनिक खेती को अपनाया था। इससे उन्हें त्वरित लाभ तो हुआ पर आगे चल वे कई नई समस्याओं में घिर गए। साहित्य समाज का आईना होता है। समाज में घटित होने वाली इन घटनाओं का चित्रण हमें कथा साहित्य में भी नज़र आता है।

नवउदारवाद का भारतीय किसानों के जीवन और उसकी कार्य-पद्धतियों में जो प्रभाव पड़ा उसे लेखकों ने अपने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। नवउदारवादी दौर में गंवई-संस्कृति और किसान-जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखने वाले लेखकों की लम्बी परंपरा है जिसमें जगदीश चन्द्र, एस०आर०हरनोट, राजू शर्मा, काशीनाथ सिंह, शिवमूर्ति, संजीव, सत्यनारायण पटेल और पंकज सुबीर आदि प्रमुख हैं। इन उपन्यासकारों के उपन्यास में 1991 में लागू हुई नई अर्थनीति के प्रभाव से किसानों के जीवन में आने वाली समस्याओं और परिवर्तनों को देखा जा सकता है। यही वह समय है जब भारत में नवउदारवाद की शुरुआत होती है। पिछले दो दशकों से किसान लगातार आत्महत्या कर रहे हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार प्रत्येक माह लगभग 65 किसान आत्महत्या कर रहे हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन' को पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय 'नवउदारवाद की अवधारणा और स्वरूप' में नवउदारवाद क्या है? वैश्विक स्तर पर इसकी शुरुआत कहाँ से और कब हुई? तथा भारत में नवउदारवाद की शुरुआत कब से हुई? राजनीति क्षेत्र के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था पर नवउदारवाद का क्या असर हुआ इसे संक्षिप्त रूप से परिभाषित और

व्याख्यायित किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार कृषि और किसान पर नवउदारवादी नीतियों के पड़ने वाले प्रभाव को दिखाया गया है। वाशिंगटन आमराय के विचार और नवउदारवाद के आंतरिक संबंधों पर विचार किया गया है। नवउदारवाद के अंतर्गत आने वाले उदारवाद, निजीकरण और भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण की परिभाषा और भारतीय कृषि पर पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को इस अध्याय में दिखाया गया है। इसके साथ ही उदारवाद और नवउदारवाद के अन्तः संबंध को भी व्याख्यायित किया गया है।

द्वितीय अध्याय ‘हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन का स्वरूप’ इस अध्याय के अंतर्गत हिंदी उपन्यासों का आरंभिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए स्वतंत्रता पूर्व हिंदी उपन्यासों में किसानों के शोषण का स्वरूप को दिखाया गया है जिसमें प्रेमचन्द के ‘प्रेमाश्रम’ और ‘गोदान’ जैसे उपन्यासों में किसानों पर होने वाले शोषण को दिखाया गया है। देश को आजादी मिलने के बाद भारतीय कृषि सुधार हेतु कई योजनाएँ बनाई गईं, जिनमें जमींदारी-प्रथा को कानूनन समाप्त कर दिया गया, फिर भी सामंतों और जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण जारी रहा। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में किसानों का जीवन कैसा था ? विविध उपन्यासों का हवाला देते हुए दिखाया गया है। इसके बाद समकालीन साहित्य में किसानों की दशा एवं दिशा को उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय ‘नवउदारवाद के दौर के हिंदी के प्रमुख उपन्यास’ इस अध्याय में किसान-जीवन से संबंधित 1991 से लेकर अब तक के प्रमुख उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, जिसमें कमलाकांत त्रिपाठी का ‘बेदखल’ उपन्यास जिसमें ताल्लुकेदारों द्वारा किसानों के शोषण को दिखाया गया है। जगदीश चन्द्र का ‘जमीन अपनी तो थी’ उपन्यास में भूमिहीन श्रमिकों के संघर्षों को दिखाया गया है। हरनोट के ‘हिडिम्ब’ उपन्यास में यह दिखाया गया है कि

किसानों की जमीनों को पूँजीपति किस प्रकार छीनने का प्रयास करता है। इसी प्रकार राजू शर्मा के ‘हलफनामे’ में आत्महत्या करने वाले किसानों के मुआवजे की समस्या, काशीनाथ सिंह के ‘रेहन पर रघू’ उपन्यास में गंवई संस्कृति का बदलता स्वरूप और किसान के जीवन को दिखाया गया है। शिवमूर्ति के ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में कर्ज की मर्ज से परेशान आत्महत्या करते किसान को दिखाया गया है। सच्चिदानंद चतुर्वेदी का ‘अधबुनी रस्सी: एक परिकथा’, भगवानदास मोरवाल का ‘नरक मसीहा’, मदन मोहन का ‘जहाँ एक जंगल था’, सत्यनारायण पटेल का ‘गाँव भीतर गाँव’, संजीव का ‘फाँस’, पंकज सुबीर का ‘अकाल में उत्सव’ और विश्वंभर मिश्र का ‘यह जमीन हमारी है’ आदि में किसानों की भिन्न-भिन्न समस्याओं को दिखाया गया है।

चतुर्थ अध्याय ‘नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन’ के अंतर्गत नवउदारवाद के दौर में भारतीय किसानों के समक्ष उपस्थित उन तमाम समस्याओं को दिखाया गया है जिससे किसानों की स्थिति बदहाल हो गई है। ‘हरित क्रांति’ के बाद कृषि क्षेत्र में आए परिवर्तनों को विविध उपन्यासों का हवाला देते हुए दिखाया गया है। नवे दशक से विदेशी और संकर बीजों के प्रयोग से भारतीय कृषि में आए परिवर्तन को बड़ी सूक्ष्मता से दिखाया गया है। यंत्रीकरण के युग ने हमारे समाज में सामूहिक-श्रम की रीति को समाप्त कर दिया है और खेती-किसानी का सम्पूर्ण कार्य आधुनिक उपकरणों के सहारे होने के कारण पशु पालन का महत्त्व भी कम होता जा रहा है। यही वजह है कि किसानों के घरों से बैल गायब होते जा रहे हैं। बाजारवाद के समय में खेती का महत्त्व कम होता जा रहा है।

दिनोंदिन बढ़ती महँगाई और पानी के अभाव के कारण किसान खेती छोड़ रहे हैं। उदाहरण के तौर पर बुंदेलखंड के इलाकों के किसानों को लिया जा सकता है। कई बार फसलों

का उचित-दाम अथवा लागत-मूल्य भी न मिलने के कारण विभिन्न राज्यों में किसान आत्महत्या कर रहे हैं। इन किसानों के सामने सबसे बड़ी समस्या कर्ज की है। इस अध्याय में किसानों के दुःख-दर्द, पीड़ा, संत्रास, दंश और घुटन को विभिन्न उपन्यासों के उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही, महँगे हाईब्रिड बीजों और रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से किसानों के सामने आने वाली समस्याओं पर भी विचार किया गया है। अधिक उत्पादन के लिए अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति क्षीण होती जा रही है। कृषि पर कॉर्पोरेट जगत का अधिकार होता जा रहा है। किसानों की जमीनों को पूँजीपति औने-पौने भाव से खरीद-फरोख्त कर रहे हैं जिससे किसान, किसान से मजदूर बनता जा रहा है, इस तरह इन तमाम समस्याओं पर उपन्यासों के हवाले विचार किया गया है।

अधिकतर किसान कर्ज और अपमान को सहन न करने के कारण आत्महत्या कर रहे हैं। सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या को रोकने की है। इसके अतिरिक्त, एक समस्या उन विधवा-महिला-किसानों की भी है जिनके पति जो कर्ज के कारण आत्महत्या कर चुके हैं। सरकार आत्महत्या के मुआवजे के संबंध में इन महिलाओं को किसान नहीं मानती। अधिकारियों का कहना है कि इन्हें मुआवजा नहीं दिया जा सकता क्योंकि इनके नाम पर कोई जमीन नहीं है। महिला किसान मुआवजे के लिए दर-दर की ठोकरें खा रही हैं और किसान आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग ले रही हैं ताकि उन्हें उनका हक मिल सके। महिला किसान की समस्याओं को भी इस अध्याय में दिखाया गया है। इसके साथ ही सरकारी योजनाओं का किसानों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी विचार किया गया है।

किसी भी समाज में भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। पंचम अध्याय ‘विवेच्य उपन्यासों की भाषा-शैली’ के अंतर्गत किसान-जीवन केन्द्रित उपन्यासकारों की भाषा कैसी

है ? और कौन उपन्यासकार कौन-सी भाषा का प्रयोग किया है ? इस अध्याय में मुख्य रूप से चार उपन्यासकारों राजू शर्मा ('हलफनामे'), शिवमूर्ति ('आखिरी छलाँग'), संजीव ('फाँस') और पंकज सुबीर ('अकाल में उत्सव') की भाषा पर विचार किया गया है। भारत के चार क्षेत्रों के किसानों की समस्याओं को अलग-अलग भाषाओं के माध्यम से दिखाया है। इन लेखकों ने साहित्यिक भाषाओं से साथ ही स्थानीय भाषाओं और बोलियों का भी प्रयोग किया है। इस अध्याय में किसान-जीवन पर आधारित उपन्यासों की विषय-वस्तु और अंतर्वस्तु पर भी विस्तार से विचार किया गया है।

वस्तुतः किसान-जीवन आधारित उपन्यासों की विषय-वस्तु तो एक ही है - ग्रामीण और किसान-जीवन। लेकिन लेखकीय दृष्टिकोण के कारण भिन्न-भिन्न समस्याओं और घटनाओं की वजह से अंतर्वस्तु अलग-अलग हो गई है। सेठ, साहूकारों, सरकारी-तंत्र, मीडिया और प्रशासन की भाषा में भेद को विविध उपन्यासों के हवाले विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। रचनाकार अपने साहित्य में किसी बात को सीधे-सीधे न कहकर प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से कहता है जिससे कथा की रोचकता बढ़ जाती है और पाठक सहज ही कथा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। इस अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि उपन्यासकारों ने किस प्रकार किसानों की समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग किया है।

शोध की पद्धतियाँ

प्रस्तुत शोध-विषय 'नवउदारवाद के दौर में हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन' में विविध शोध-पद्धतियों और शोध-उपागमों का सहारा लिया गया है। किसान भारतीय समाज और संस्कृति का मूल आधार रहा है। इसके समक्ष अनेक सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याएँ मौजूद हैं। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन के लिए समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक और

भौगोलिक उपागमों की सहायता ली गयी है तथा इस शोध-प्रबंध में सर्वेक्षणात्मक, विश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक और तुलनात्मक तथा साक्षात्कार पद्धतियों का प्रयोग किया गया है।

शोध-प्रबंध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का प्रमुख उद्देश्य नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन की विविध समस्याओं की पहचान करना है। इस शोध-प्रबंध में किसान-जीवन की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पहलुओं को विविध उपन्यासों के माध्यम से विश्लेषित करने का प्रयास किया जाएगा। साथ ही, नवउदारवाद, बाजारवाद और अर्थव्यवस्था संबंधी सुधारों के कारण का किसानों के जीवन में आए विविध परिवर्तनों को भी रेखांकित करने का प्रयास किया जाएगा। आज का किसान कर्ज के बोझ तले दबता जा रहा है और आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। जमींदारों, पूँजीपतियों, बैंक कर्मचारियों और बिचौलिए द्वारा किसानों पर किए जा रहे अन्याय, अत्याचार और शोषण को विविध उपन्यासों के हवाले उद्धाटित करने का प्रयास प्रस्तुत शोध-प्रबंध के माध्यम से किया जाएगा। अंत में, किसान-जीवन की परेशानियों को दूर करने के समुचित-उपाय भी सुझाए जाएंगे।

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषय चुनाव को मेरे शोध निर्देशक आदरणीय डॉ. जे. आत्माराम जी का उचित मार्ग दर्शन मिला। यह मेरा सौभाग्य है कि श्रद्धेय गुरु ने अपने अत्यधिक व्यस्ततम क्षणों में मेरी शंकाओं, उलझनों एवं प्रश्नों को सुलझाकर इस दुरूह कार्य को सहज एवं सरल बनाया। मेरी त्रुटियों को यथासंभव समाधान एवं उनका सप्रेमपूर्ण प्रोत्साहन सदैव बना रहा।

जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इनका सहयोग मिलता रहेगा। मेरे शोध सलाहकार सदस्य हिंदी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी और प्रो. एम. श्याम राव जी ने इस शोध कार्य के लिए समय-समय पर मार्गदर्शन करते रहे। मैं इन दोनों गुरुजनों को विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ। हैदराबाद विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग के प्राध्यापक डॉ. भीम सिंह का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध विषय से संबंधित बहुत सारी सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता की और समय निकाल कर मार्गदर्शन और सुझाव देते रहे।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक जी तथा विभाग के सभी आचार्यों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके प्रोत्साहन एवं सहयोग के बिना यह शोध कार्य असम्भव था। मैं अपने परम पूजनीय दादा (बाबा जी), पिता जी और स्वर्गीय माता जी के चरणों में नतमस्तक हूँ, जिनके साहस और आशीर्वाद के बल पर यहाँ तक पहुँच सका हूँ। मैं अपने भाई-बहनों और मेरी जीवन-संगिनी सरिता शर्मा / हेमा के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जो सदैव मेरे सुख-दुःख के साथी रहे हैं। इस शोध-कार्य में सहयोगी रहे मित्रों में डॉ. अनिल कुमार, डॉ. सिंगाड़े सचिन, संदीप कुमार, आशुतोष कुमार, विशाल कुमार, चिन्मयी दास, मधुरा केरकेट्टा ने समय-समय पर सहयोग दिया, मैं इनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही उन सभी मित्रों का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष इस शोध कार्य को पूरा करने में सहयोग किया। तकनीक सहयोग के रूप में हमेशा हमसे रू-ब-रू रहे हैदराबाद विश्वविद्यालय के शोध छात्र साथी प्रवीन्द्र शेखर शकुन्त का बहुत आभारी हूँ, जिनसे वक्त वक्त सहयोग मिलता रहा है।

...धन्यवाद

इन्द्रदेव शर्मा

प्रथम अध्याय

नवउदारवाद की अवधारणा और स्वरूप

प्रस्तावना

- 1.1 उदारवाद की परिभाषा
- 1.2 भारत में उदारवाद की शुरुआत
- 1.3 नवउदारवाद की परिभाषा
- 1.4 वाशिंगटन आमराय के विचार और नवउदारवाद
- 1.5 नवउदारवाद की भूमिका
- 1.6 भूमंडलीकरण का अर्थ और स्वरूप
- 1.7 उदारवाद और नवउदारवाद में अन्तः संबंध
- 1.8 भारत में नवउदारवाद का दौर और उसका स्वरूप
- 1.9 भारतीय अर्थव्यवस्था सुधार संबंधित नई अर्थनीति
- 1.10 नवउदारवाद का भारतीय समाज पर प्रभाव
 - 1.10.1 सकारात्मक
 - 1.10.2 नकारात्मक
- 1.11 नवउदारवाद का कृषक-जीवन पर प्रभाव
 - 1.11.1 समय की बचत
 - 1.11.2 व्यक्तिगत असमानता
 - 1.11.3 मिलावटी वस्तुओं द्वारा किसानों के साथ धोखाधड़ी
 - 1.11.4 कर्ज की समस्या और किसान आत्महत्या

1.11.5 बी०टी०बीजों का दुष्प्रभाव

1.11.6 किसानों के अस्तित्व की चुनौती

1.11.7 कॉरपोरेट-कृषि का उदय

निष्कर्ष

प्रस्तावना

वर्तमान समय में जो राजनैतिक विचारधारा चल रही है वह उदारवाद से प्रेरित है। उदारवाद के कारण ही आज हम इतने स्वतंत्र हो सके हैं कि हम कहीं पर भी किसी भी प्रकार का व्यापार कर सकते हैं। यह विचारधारा ‘लेजे फेजर’ और ‘ट्रिकलडाउन’ के सिद्धांतों पर आधारित है जो मुक्त व्यापार को बढ़ावा देते हैं। उदारवाद जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हिमायती है वहीं नवउदारवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता की भी वकालत करता है। नवउदारवादी विचारधारा वैश्विक बाजार में खुली प्रतिस्पर्धा पर जोर देता है जिससे व्यापार के क्षेत्र में एक नई तरह की संस्कृति का उदय हुआ है जिसे ‘मुक्त बाजार’ कहा जाता है।

उदारीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण और बाजारवाद इन सभी शब्दों का संबंध आर्थिक संरचना या आर्थिक बुनावट से है। इन शब्दों का प्रयोग विशेषतः अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में किया जाता है। वर्तमान समय में व्यापार-वाणिज्य-क्षेत्र उपभोक्ता केंद्रित हो गए हैं जिससे एक नए प्रकार के संस्कृति का उदय हुआ है, जिसे ‘उपभोक्तावादी संस्कृति’ या ‘अमेरिकी संस्कृति’ कहा जाता है। भारत में उपभोक्तावादी, सांस्कृतिक-मानसिकता का उदय पिछली शताब्दी के आखिरी दशक से होता है। अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में पूँजीपतियों द्वारा एक परिकल्पना की गई जिसे ‘विश्वग्राम’ की संज्ञा दी गई। विश्वग्राम से तात्पर्य यह है कि एक ही स्थान पर मनुष्य की जरूरतों की सभी वस्तुएं उपलब्ध हो तथा वैश्विक परिदृश्य पर खुले बाजार की स्वतंत्रता मिले जिसे वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण कहा जाता है।

उदारीकरण, वैश्वीकरण और बाजारवाद इन सभी शब्दों का अर्थ भले ही भिन्न-भिन्न हो परन्तु इनका संबंध मूलतः ‘नईअर्थनीति’ को प्रोत्साहन देना है। भारत को आजादी मिलने के बाद एक नए भारत के उदयकी परिकल्पना राजनेताओं और अर्थशास्त्रियों के दिमाग में कौंधने

लगी। इसके परिणाम स्वरूप आजाद भारत की मनोदशा और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही इसकी शुरुआत हो गयी थी क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में पहले मुगलों ने फिर अंग्रेजों ने अपने-अपने तरीके से आर्थिक व्यवस्था को भारतीय समाज में लागू किया था।

दरअसल, औद्योगिक, प्रौद्योगिकी और तकनीकी क्रांतियों के उदय से राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय बाजारों और कृषि क्षेत्रों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इसी समय खुले बाजार की अर्थनीति ने उपयोग का विराट-मायाचक्र रचकर अधिक धन-संपत्ति एकत्र करने का ऐसा आत्मघाती स्वप्न वर्तमान मनुष्य को दे दिया, जिसके लिए वह किसी भी प्रकार के साधन अपनाने के लिए तत्पर हो रहा है। बहरहाल, नवउदारवाद पर चर्चा करने से पहले उदारवाद, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद आदि विषयों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

1.1 उदारवाद की परिभाषा

उदारवाद अंग्रेजी के Liberalism शब्द का हिंदी रूपांतरण है। Liberalism शब्द लैटिन के Liber से बना है जिसका अर्थ है - स्वतंत्रता या आजादी। Liberty शब्द भी इसी से बना है। अतः उदारवाद स्वतंत्रता के विचारों का समर्थक है। मूलतः लिबरल शब्द ऐसे व्यक्ति या सिद्धांत के साथ प्रयुक्त होता था जो व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन करे, परन्तु 'लिबरल' का अर्थ उदार, शालीन और सुसंस्कृत भी होता है। जैसा कि उदारवादशब्द से ही मालूम होता है कि किसी के प्रति उदारता का भाव (दया की भावना) रखना। इसका सीधा संबंध किसी भी देश की अर्थव्यवस्था से है। उदारवाद के अंतर्गत सरकार द्वारा देश या विदेश की कंपनियों और निवेशकों को यह स्वतंत्रता दी जाती है कि वह कहीं भी, कभी भी सरकार को नाममात्र का/ बिना टैक्स दिए बेरोक-टोक व्यापार कर सकता है, अपनी कंपनी खोल सकता है या बाजार की सारी आर्थिक गतिविधियों को स्वतंत्र रूप से चला सकता है। उदारवाद से पहले यह होता था कि अगर किसी

व्यक्ति या देश को अपने यहाँ निर्मित किसी वस्तु या सामान को निर्यात के लिए किसी अन्य देशों में जाना है तो उस देश की सरकार द्वारा निर्धारित कर चुकाना अनिवार्य होता था। उदारवादी नीति आने से यह प्रतिबन्ध नाम मात्र का रह गया या लगभग समाप्त हो गया।

उदारवाद को विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है-**डेरिक हीटर** के अनुसार- ‘स्वतन्त्रता उदारवाद का सार है। स्वतन्त्रता का विचार इतना महत्वपूर्ण है कि उदारवाद की परिभाषा सामाजिक रूप में स्वतन्त्रता का संगठन करने और इसके निहितार्थों का अनुसरण करने के प्रभाव के रूप में की जा सकती है।’ एक अन्य विचारक **सारटोरी** के अनुसार-‘उदारवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, न्यायिक सुरक्षा तथा संवैधानिक राज्य का सिद्धांत तथा व्यवहार है।’¹

उदारवाद को वैश्विक स्तर पर विकसित और विकासशील दोनों देशों ने खुले तौर पर अपनाया है। “During the 1990s, neoliberalism was expressed through structural reforms that originated during the last military dictatorship (1976-83); the period was characterized by paradigmatic reforms such as the Financial Institutions Law of 1977 and by state and paramilitary repression of popular and armed insurgency.”²

दरअसल, उदारवाद एक विचारधारा है जो समाज में आर्थिक संबंधों को व्यक्त करता है जिसके अंतर्गत मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानते हुए समाज की अनेक संस्थाओं को मनुष्य की सूझ-बूझ और सामाजिक प्रयास का परिणाम समझा जाता है। “1991 के बाद की अवधि को आर्थिक सुधार या उदारीकरण की अवधि कहा जाता है तथा भारत में सन् 1991 ई० से आर्थिक उदारीकरण के एक नए युग की शुरुआत हुई। औद्योगिक क्षेत्र के निष्पादन को प्रभावित करने

¹<https://www.scotbuzz.org/2019/03/udarvad.html?showComment=1587902924282#c357408104782645535> date-26april 2020 time-17:38

² Neoliberalism from below, Veronica gago, translate by Liz mason deese, page no 1

वाली नई उदारीकृत नीतियाँ थीं - औद्योगिक नीति में व्यापक उदारीकरण, लाइसेंसिंग से अधिकतर उद्योगोंकी मुक्ति कार्यकारी नियमों व नियंत्रण में सरलीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आयोजित उद्योगों में कमी तथा निजी क्षेत्रों के लिए अधिकतर उद्योगों के द्वार खोलना, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में विनिवेश, घरेलू औद्योगिक क्षेत्र में विदेशी भागीदारी का बढ़ावा, व्यापार व विनिमय दर नीतियों में उदारीकरण, सीमा-शुल्कों, उत्पादन-शुल्कों, आयकर तथा निगम-कर की दरों में कमी इत्यादि”³ इन्हीं विचारों के साथ उदारीकरण की प्रक्रिया आरम्भ होती है।

एक विचारधारा के रूप में उदारवाद का उदय सामंतवाद के पतन के साथ शुरू हुआ। इसे व्यक्तिवाद भी कह सकते हैं। उदारवाद में मुख्यतः व्यक्ति की आजादी पर बल दिया जाता है जिसे जॉनलॉक ‘समझौतावादी’ कहते हैं। समझौतावादी सिद्धांत के समर्थकों में जॉनलॉक, रूसो और हाब्स जैसे पाश्चात्य विचारक प्रमुख हैं। इन विचारकों का मानना है कि व्यक्ति ने अपने सारे अधिकार राज्य को सौंप दिए हैं और राज्य उनका कर्ता-धर्ता है, लेकिन यहाँ जॉनलॉक एक खास बात की ओर संकेत करते हैं कि व्यक्ति ने अपने सारे अधिकार तो राज्य को सौंप दिए हैं लेकिन राज्य तीन चीजों में कुछ नहीं कर सकता और वे हैं-- सम्पत्ति, जीवन और स्वतंत्रता। जिसे प्राकृतिक अधिकार कहा जाता है। औद्योगीकरण के द्वारा यह विचारधारा जोर-शोर से विकसित हुई जो उदारवाद के विस्तार का सबसे बड़ा कारण है।

ब्रिटिश दार्शनिक **जॉनलॉक**(1632-1704) उदारवाद के जनक माने जाते हैं परन्तु उदारवाद के आरम्भिक उन्नायकों में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ**(‘The wealth of

³भारत में आर्थिक उदारीकरण एवं निर्धनता निवारण, सं. इन्दु वाष्णेय और डॉ० उषा शर्मा, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 132

Nation') के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके अनुसार उदारवादको दो दृष्टियों से परिभाषित किया जा सकता है—

1. पूँजीपतियों या निवेशकों की दृष्टि से।
2. साधारण जनता अर्थात् मजदूरों और किसानों की दृष्टि से।

उदारवाद किसी भी गैर-सरकारी व्यापारिक संगठनों को सरकार द्वारा लगाए गए उन तमाम करों में छूट या फिर पूरी तरह से समाप्ति के लिए राजनीतिक विचार है। यानी पूँजीपतियों या कॉर्पोरेट कंपनियों को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है जिससे वह कहीं भी स्वतंत्र रूप से अपना व्यापारिक केंद्र स्थापित कर सकता है। पूँजीपतियों के नजरिए से उदारवाद विश्वव्यापी स्वतंत्रता और समानता के विचारों पर आधारित है। उदारवाद के मूलतः दो प्रकार हैं- सामाजिक-उदारवाद और पारम्परिक- उदारवाद। सामाजिक-उदारवाद यह मनाता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामाजिक न्याय की आवश्यकता होती है जबकि पारम्परिक-उदारवाद एक राजनीतिक विचारधारा है।

उदारवाद की व्याख्या करते हुए राजकिशोर अपनी पुस्तक ‘उदारीकरण की राजनीति’ में लिखते हैं —“शब्द और अर्थ के बीच हमेशा एक छाया होती है। लेकिन उदारीकरण की समस्या इस छाया की समस्या नहीं है। समस्या यह है कि आप स्थिति को कहाँ से देखते हैं? यदि आप निवेशकर्ता या पूँजीपति की आँख से देख रहे हैं तो उदारीकरण में आप को सचमुच उदारता के तत्त्व नजर आयेंगे। जहाँ भी उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की जाती है उससे पहले अर्थव्यवस्था पर कुछ अंकुश लगे होते हैं। मसलन आपको कारखाना खोलने के लिए सरकार से अनुमति लेनी होगी या इन-इन चीजों का उत्पाद निजी क्षेत्र में नहीं किया जा सकता। उदारीकरण की प्रक्रिया में इस अंकुश को क्रमशः हटा लिया जाता है। जाहिर सी बात है यह उन लोगों के

प्रति उदारता है जिनके क्रिया कलाप पर अंकुश लगे हुए थे। इनकी नजर से देखने में इसे हम 'नई अर्थनीति' भी कहते हैं, क्योंकि इससे पहले की अर्थनीति में इतनी उदारता नहीं थी।"⁴

सामान्यतः उदारवाद शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से कुछ राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धांतों, तथा बौद्धिक आंदोलनों का भी परिणाम है। ऐतिहासिक दृष्टि से, अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा (1776) से जीवन-स्वतंत्रता तथा सुख-प्राप्ति के प्रयत्न के प्रति मानव के अधिकारों का ऐलान हुआ था। इस सिद्धांत को फ्रांस में 'मानव अधिकार का घोषणापत्र' कहा गया। जिसने यह घोषित कर और भी स्पष्ट कर दिया कि अपने अधिकारों के संबंध में मनुष्य स्वतंत्र तथा समान पैदा होता है। उदारवादी सिद्धांत में इन विचारों को ग्रहण किया परन्तु व्यवहार में ये अस्पष्ट तथा आत्मविरोधी रहे। राष्ट्रवाद के सहयोग से उदारवाद के इतिहास का पुनर्निर्माण हुआ यद्यपि यह अस्पष्ट रहा तथा इसका व्यावहारिक रूप स्थान-स्थान पर बदलता रहा। उन्नीसवीं सदी में तीन मुख्य आन्दोलन हुए - राष्ट्रीय स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और वर्ग स्वतंत्रता। इन सभी आन्दोलनों पर उदारीकरण का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

1.2 भारत में उदारवाद की शुरुआत

भारत में उदारवाद की शुरुआत पूर्व प्रधानमंत्री **वी. पी. नरसिंह राव** के शासनकाल में तथा वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा दिए गए आर्थिक सुझावों से मानी जाती है। कोई भी सामाजिक, राजनीतिक या फिर आर्थिक आन्दोलन या कोई वाद एकाएक नहीं प्रारम्भ होता उसके बीज बहुत पहले से समाज में अंकुरित होते रहते हैं। इसी प्रकार भारत में उदारीकरण की शुरुआत पूर्व प्रधानमंत्री **वी. पी. नरसिंह राव** के शासन काल से भले ही माना जाए पर उदारवाद की बुनियाद प्रधानमंत्री **राजीव गाँधी** के समय से ही रखी जा चुकी थी।

⁴उदारीकरण की राजनीति, राजकिशोर, पृष्ठ संख्या : 38

कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि प्रधानमंत्री राजीव गाँधी से पहले 1980 में जब इंदिरा गांधी दूसरी बार सत्ता में आयीं थीं तभी से उदारवाद की शुरुआत होती है। उन्होंने अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की दिशा में प्रारंभिक कदम उठाए थे, जो भी हो कुल मिलाकर भारत की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति को पटरी पर लाने के लिए नई-नई योजनाएँ या आर्थिक सुधार के प्रयास हुए, वही आगे चलकर उदारीकरण, निजीकरण और नवउदारवाद कहलाया।

भारत में उदारवाद की शुरुआत कब से हुई ? इस सन्दर्भ में राजकिशोर लिखते हैं कि- “ध्यान देने की बात यह है कि इस अवधि के ज्यादातर समय में वही विश्वनाथ प्रताप सिंह देश के प्रधानमंत्री थे जो राजीव गांधी के शासनकाल में वित्त मंत्री रह चुके थे सामाजिक न्याय खेमे के राजनेताओं ने विश्वनाथ प्रताप सिंह एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो हृदय से उदारीकरण के समर्थक हैं। डॉ०मनमोहन सिंह जिन्होंने वित्त मंत्री के रूप में 1991-92 का बजट पेश करते हुए आर्थिक संकट की तीव्रता को इन शब्दों में व्यक्त किया कि स्वतंत्र भारत के इतिहास में इस तरह का अनुभव इसके पहले हमें कभी नहीं हुआ था। इससे पहले काफी समय तक भारतीय रिजर्व बैंक गवर्नर रह चुके थे और रिजर्व बैंक विदेशी मुद्रा स्थिति की हर करवट से वाकिफ रहता है।”⁵

उदारवाद के सन्दर्भ में अर्थशास्त्री एडम स्मिथ का मानना है कि यह ‘लेजे फेजर’ यानी मुक्त अर्थव्यवस्था है। इनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उसका सर्वोच्च हित किसमें है ? अतः व्यक्तियों को अपने-अपने हितों का संवर्धन करने के लिए आजाद छोड़ दिया जाए तो सभी का ज्यादा से ज्यादा भला होगा। व्यक्तियों के हितों में संतुलन से ही सामाजिक संतुलन पैदा होता है लेकिन आज मुक्त अर्थव्यवस्था के यह मायने बदल चुके हैं। जैसे-जैसे औद्योगिक क्रांतियाँ बढ़ी हैं यह स्पष्ट हो गया है कि सरकारी हस्तक्षेप के बिना काम नहीं चल सकता।

⁵उदारीकरण की राजनीति, राजकिशोर, पृष्ठ संख्या : 12

औद्योगिक रूप से सरकारी हस्तक्षेप ज्यादातर पर्यावरण को बचाने के लिए किया जाता है। इसके साथ ही स्वास्थ्य के हित में तथा श्रमिकों के साथ असमानता या भेदभाव को रोकने के लिए किया जाता है। पूँजीपति बार-बार ‘स्वतंत्र अर्थव्यवस्था’ की वकालत करते हैं। इनका मानना है कि स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति को अवसर देती है कि वह अपने सर्वोच्च हित में फैसला कर सके। स्पष्ट है कि यह स्वतंत्रता पूँजीपति ही चाहता है, जिसके पास अकूत धन संपत्ति है। देखा जाय तो इस स्वतंत्रता से समाज में ज्यादा से ज्यादा आर्थिक विषमता बढ़ेगी और बढ़ रही है तथा अमीरी और गरीबी की बीच की खाई बढ़ती जा रही है।

सामाजिक व्यवस्था में उदारवाद के सकारात्मक प्रभाव कम और नकारात्मक प्रभाव अधिक दिखाई पड़ते हैं। जहाँ तक सकारात्मक प्रभाव का सवाल है तो यह पूँजीपति या कॉर्पोरेट मालिकों को हो सकता है परन्तु आमजन, गरीबों, मजदूरों और किसानों के लिए यह तो पूरी तरह से नकारात्मक ही साबित हुई है। जिसकी वजह से समाज में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच बहुत बड़ी खाई बनती जा रही है। उदारवाद को प्रश्रय और बढ़ावा देने का काम दो विश्वस्तरीय संस्थाओं --विश्वबैंक और अन्तर-राष्ट्रीय मुद्राकोष ने जोर-शोर से किया।

इन संस्थाओं का गठन विभिन्न राष्ट्रों को आर्थिक सहायता और ऋण देने के लिए किया गया था। ताकि वे सभी आर्थिक संकट से निकल सके और अपनी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण कर सके। इन संस्थाओं की वकालत बाजार की शक्तियों ने ही नहीं बल्कि प्रत्येक देश की सरकारों ने भी किया। इसकी वजह कुछ और नहीं बल्कि राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई थी। विश्वबैंक और अंतर-राष्ट्रीय मुद्राकोष की स्थापना का मुख्य उद्देश्य गरीब देशों और अविकसित और विकासशील देशों को आवश्यकता पड़ने पर ऋण मुहैया कराना था ताकि देश की अर्थव्यवस्था सही तरीके से चल सके लेकिन आमजन, मध्यम वर्ग और गरीब, किसान पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा।

आर्थिक संकट से घिरे देश-दुनिया का कोई भी ऐसा कोष नहीं है जहाँ निःस्वार्थ सहायता पाई जा सके। ऐसी संस्थाओं की सहायता लेने के लिए वाणिज्य ऋणों को अनुबंध करना पड़ता है जिसकी ब्याज दर काफी ऊँची होती है। विश्व बैंक और अंतर-राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा प्रस्तावित उदारीकरण-कार्यक्रम को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –स्थिरीकरण और ढांचागत समायोजन। ढांचागत समायोजन की योजनाओं को राजकिशोर निम्न प्रकार से बिंदुवार व्याख्यायित करते हैं-

“1.अर्थशास्त्र का खुलापन : यानी देश उद्योगोंके मामले में सरकारी नियंत्रणों को समाप्त करना तथा विदेशी निवेश के लिए दरवाजा खोलना।

2.सार्वजनिक क्षेत्रों को घटाना तथा निजी क्षेत्र का दायरा बढ़ाना।

3. बाजार की शक्ति को ज्यादा मौका प्रदान करना।

4.सब्सिडी कम करना ताकि राजकोष पर दबाव कम किया जा सके।

5.मुद्रास्फीति की दर को नियंत्रण करना। भारत-सरकार पिछले छह वर्षों से इसे अमल करती रही है।”⁶

उपरोक्त योजनाएँ उदारवाद के आंतरिक रूप निजीकरण को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से समर्थन करते हैं। उदारवाद से समाज में आर्थिक बदलाव का एक बवंडर उठा दिखाई दिया जो मानव जीवन को एक नई तरह की जिंदगी जीने के लिए मजबूर करती है। “आर्थिक परिवर्तन से तेजी से घूमते पहिए और उसके नतीजों की यह एक झलक भर है। सरकारी स्तर पर सैकड़ों, करोड़ रुपये विज्ञापनों पर लुटाकर लोगों को बताया जा रहा है कि आप और आप जैसे अन्य

⁶उदारीकरण की राजनीति, राजकिशोर, पृष्ठ संख्या : 41-42

अनेक को खाने, ग्रामीण रोजगार, शिक्षा आदि का अधिकार देकर अरबों-खरबों खर्च करके आपके लिए एक नए भारत का निर्माण किया जा रहा है।”⁷

उदारवाद के प्रभाव से जहाँ एक तरफ पूँजीवादी संस्कृति फली-फूली वहीं दूसरी तरफ मजदूर, श्रमिक, किसान और निम्न वर्ग के जीवन-यापन और उनकी आर्थिक स्थिति को बदतर बना दिया। इतना ही नहीं भारत में चल रहे लघु-कुटीर उद्योगों पर भी गहरा धक्का लगा और वह धीरे-धीरे बंद होते चले गए। बाजारीकरण और मशीनीकरण के विस्तार से भारतीय समाज पर पड़े प्रभावों को दो रूपों में देख सकते हैं, जहाँ एक तरफ पढ़े-लिखे या हुनरमंद युवाओं को महज कुछ ही रोजगार मिले वहीं दूसरी तरफ काफी तादाद में मजदूरों और श्रमिकों के रोजगार भी छिन गए। हुआ यह कि औद्योगिक-क्रांति और मशीनी-युग के कारण बड़े- बड़े कॉर्पोरेट कंपनियों में दस-दस व्यक्तियों के स्थान पर मात्र एक व्यक्ति द्वारा ही कार्यों को करना शुरू कर दिया। मशीनों से काम होने के कारण ‘कम समय में अच्छा काम’ होना शुरू हुआ जिसके परिणामस्वरूप मशीनी संस्कृति का उदय हुआ।

1.3 नवउदारवाद की परिभाषा

नवउदारवाद अंग्रेजी के ‘Neo-liberalism’ शब्द का हिंदी रूपांतरण है। नवउदारवाद आर्थिक गतिविधियों को एक सेट(समूह) है जो पिछले दो दशकों से व्यापक हो गया है। हालाँकि यह शब्द पहली बार संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्थिक बदलावों के बतौर प्रयोग किया गया था। नवउदारवाद का सीधा संबंध आर्थिक गतिविधियों से है जिसके अंतर्गत समाज, राज्य, बाजार, पूँजी श्रम, आम उपभोक्ता तथा सम्पूर्ण पूँजीवाद अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न पक्षों के आपसी संबंधों का दिया गया नाम है। वस्तुतः नवउदारवाद विचारों के एक समूह का द्योतक है जिसे भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे -- ब्रिटेन में ‘थैचरावाद’

⁷नव उदारवादी नीतियाँ नाकामी और दुराग्रह, कमल नयन काबरा और ब्रजेन्द्र उपाध्याय, पृष्ठ संख्या : 2

अमेरिका में ‘रीगनवाद’ आस्ट्रेलिया में ‘आर्थिक बुद्धिवाद और विकासशील देशों में ‘वाशिंगटन आमराय’ या नवउदारवाद कहा जाता है। आर्थिक दुनिया में नवउदारवाद लाने का मुख्य उद्देश्य यह था कि जो पहले से परंपरागत उदारवादका चलन था उसे पुनर्जीवित करना क्योंकि परंपरागत उदारवाद की जो छवि थी वह धीमी होती जा रही थी। उसे पुनः जीवित करने के लिए नवउदारवाद को लाया गया और विश्व स्तर पर इसका प्रचार किया गया।

नवउदारवाद को परिभाषित करते हुए गिरीश मिश्र ‘नवउदारवाद: विविध आयाम’ शीर्षक पुस्तक में लिखते हैं- “नवउदारवाद शब्द पहली बार जर्मनी में प्रथम विश्वयुद्ध के तुरंत बाद चलन में आया। इसको चलन में लाने वाले ‘फ्राईबर्ग स्कूल’ से जुड़े एक अर्थशास्त्री और विधिवेत्ता थे। उनका उद्देश्य इस शब्द को प्रचलन में ला क्लासिकी उदारवाद को पुनर्जीवित करना था। इसके अनेक सालों बाद 1970 के दशक में लैटिन अमरीकी अर्थशास्त्रियों ने अपने बाजारोन्मुख मॉडल के लिए ‘न्यूलिबरलिज्मों’ शब्द का प्रयोग किया और 1990 के दशक के आरम्भिक वर्षों के दौरान वामोन्मुख अर्थशास्त्रियों ने इस शब्द का इस्तेमाल तिरस्कार की भावना से शुरू किया और उनमें वे ही विचार समाहित थे जिसके द्योतक के रूप में ‘वाशिंगटन आमराय’ को प्रस्तुत किया गया था। वस्तुतः वाशिंगटन आमराय के जरिए अमरीकी पूँजीवाद और उससे जुड़ी सांस्कृतिक व्यवस्था को विश्व भर में स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था।”⁸

वैसे वैश्विक स्तर पर नवउदारवादी नीतियों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों के सहारे व्यापार को बढ़ावा देना था जिससे पूँजीपतियों को विश्व स्तर पर व्यापार करने का अवसर मिला तथा उदारवाद, निजीकरण और भूमंडलीकरण को बढ़ावा दिया गया। बॉब जोसोप (Bob Jossop) नवउदारवाद को परिभाषित करते हुए कहते हैं –“Neoliberalism is a political project that is justified on philosophical grounds and seeks to extend

⁸नवउदारवाद विविध आयाम, गिरीश मिश्र, पृष्ठ संख्या 11

competitive market forces, consolidate a market-friendly constitution, and promote individual freedom.”⁹

1.4 वाशिंगटन आमराय के विचार

प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सम्पूर्ण यूरोपीय देशों में सुख-शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य से विकासशील और विकसित देशों से एक समझौता के तहत अमेरिका के वाशिंगटन शहर में 1945 ई० में ‘संयुक्तराष्ट्र संघ’ की स्थापना की गई थी जिसका उद्देश्य यह था कि विश्व में शान्ति बनी रहे और विभिन्न देशों में आर्थिक स्थिति सुधारने तथा वैश्विक व्यापार को बढ़ावा दिया जा सके इसीलिए G-20 संस्था की स्थापना की गई।

भूमंडलीकरण के दौर में अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए अंतर-राष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका में 1990 ई० में हुए G-20 सम्मलेन जिसे ‘वाशिंगटन आमराय’ के नाम से जाना जाता है। इस सम्मलेन ने अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में एक विचार रखा। जो भूमंडलीकरण केवर्तमान दौर का एक वैचारिक आधार बना। ‘वाशिंगटन आमराय’ को नवउदारवाद या बाजार-रूढ़िवाद भी कहा जाता है। इस अवधारणा का प्रतिपादन 1990 ई०में जॉन विलियम्स में किया। इसमें नीतियों का वह न्यूनतम समूह शामिल हुआ जिसे अपनाने को कतिपय संस्थाएँ जैसेकि अमेरिकी सरकार के ट्रेजिक डिपार्टमेंट, फ्रेडरल रिजर्व और वाणिज्य विभाग और अंतर-राष्ट्रीय मुद्राकोष ने अपनी सलाह दे चुकी थी।

वाशिंगटन आमराय में 10 सूत्रीय निर्णय लिया गया, जो इस प्रकार है—

“1. राजकोषीय अनुशासन—इसमें बजटीय घाटे को सीमित रखने के कठोर कदम हैं।

⁹<https://www.researchgate.net/publication/312587453> January 2012 ,Publisher-george Ritzer

2. सार्वजनिक व्यय की प्राथमिकताओं में परिवर्तन- सब्सिडी में कटौती और गरीबी निवारण सहित समाज कल्याण के सब कार्यक्रमों में भारी कटौती।
3. कर संबंधी सुधार- कराधान के आधार पर विस्तार और कर की सीमांत दर में कमी।
4. वित्तीय उदारीकरण- ब्याजदरों का बाजार द्वारा निर्धारण।
5. वित्तीय दर का निर्धारण ऐसे हो कि गैर परंपरागत निर्यात में वृद्धि हो।
6. व्यापार का उदारीकरण- कोष समाप्त हो और दस वर्षों में सीमा शुल्क को घटाकर दस प्रतिशत के आस-पास किया जाए।
7. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश निर्बाध हो तथा उसे देशी निवेश के पूरी समानता दी जाए।
8. निजीकरण- राजकोषीय उद्योगों का निजीकरण बेरोक टोक किया जाए।
9. विनिमयों को हटाना- नई देशी-विदेशी फर्मों के प्रवेश को पूरी तरह प्रतिबन्ध मुक्त करना।
10. संपत्ति संबंध अधिकारों की प्राप्ति, उपयोग और हस्तांतरण को हर प्रकार की बाधा से मुक्त करना।”¹⁰

इस प्रकार उपर्युक्त दस सूत्रों का उद्देश्य उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण में बदल गया जो एडम स्मिथ के विचारों का विस्तृत रूप है। वाशिंगटन आमराय ने विदेशी प्रत्यक्ष एवं संस्थागत निवेश के बेरोक-टोक आने-जाने, कंपनियों को मजदूरों की भर्ती सेवा शर्तों को बिना सरकारी हस्तक्षेप के तय करने तथा मजदूर संगठनों पर अंकुश लगाने पर जोर दिया।

‘A Brief History of Neoliberalism’ की समीक्षा करते हुए टुग्रल केस्किन (Tugrul Keskin) ने कहा कि-“Neo-liberalism has played a central role in the new economic processes towards the development of the ‘laissez faire’

¹⁰[http://www.deshbandhu.in/colin/editorial/जी-20 और वाशिंगटन-आम-राय-45669-2](http://www.deshbandhu.in/colin/editorial/जी-20%20और%20वाशिंगटन-आम-राय-45669-2) Reported by: Deshbandhu 2009-04-09 20:31

economy and combined with pure liberalist philosophy, as Fredrick Hayek claims. The state is the facilitator of the free market and protects private property, according to Harvey.”¹¹

अंतर-राष्ट्रीय स्तर पर नवउदारवाद के फलने-फूलने का कारणों पर विचार करते हुए गिरीश मिश्र ने दो आधार शिलाओं का हवाला दिया है, वे हैं- आस्ट्रियाई चिंतन धारा के अग्रणी नेताओं ‘लुडविग फान मिजेज और ‘फ्रेडरिक फान हायेक’ । गिरीश मिश्र लिखते हैं - “नवउदारवाद यानी ‘नया’ उदारवाद, एक हद तक सीमान्तवादी आर्थिक चिंतन के साथ संतुलन सिद्धांत की मीमांसाओं को जोड़ने का परिणाम था । उपर्युक्त जुड़ाव अर्थशास्त्र की उदीयमान आस्ट्रियाई चिंतन धारा के जरिए बना । इस प्रकार नवउदारवाद की दो मुख्य आधारशिलाएँ आस्ट्रियाई चिंतन धारा के अग्रणी नेताओं लुडविग फान मिजेज और फ्रेडरिक फान हायेक ने तैयार की । मिजेज के अनुसार स्वहितवाद समाज का बुनियादी नियम होता है जबकि हायेक के मुताबिक मुक्त बाजार के परिणामस्वरूप एक स्वतः फूर्त व्यवस्था का जन्म होता है जिससे आर्थिक परिकलन की समस्या का हल हो जाता है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दो अर्थशास्त्री नवउदारवाद के जनक थे और उनके द्वारा निर्मित आधारशिलाओं पर ही नवउदारवाद के सिद्धांतकारों की अगली पीढ़ियाँ खड़ी हुई।”¹²

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाशिंगटन आमराय द्वारा लिए गए अर्थव्यवस्था संबंधी निर्णयों को धीरे-धीरे सभी देशों ने बाजार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से या प्रलोभन वश या मजबूरी के कारण अपनाना शुरू किया । इस तरह नवउदारवाद इतिहास के कुछ खास मुकामों पर उभरा

¹¹Keskin 2009. "Book Review of A Brief History of Neoliberalism." *Societies Without Borders* 4 (1): 94-95.

¹²नवउदारवाद विविध आयाम, गिरीश मिश्र, पृष्ठ संख्या : 20

आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा अंतर-राष्ट्रीय संबंधों का धीरे-धीरे आकार ग्रहण करता हुआ वर्तमान रूप है। इन सभी संबंधों का कोई-न-कोई ठोस व्यावहारिक रूप पूरी तरह अनुभवजन्य, ऐतिहासिक परिघटना नहीं होता है।

1.5 नवउदारवाद की भूमिका

नवउदारवाद परंपरागत उदारवाद का पुनर्जीवित रूप है। उदारवाद मूलतः व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देता है और यह मानता है कि व्यक्ति की जो स्वतंत्रता है उसमें किसी भी प्रकार का व्यवधान राज्य या सरकार को नहीं डालना चाहिए। व्यक्ति को पूर्णतः स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। यदि बहुत जरूरी है तो सरकार बहुत ही कम कानून बनाकर व्यक्ति की स्वतंत्रता को परिमार्जित कर सकती है। उदारवादी-चिंतन 17वीं शताब्दी के अंत में पूरे यूरोप में व्याप्त था। 18वीं शताब्दी आते-आते अनेक उदारवादियों ने इसे आगे बढ़ाया। उदारवाद जो व्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देता है और उसका मूल भाव है ‘यदभाब्याम’ जिसको अंग्रेजी में ‘लेजस थेअरी’ कहते हैं जिसका मतलब होता है कि ‘जिसको जो मन करे, जैसा भाए’।

नवउदारवाद के जन्म से पूर्व हुए विश्वयुद्धों में बहुत सारे देशों की अर्थव्यवस्था तबाह हो गई थी। अब उन देशों के समक्ष यह प्रश्न था कि देश की अर्थव्यवस्था में कैसे सुधार लाया जाए? इसके लिए यह आवश्यक था कि पुनः राज्य व्यक्ति के आर्थिक क्रिया-कलापों में हस्तक्षेप करे इसीलिए 1950 से 1970ई० तक व्यक्ति के आर्थिक मामलों में राज्य ने पूर्ण हस्तक्षेप किया, इसके चलते राज्य ने बहुत कल्याणकारी नीतियाँ चलाई और जिन देशों की अर्थव्यवस्था ढह गई थी, वह पुनः स्थापित होने लगी थी। लेकिन 1970 के आते-आते व्यापारिक जगत में यह महसूस किया जाने लगा कि अब देश की अर्थव्यवस्था स्थिर हो चुकी है इसलिए राज्य को पुनः उदारवाद की नीति अपनाते हुए व्यक्ति के आर्थिक क्रिया कलापों में हस्तक्षेप करना बंद कर देना चाहिए।

इसके तहत राज्य का मुख्य कार्य होता है केवल नीतियाँ बनाए और प्रतिस्पर्धा करने के लिए सभी व्यक्तियों और कॉर्पोरेटों को बाजार में छोड़ दे। इस बाजार को 'मुक्त-बाजार'(Free market) का नाम दिया गया। वास्तव में नवउदारवाद की अवधारणा परंपरागत उदारवाद का 'रीअसर्सन' (फिर से दावा करना) है जो आज के समय में यह कहता है कि अब किसी भी सरकार को बाजार में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और सभी देशों को मुक्त-व्यापार के लिए छूट देना चाहिए। मुक्तव्यापार ही नवउदारवाद की मुख्य अवधारणा है। उदारवाद जहाँ व्यक्ति केन्द्रित था वहीं नवउदारवाद बाजार केन्द्रित है। नवउदारवाद की अवधारणाएँ इस प्रकार हैं--

1. मुक्त-बाजार या बाजारवाद,
2. उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण यानी LPG की शुरुआत
3. नौकरशाही व्यवस्था का खत्म होना।

नवउदारवाद का संक्षिप्त इतिहास ('A Brief History of Neoliberalism') पुस्तक जो कि डेविड हर्वे द्वारा लिखी गई है, में भी कहा गया है कि--“1978-80 के वर्षों को भविष्य के इतिहासकार एक क्रांतिकारी के रूप में देखते हैं (Future historians may well look upon the years 1978–80 as a revolutionary)”¹³ नवउदारवादियों का मानना है कि पूरा विश्व एक बाजार के रूप में हो। सरकार केवल नीतियों का निर्धारण करे पर निजी सेवाओं के हस्तक्षेप न करे।

1.6 भूमंडलीकरण का अर्थ एवं स्वरूप

भूमंडलीकरण शब्द अंग्रेजी के ग्लोबलाइजेशन(Globalization) शब्द का हिंदी अनुवाद है। इसके लिए वैश्वीकरण शब्द भी प्रयुक्त होता है। यह शब्द बीसवीं सदी के अंतिम

¹³A Brief History of Neoliberalism , David Harve , page no 1

दशक में व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जाने लगा । 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद जब दुनिया एक ध्रुवीय हो गई और अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने दुनिया के, खासतौर पर तीसरी दुनिया के बाजार पर कब्जा जमाना शुरू किया तो इसे न्याय संगत ठहराने के लिए ‘भूमंडलीकरण’ नाम दिया गया । भूमंडलीकरण ऐसे बाजार की कल्पना करता है जहाँ पर सभी वस्तुएं एक स्थान पर मिल सके । भूमंडलीकरण ‘सर्वजन हिताय’ और ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ पर बल देता है लेकिन यह अपने ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ जैसे सिद्धांतों पर खरा नहीं उतर सका, बल्कि यहाँ समाज दो भागों में बँट गया । एक वह जो उच्च वर्ग या पूँजीपति है और दूसरा वह जो निम्न वर्ग या मजदूर और किसान है । ‘भूमंडलीकरण एवं भारतीय किसानों की समस्याएँ’ लेख में डॉ० माधवेन्द्र लिखते हैं कि-“भूमंडलीकरण विभिन्न देशों के बीच ऐसी निर्बाध आर्थिक प्रक्रिया है जो एक निश्चित एवं सर्वमान्य अंतर-राष्ट्रीय नियमों एवं शर्तों से बँधी होती है । इसमें ऐसे अर्थ-तंत्र की संरचना एवं वैश्विक बाजार के निर्माण की प्रक्रिया होती है कि प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था एक-दूसरे से जुड़ी हो ।”¹⁴

वास्तव में भूमंडलीकरण शब्द को सुनने से एक भ्रम-सा पैदा होता है कि यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें अपने छोटे स्वार्थों से ऊपर उठकर लोग सारे संसार के भले के लिए एक हो जाएँगे लेकिन भूमंडलीकरण का अर्थ इसके ठीक विपरीत है । यह ‘सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय’ की ध्वनि के विपरीत यह व्यवहार सारे संसार को कुछ प्रतिबंधित पूँजीपतियों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनका सबसे प्रबल केंद्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई है । वैश्विक परिदृश्य में भूमंडलीकरण की शुरुआत कब से हुई ? और इसका आरंभिक इतिहास क्या है ? इसके बारे में पुष्पपाल सिंह ने दिखाया है कि भूमंडलीकरण के चार चरण हैं, प्रथम चरण 1850-

¹⁴ अभिनव कदम पत्रिका, अंक 27 पृष्ठ संख्या : 231

1914, दूसरा चरण 1914-1950 तीसरा चरण-1951-1990 और चौथा चरण- 1990 से अद्यतन। जिसके चतुर्थ या अंतिम चरण से भूमंडलीकरण की चर्चा जोर-शोर से होने लगी है।

भूमंडलीकरण सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलावों का एक समुच्चय है। यह हमारे भीतरी और बाहरी जीवन के दोनों पक्षों को प्रभावित करता है और कर रहा है। वर्तमान स्थिति यह है कि एक तरफ कॉर्पोरेट व्यवसायों ने सारी दुनिया को दो फाँकों में विभाजित कर दिया है। एक तरफ दुनिया का वह हिस्सा है जो भूमंडलीकरण हो चुका है और दूसरी तरफ इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से पूर्णतया बाहर है। एक तरफ भूमंडलीकरण संस्कृति का हिस्सा प्रौद्योगिकी संस्थानों, अंतर-राष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग, स्थानीय स्तर के भ्रष्टाचार तथा अपराधीकरण के बीच फल-फूल रहा है तो दूसरी तरफ आम जनता है जो वह बाजार का हिस्सा नहीं बन पा रही है।

आम जनता निरर्थक और असहाय होती जा रही है। कॉर्पोरेट जगत मौका मिलने पर ज्यादा से ज्यादा जगहों पर अपना पैर पसार रहा है। “इस समय बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कारोबार पूँजी की विकरालता के कारण राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़कर दुनिया में फैल रहा है और यह फैलकर अपना खेल-खेलने के लिए सारी परंपरागत सीमाओं, बंधनों, नियमों, कानूनों और मर्यादाओं को तोड़ रहा है। यही है ‘भूमंडलीकरण’। भारत में शायद कोई ऐसा सौभाग्यशाली पूँजीपति नहीं है जो दुनिया के ढाई सौ पूँजीपतियों की सूची में जगह पा सके। यही हाल है कि आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सिद्धांतकार और विचारक हमें समझा रहे हैं कि राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता पुरानी चीज़ हो गई है। क्षेत्रीय स्वायत्ता और भाषा के आधार पर संस्कृति की पहचान करना पिछड़ापन है। अपनी राष्ट्रीयता, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति के बारे में सोचकर विकास

की सहज गति को अवरुद्ध करना है।¹⁵ ऐसा माना जाता है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से देश एक दूसरे से परस्पर निर्भर हो जाते हैं और लोगों के बीच दूरियाँ घट जाती हैं। आम तौर पर भूमंडलीकरण दो क्षेत्रों पर विशेष बल देता है—उदारीकरण और निजीकरण

1.7 उदारवाद तथा नवउदारवाद में अन्तःसंबंध

उदारवाद आर्थिक सर्वेक्षण का एक प्रकार है और नवउदारवाद अपनी व्यापकता के कारण इसे अपने में समाहित किए हुए हैं। इन दोनों का उद्देश्य औद्योगिक क्रांति और वैश्विक व्यापार को बढ़ावा है। देश आजाद होने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था को सही और सुचारू रूप से चलाने के लिए समय-समय पर सरकार द्वारा प्रयास होता रहा है उन्हीं प्रयासों में उदारवाद है। भारतीय समाज पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। उदारवाद व्यक्तिवाद और पूँजीवाद से जुड़ा हुआ है। ‘वाशिंगटन आमराय’ द्वारा लिए गए उन 10 निर्णयों को सभी देशों में भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण (LPG) या बाजारीकरण के माध्यमों से लागू करना नवउदारवाद की व्यापक नीतियाँ थीं।

जहाँ उदारवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करता है वहीं नवउदारवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता की भी वकालत करता है। नवउदारवाद परंपरागत उदारवाद का संशोधित रूप है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता से ज्यादा पूँजीवादी मुक्त-व्यापार की स्वतंत्रता पर बल देता है। परंपरागत उदारवाद व्यक्ति की आर्थिक व राजनीतिक दोनों प्रकार की स्वतंत्रता का समर्थन करता है और वह पूर्णतः व्यक्ति पर केन्द्रित था। नवउदारवाद और उदारवाद में जो सूक्ष्म अंतर है वह आर्थिक स्वतंत्रता से संबंधित है।

नवउदारवाद का भारतीय समाज पर पड़े प्रभावों को देखते हुए डॉ० गिरीश मिश्र ‘नवउदारवादी दलदल में भारत’ नामक लेख में लिखते हैं—‘गरीबी, गाँवों और पिछड़े राज्यों

¹⁵हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० अमरनाथ, पृष्ठ संख्या: 259

से अपेक्षाकृत विकसित राज्यों की ओर पलायन, भ्रष्टाचार, अपराध, आतंकवाद, सामाजिक विषमता, क्षेत्रीय असंतुलन, मलिन बस्तियाँ आदि हमारे देश में अनेक दशकों से विद्यमान हैं मगर इनमें परिणामात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध से हो रहे हैं। लाखों दावों के बावजूद गरीबी बढ़ती जा रही है। सुरेश तेंदुलकर की रिपोर्ट देखें या अर्जुन सेन गुप्ता की अथवा गरीबी रेखा के नीचे जिंदगी बसर करने वालों से जुड़ी विशेषज्ञ समिति की, सब यही रेखांकित करती हैं कि देश में आर्थिक विषमता तेजी से बढ़ रही है। गरीबी की मार से बहुत बड़ा जनसमुदाय त्रस्त है।”¹⁶

नवउदारवाद और उदारवाद के संबंधों के दरम्यान ही पूँजीपतियों, कॉर्पोरेट कंपनियों और मध्यवर्ग और जन-सामान्य वर्ग (जिसके अंतर्गत श्रमिक, मजदूर और किसान आते हैं) के पारस्परिक संबंधों का भी अवलोकन करना आवश्यक है। जहाँ तक मध्यवर्ग और पूँजीपतियों के आपसी संबंधों का सवाल है। मध्यवर्ग में भी तीन श्रेणियाँ हैं जैसे- उच्च-मध्यवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न-मध्यवर्ग। यह वर्ग हमेशा से पूँजीपतियों का पिछलग्गू रहा है। इसके पीछे एक स्वार्थ यह हो सकता है कि आधुनिकतावादी संस्कृति के दिखावेपन में आकर पूँजीपतियों जैसा व्यवहार करना। जन-सामान्य वर्ग का भी पूँजीपतियों से संबंध न चाहते हुए भी मधुर ही है क्योंकि कहीं-न-कहीं ये एक दूसरे के सहायक हैं।

आज देश में जनसंख्या नियंत्रण एक बड़ी चुनौती है। जनसंख्या में होने वाली प्रत्येक वृद्धि देश में बेरोजगारी की संख्या को बढ़ावा देती है। जिससे गरीबों की संख्या में बढ़ोतरी होती है। इन परिस्थितियों से निपटने के लिए सरकार अनेक योजनाएँ बनाती हैं लेकिन जनसंख्या वृद्धि जनित समस्याओं के सामने ये सभी योजनाएँ लाचार नज़र आती हैं। इसी कारण लगभग तीन

16 <https://web.sas.upenn.edu/business-hindi/module-12c-2/>

दशक चल रहे आर्थिक उदारीकरण के बावजूद देश का आर्थिक विकास प्रभावी ढंग से नहीं हो पाया है और ना ही बेरोजगारी तथा गरीबी जैसी समस्याओं का समाधान हुआ है।

उदारवाद एक बौद्धिक आन्दोलन है। जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक आदि पहलू समाहित हैं। पिछले तीन दशकों में बदलती परिस्थितियों में नई-नई चुनौतियों का सामना करने के लिए उदारवाद ने नए-नए विचारों को अपनाया है। हैलोवेल के अनुसार उदारवाद की निम्न विशेषताएँ होती हैं-

1. मानवीय व्यक्तित्व के मूल्य तथा व्यक्ति की आध्यात्मिक समानता में विश्वास।
2. व्यक्ति की इच्छा-स्वायत्ता में विश्वास।
3. व्यक्ति की अच्छाई तथा उसकी विवेकशीलता में विश्वास।
4. व्यक्ति के कुछ आधारभूत अधिकारों जीवन, स्वतंत्रता तथा संपत्ति के अधिकार में आस्था।
5. राज्य की उत्पत्ति के संबंध में यह मान्यता है कि यह व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा हेतु परस्पर सहमति का परिणाम है।
6. व्यक्ति तथा राज्य के बीच संविदावादी संबंध।
7. सामाजिक नियंत्रण में विधि के महत्त्व पर बल।
8. व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर।
9. यह मान्यता कि यह सरकार सर्वोत्तम होती है जो सबसे कम शासन करती है।
10. इस तथ्य में विश्वास कि व्यक्ति के प्राकृतिक विवेक द्वारा सत्य की सुलभता संभव है।

उदारवाद अपनी बौद्धिक पराकाष्ठा एवं परिवेश के माध्यम से स्वतंत्रता एवं सहिष्णुता के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करता है। जिससे अन्य विचारधाराएँ प्रस्फुटित और पल्लवित होती हैं। उदारवाद सामाजिक समझौता की एक उपज है। उदारवाद ने अपने सिद्धांत के माध्यम से यह

स्थापित किया कि राज्य एक समझौते की उपज है। अपने स्वरूप में यह एक साधन है जिसे व्यक्ति ने अपनी सुविधा के लिए अपना लिया है। उदारवाद के विभिन्न रूप हैं –

1. सकारात्मक उदारवाद
2. चिरसम्मत अथवा नकारात्मक उदारवाद
3. आधुनिक उदारवाद
4. समकालीन उदारवाद

सकारात्मक उदारवाद में कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य पर जोर दिया जाता है। चिरसम्मत उदारवाद को भिन्न नामों से जाना जाता है- नकारात्मक उदारवाद, वैयक्तिक उदारवाद, एकीकृत उदारवाद, प्राथमिक उदारवाद आदि। चिरसम्मत उदारवाद का मूल तत्व व्यक्ति की स्वतंत्रता से है जैसे नागरिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता और राजनीतिक स्वतंत्रता। उदारवादी परंपरा के अन्दर हम बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में नवीन पीढ़ी के विद्वानों में मध्य तर्क-वितर्क का एक लम्बा दौर देखते हैं। यद्यपि ये विद्वान अपने सिद्धांतों के बहुत कुछ अपने पूर्ववर्तियों लॉक, ग्रीन और लास्की आदि से ग्रहण करते हैं फिर भी मौजूदा परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उदारवादी विचारों को तर्क संगत बनाने के क्रम में व्यापक योगदान देते हैं।

भारत में नवउदारवाद की शुरुआत 90 के दशक में हुई। तीन दशक से अधिक समय बीत जाने के बावजूद किसी भी सरकार ने यह देखने की कोशिश नहीं की कि इसका आम जनता पर क्या प्रभाव पड़ा और सामान्य जनता का उदारीकरण से कितना विकास हुआ? विभिन्न सरकारों ने इसे बढ़ा चढ़ाकर पेश किया। इन सरकारों में जी०एस०टी० आय में वृद्धि हुई है, प्रति व्यक्ति आय वृद्धि हुई है, उत्पादन बढ़ाने की होड़ लगी हुई है। सभी सरकारों में इसके प्रभाव को सकारात्मक ही दिखाने की कोशिश करते रहे हैं। सच्चाई यह है कि जहाँ सरकार नवउदारवाद के प्रभाव को सकारात्मकता का गाल बजा-बजा कर प्रचार कर रही है वहीं एक ओर मॉल गोदामों में

सड़ रहे अनाज और दूसरी तरफ भूख से बिलबिलाती और मरती जनता का दृश्य है। आश्चर्य की बात यह है कि आर्थिक सुधार होने के बाद भी भारत में गरीबों की संख्या बढ़ती जा रही है।

फिलहाल वर्तमान समय के सरकार आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए तथा गरीबी को कम करने के लिए जी०एस०टी० लागू करना चाहती है। जी०एस०टी० में यह होगा कि भारत के किसी भी राज्य में वस्तुओं के मूल्य एक समान होंगे “वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली देशभर में लागू होने से न सिर्फ कारोबार को एक नई गति मिलेगी बल्कि कार्यों के लिए चुकाए गए टैक्स की वापसी (टैक्स क्रेडिट लेना) भी बेहद आसान हो जाएगी यही नहीं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में तो राज्यों की सीमा पर कागजी कार्यवाही में होने वाली दरों से भी निजात मिलेगी।”¹⁷

इस समय फिलहाल 17 तरह के अलग-अलग कर केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा कारोबारियों से वसूले जाते हैं। वर्तमान समय में जी०एस०टी० से कारोबारियों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जी०एस०टी० के लिए एक एप्प(GST app)भी लांच किया है। जी०एस०टी० प्रणाली में आपूर्तिकर्ता उत्पादन एवं सेवा उपलब्ध कराने वालों की तरफ से टैक्स का भुगतान पूरी श्रृंखला की शुरुआत में ही किया जाएगा। केंद्र और राज्य सरकारें समस्त उत्पादन श्रृंखला पर जी०एस०टी०लागू करेगी। केंद्रीय जी०एस०टी० केंद्र सरकार वसूलेगी। राज्य सरकारें राज्य स्तर पर होने वाले कारोबार पर जी०एस०टी०वसूलेगी। इन दोनों के अलावा मॉल की अंतर-राष्ट्रीय आवाजाही पर केंद्र सरकार आई०जी०एस०टी० वसूलेगी। इस तरीके से होने वाली आय राज्यों के बीच बांटी जाएगी।

हाल ही में संसदीय सत्र की शुरुआत में सरकार द्वारा पेश की एक सत्रीय बजट **“एक देश एक कर”** केआगाज के साथ हुआ। इस बजट के पेश होने पर कहा गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सुधार में इतिहास रचा गया है। ‘एक देश एक कर’ की अवधारणा को पूरा करते

¹⁷अमर उजाला, 13 अप्रैल 2017 पृष्ठ संख्या 11

हुए आजादी के बाद के पहले बड़े आर्थिक सुधार के रूप में 'वस्तु एवं सेवा कर' की राह की बाधा दूर हुई।'¹⁸

1.9 भारत में नवउदारवाद का स्वरूप

अर्थव्यवस्थात्मक सुधार और व्यापारिक संरचना को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के पश्चात भारत में भी बिगड़ी हुई अर्थव्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से नवउदारवाद की प्राक्कल्पना की गई थी। किसी भी देश की सामाजिक या राजनीतिक बुनावट उस देश की आर्थिक संरचना पर निर्भर करती है। भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है जो कि मिश्रित अर्थव्यवस्था है। पहले स्थान पर अमेरिका और दूसरे स्थान पर चीन की अर्थव्यवस्था सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएं हैं। किसी युद्ध या महामारी से देश की आर्थिक स्थिति में बहुत बड़े स्तर पर उतार चढ़ाव होता है। ज्यादा-से-ज्यादा हानि होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले जब अमेरिका समेत पूरी दुनिया भयानक आर्थिक मंदी की चपेट में आई तभी से आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए समय-समय पर अर्थशास्त्रियों द्वारा 'आर्थिक सुधार नीतियाँ' बनाई जाती रही है। भारत को आजादी मिलने के बाद आर्थिक स्थिति बहुत डाँवाडोल थी। एक सुनिश्चित नीति और देश की अर्थव्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए आर्थिक नीति की आवश्यकता महसूस हुई। आजाद भारत में आर्थिक सुधार संबंधित अर्थशास्त्रियों द्वारा तीन नीतियाँ बनाई गई, जो इस प्रकार हैं-

1. प्रथम औद्योगिक-नीति , 6 अप्रैल 1948
2. द्वितीय औद्योगिक-नीति , 30 अप्रैल 1956
3. तृतीय औद्योगिक-नीति , 24 जुलाई 1991

¹⁸अमर उजाला, 13 अप्रैल 2017 पृष्ठ संख्या : 13

6 अप्रैल 1948 को जो औद्योगिक क्षेत्रों में बढ़ावा देने के लिए जो प्रयास किया गया था वह स्वतंत्र भारत की प्रथम औद्योगिक-नीति थी। दूसरी नीति प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के शासनकाल में हुई। जिसका उद्देश्य आर्थिक विकास में योगदान बढ़ावा, सार्वजनिक एवं सहकारी क्षेत्रों का विस्तार, आय एवं संपत्ति के विवरण की विषमताओं को कम करना, लघु व कुटीर उद्योगों को उच्च प्राथमिकता देना तथा निजी एकाधिकार की स्थापना को नियंत्रित करना था। इन उद्देश्यों की पूर्ति कहाँ तक हुई? कहना मुश्किल है। तीसरी औद्योगिक क्रांति जिसे ‘नई आर्थिक-नीति’ कहा जाता है, जो 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंह राव और वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के समय हुई। नई आर्थिक-नीति का जो पूरा का पूरा ढांचा डॉ. मनमोहन सिंह की ही देन है।

कैथे ले मोंस वालकर (Kethy Le Mons Walker) ने ही अपने एक लेख में कहा था कि भारत में नवउदारवाद की शुरुआत ‘नई अर्थनीति से होती है –“India’s dizzying economic ascent began in 1991 when the government prompted by the present Prime Minister Manmohan Singh, who was then Finance Minister and portrayed widely as the ‘guru’ of India’s economic liberalization – abruptly dismantled the ‘license raj’ system of tight controls and permits in place since independence in 1947 and introduced neoliberal economic policies.”¹⁹

1.10 भारतीय अर्थव्यवस्था सुधार संबंधित नई अर्थ-नीति

नई अर्थ-नीति सर्वाधिक चर्चित रही क्योंकि यही वह समय था भारत देश में उदारीकरण और निजीकरण का दौर चल रहा था। वर्ष 1991 के आर्थिक सुधार नीति के अंतर्गत जितने भी

¹⁹<https://doi.org/10.1080/03066150802681963>, Pages-557-620, Published online: 10 Mar 2009

क्षेत्रों में परिवर्तन किए गए उसमें सर्वाधिक औद्योगिक-नीति के अंतर्गत किए गए क्योंकि उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण एवं बाजारीकरण 'नई अर्थनीति के आधार स्तम्भ हैं। संक्षेप में इसे LPG भी कहते हैं।

1. L- Liberalization(उदारवाद)
2. P- Privatization (निजीकरण)
3. G- Globalization (भूमंडलीकरण)

LPG के कारण ही 1990 दशक की शुरुआत में भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण नीतिगत बदलाव हुए। यह आर्थिक सुधार का नया मॉडल सामान्यतया उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण मॉडल के रूप में जाना जाता है। नई अर्थनीति के उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. “भारतीय अर्थव्यवस्था को 'वैश्वीकरण' के मैदान में उतारने के साथ-साथ इसे बाजार के रूख के अनुरूप बनाना।
2. मुद्रास्फीति की दर को नीचे लाना और भुगतान असंतुलन को दूर करना।
3. आर्थिक विकास दर को बढ़ाना और विदेशी मुद्रा के पर्याप्त भंडार का निर्माण करना
4. आर्थिक स्थिरीकरण को प्राप्त करने के साथ-साथ सभी प्रकार के अनावश्यक आर्थिक प्रतिबंधों को हटाना। अर्थव्यवस्था के लिए बाजार अनुरूप एक आर्थिक परिवर्तन लाना।
5. प्रतिबंधों को हटाकर, मॉल, सेवाओं, पूंजी, मानव संसाधन और प्रौद्योगिकी के अंतर-राष्ट्रीय प्रवाह की अनुमति प्रदान करना।

6. अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में निजी कंपनियों की भागीदारी बढ़ाना । इसी कारण सरकार के लिए आरक्षित क्षेत्रों की संख्या घटाकर 3 कर दिया गया ।”²⁰

भारत में नवउदारवाद मॉडल का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा, लेकिन अधिकतर अर्थशास्त्रियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़े इन प्रभावों को सकारात्मक कम और नकारात्मक ज्यादा कहा है । आर्थिक सुधार की इन नीतियों के दूरगामी परिमाण अच्छे हो सकते हैं परन्तु इसके आसार कम दिख रहे हैं । पूँजीवादी चश्मे से देखने पर तो इसमें अच्छाई ही अच्छाई नजर आयेगी । भारत में उदारवादी नीतियाँ लागू होने से जन-सामान्य वर्ग पर एकदम उल्टा असर दिखाई देता है । कल-कारखाने और बड़ी-बड़ी कंपनियों के स्थापित होने से सबसे ज्यादा नुकसान प्राकृतिक सम्पदा का हुआ है । सरकार निजीकरण के तहत पूँजीपतियों को खुली छूट दे दी । काफी तादाद में जमीनों की घेराबंदी हुई । विकास के नाम पर कोयला खदानों से प्रकृति का दोहन शुरू हुआ और ‘वन अधिनियम’ बनाकर बहुत बड़ी संख्या में आदिवासियों का उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया गया ।

इस आर्थिक सुधार नीति से भारत में एक नए युग की शुरुआत हुई । “भारत 2020 में महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है । ऐसा माना जाता है कि विकास की दर इसी गति से बढ़ती रही तो एक दिन भारत विश्व की महान शक्तियों में शामिल हो जायेगा लेकिन इस सच्चाई को भी नहीं झुठलाया जा सकता कि एक ओर हमारे पास ‘चमकता भारत’ है, जिसमें 53 अरबपति हैं और तेजी से बढ़ता 20 करोड़ पतियों का समृद्ध एवं मध्यवर्ग है जो उच्च विकास दर के लाभ चूसता चला जाता है दूसरी ओर एक दुःखी भारत है जो अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों और गन्दी बस्तियों में निवास करता है जिसकी संख्या 90 करोड़ है । जब हम 90 करोड़ जनता के रहन-सहन

²⁰https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%A8%E0%A4%AF%E0%A5%80_%E0%A4%86%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A5%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%A8%E0%A5%80%E0%A4%A4%E0%A4%BF_%E0%A5%A7%E0%A5%AF%E0%A5%AF%E0%A5%A7अन्तिम परिवर्तन 01:53, 15 जून 2020

की बात करते हैं तो आर्थिक महाशक्ति होने का मिथक बेनकाब हो जाता है। जब तक देश की अत्यधिक बहुल जनसंख्या की स्थिति में सुधार नहीं हो जाता तब तक भारत को एक वास्तविक आर्थिक महाशक्ति कहना न्यायोचित नहीं होगा।”²¹

1.11 नवउदारवाद का भारतीय समाज पर प्रभाव

वैश्विक स्तर पर नवउदारवाद का व्यापक प्रभाव दिखाई दे रहा है। सम्पूर्ण रूप में देखने पर अन्य देशों के साथ-साथ भारत देश में भी नवउदारवाद का सकारात्मक और नकारात्मक दो प्रभाव दिखाई देता है। नवउदारवाद सामाजिक अध्ययन और अर्थशास्त्र का एक नीति मॉडल है जो सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र को आर्थिक कारकों का नियंत्रण स्थानांतरित करता है नवउदारवाद पिछले 30वर्षों से व्यापक हो रहा है यद्यपि यह शब्द जो कभी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से जाना जाता था। स्पष्ट रूप से नवउदारवाद के प्रभाव को देख सकते हैं कि धनी व्यक्ति और अधिक धनी होता ही जाता है और गरीब और अधिक गरीब होता जा रहा है।

1.11.1 सकारात्मक प्रभाव

नवउदारवाद के सकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं --

1. विदेशों से निर्यात और आयात का वातावरण बनना।
2. व्यापारिक वस्तुओं की अभूतपूर्व वृद्धि।
3. सामान्यजन तक स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं मुहैया होना।
4. मध्य वर्गीय परिवार के स्वप्न में इजाफा।
5. नवीन संस्कृति का उदय।
6. वैज्ञानिकता में बढ़ोतरी।
7. न्यूनतम दर पर व्यापार।

²¹भारत में आर्थिक उदारीकरण एवं निर्धनता निवारण, सं. इन्दु वाष्णेय और डॉ.उषा शर्मा, पृष्ठ संख्या 41-42

8. सामाजिक बदलाव के साथ सांस्कृतिक जीवन में बदलाव ।
9. कम्पनियों में युवकों को रोजगार में इजाफा।
- 10 . मानसिक मेहनत में इजाफा ।
- 11 .कॉरपोरेट स्कूल शिक्षा का उदय ।
- 12 . आय में वृद्धि ।
- 13 .आर्थिक संपदा में अपार वृद्धि ।
- 14 . सेवा क्षेत्र का विस्तार ।
- 15 . भारत का कॉरपोरेट जगत अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में भागीदारी और विदेशों में बहुराष्ट्रीय सेवाओं में वृद्धि ।
- 16 .बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना होना ।
- 17 . शिक्षण संस्थानों का विस्तार ।

नवउदारवाद का दौर कई मायने में ज्यादा अहमियत रखता है । इसका एक सकारात्मक पक्ष यह रहा कि जिन देशों में पहले भारत निर्यात नहीं करता था अब उन देशों में भी भारत का निर्यात होने लगा है । नई प्रौद्योगिकियों के आने से समुद्री उत्पादन और निर्यात में लगातार बढ़ोतरी हुई है पहले मात्र कुछ चीजों का लगभग एक दर्जन का निर्यात किया जाता था अब वह 90 देशों से निर्यात किया जा रहा है । इसके अंतर्गत आने वाले जी०एस०टी०का भारतीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक रूप से प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

भारतीय समाज में जनसाधारण पर नवउदारवाद का प्रभाव दो रूप में दिखाई देता है । पहला यह है कि पूँजीपति वर्ग का इसका प्रभाव सकारात्मक रहा है और इन्हीं पूँजीपतियों ने एक देश से दूसरे देशों में अपने व्यापारिक संबंध बढ़ाए । कई विदेशी कम्पनियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बड़े पैमाने पर निर्यात हुआ । इस कंपनियों के मालिकों के साथ-साथ मजदूर वर्ग की

भी जीवन-चर्या में और उनके व्यावहारिकता में परिवर्तन दिखाई देता है परन्तु ज्यादा से ज्यादा फायदा कंपनी मालिकों को ही हुआ। इसी समय बहुत सारी कंपनियाँ खूब फली-फूली।

जहाँ एक तरफ पूँजीपति लाभान्वित हुआ वहीं दूसरी तरफ भारतीय लघु कुटीर उद्योगों को काफी नुकसान हुआ। बहुत सारे लघु कुटीर उद्योगों का व्यापार बंद हो गया। नवउदारवाद के प्रभाव से विकासशील देशों में आर्थिक असमानता बढ़ती जा रही है जिसके परिणाम स्वरूप समाज दो वर्गों में विभाजित होता जा रहा है। एक पूँजीपति वर्ग या उच्च वर्ग है और दूसरा गरीब, श्रमिक और मजदूर वर्ग है। विश्व में धनवानों और धनहीनों के बीच दिनोंदिन खाई बढ़ती जा रही है। एक ओर पूँजीपति आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपभोग कर रहा है और प्राकृतिक संसाधनों को निजी स्वार्थों या चंद फायदे के लिए बर्बाद कर रहा है वहीं करोड़ों लोग ऐसे हैं जिन्हें दो वक्त का भोजन भी नसीब नहीं हो पा रहा है।

नवउदारवाद के प्रभावों से पर्यटन उद्योग को भी बढ़ावा मिला है —“वैश्वीकरण के दौर में पर्यटन उद्योगों को जबरदस्त बढ़ावा मिला है। 1996 में लगभग चौदह करोड़ घरेलू पर्यटन होते थे जबकि 2007 में यह संख्या बढ़कर 52.7 करोड़ तक पहुँच गई थी। इसी दौरान विदेशी सैलानियों की तादात भी 22.9 लाख से बढ़कर 50.8 लाख हो गई। भारत के कई इलाकों में पहले सैर-सपाटे की इजाजत नहीं थी। पिछले वर्ष कुछ वर्षों के दौरान ऐसे बहुत सारे इलाकों को भी पर्यटन उद्योग के लिए खोल दिया गया है। इनमें पारिस्थितिकीय, सांस्कृतिक एवं रक्षा की दृष्टि से संवेदनशील इलाके हैं, जिसमें लद्दाख, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप और पूर्वोत्तर भारत के बहुत सारे हिस्से प्रमुख हैं। पहले ही वैश्वीकरण की भेंट चढ़ चुके दूसरे इलाके

बेहिसाब, अनियंत्रित पर्यावरण गतिविधियों की वजह से त्रस्त हैं।”²² पर्यटन उद्योगों का बढ़ाने से सीधी-सी बात है की इसका फायदा उच्च वर्ग को ही मिला है।

आर्थिक उदारीकरण की नीति लागू होने से भारत का व्यापारिक तंत्र देश और विदेशों में मजबूत हुआ है तथा इससे अंतर-राष्ट्रीय व्यापार का एक माध्यम बना। नवउदारवाद की नीतियों से मध्यवर्गीय परिवार को बड़े स्तर पर फायदा हुआ। नवीनतम यातायात के साधनों और उपकरणों का प्रभाव आम जनता तक पहुँचता हुआ दिखाई देता है। 1991 में आये भारत में आर्थिक संकट से विदेशी मुद्रा का भण्डार खाली हो गया था स्थिति यह आ गई थी कि भारत को सोना लंदन में गिरवी रखना पड़ा था। संकट दूर हुआ और भारत के विदेशी मुद्रा भण्डार में काफी बढ़ोतरी हुई। भारत के निर्यात भी काफी बड़े हैं। यदि विदेशी पूँजी निवेश को उपलब्धि माने तो इस अवधि में यह भी काफी बढ़ा है।

भारतीय कंपनियाँ अब दुनिया के अन्य देशों में जा रही हैं और वहाँ की कंपनियों को खरीद रही है यानी वे भी बहुराष्ट्रीय बन रही हैं। दुनिया की शीर्ष के अमीरों की सूची में भारतीयों का नाम दिखाई दे रहा है। कमल नयन काबरा लिखते हैं-“20 सदी के आधुनिक भारत का इतिहास जब लिखा जाएगा तो उसमें 2 तारीख है महत्वपूर्ण मानी जाएगी। पहली है 15 अगस्त 1947 जब लम्बे संघर्ष के बाद भारत अंग्रेजों की गुलामी से आजाद हुआ। दूसरी है मई 1991, जब आजाद भारत की सरकारों ने वापस देश को गुलाम और परावलंबी बनाने की नीतियों को अख्तियार करना शुरू किया। कहने को तो राजनीतिक रूप से देश आजाद रहा

²²आलोचना, सं. नामवर सिंह, जनवरी-मार्च 2014 पृष्ठ संख्या : 41

किन्तु सन 1991के बाद उसकी नीतियाँ, योजनाएं और कार्यक्रम विदेशी निर्देशों पर विदेशी हितों के लिए संचालित होने लगे।”²³

भारत में नवउदारवाद के प्रभाव से छोटी से लेकर बड़ी बड़ी कंपनियों में लोगों को काम करने का अवसर मिला। बड़ी संख्या में श्रमिक और मजदूर वर्ग का उदय हुआ। शैक्षिक सुधार के लिए पूँजीपतियों ने विद्यालयों को अपने अनुसार कॉरपोरेट स्कूल में तब्दील कर रहा है। वर्तमान स्थिति यह है कि ‘पढ़ाई कम दिखावापन ज्यादा’ हो गया है। कुछ भी हो पूँजीपतियों का यह उद्देश्य कतई नहीं था कि समाज में शिक्षा का स्तर बढ़े, सामाजिक स्थिति में सुधार हो। इनका मुख्य उद्देश्य था ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना।

नवउदारवादी आर्थिक नीतियों में यह भी शामिल था की आत्मनिर्भरता के एक आत्मकेंद्रित मॉडल की बजाय निर्यात और आयात पर पहले से ज्यादा ध्यान दिया जाएगा, विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों को विदेशी निवेश के लिए खोला जाएगा, नियमन व्यवस्था का उदारीकरण किया जाएगा और निजी क्षेत्र में निवेश की जगह निजीकरण को बढ़ावा दिया जाएगा। नवउदारवाद का भारतीय समाज पर सकारात्मक प्रभाव के बरक्स नकारात्मक प्रभाव भी दिखाई देता है।

1.11.2 नकारात्मक प्रभाव

नवउदारवाद के नकारात्मक प्रभाव को निम्न प्रकार से बिन्दुवार प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से दोहन।
2. गरीबी आंकड़ों का बढ़ना।
3. बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि।

²³नव उदारवादी नीतियाँ नाकामी और दुराग्रह संपादक, कमल नयन काबरा और ब्रजेन्द्र उपाध्याय पृष्ठ संख्या

4. शारीरिक श्रम का हास ।
5. पारिवारिक रिश्ते में कड़वाहट ।
6. मानवीय संवेदना का पतन ।
7. भयावाह भविष्य ।
8. महँगाई में वृद्धि ।
9. भारतीय कलाओं और संस्कृतियों का पतन ।
10. परंपराओं से दूर भागना ।
11. शिक्षा का बाजारीकरण या व्यवसायीकरण ।
12. कॉरपोरेट स्कूलों का बढ़ना ।
13. संशयात्मक जीवनमूल्य में वृद्धि ।
14. मानव विकास के स्थान पर आर्थिक विकास का महत्त्व ।
15. सामान्य जन की बिगड़ती स्थिति ।

प्रत्येक क्षेत्र में पूँजीवादी संस्कृति का इतना दबदबा हो गया है कि सामान्य व्यक्ति स्वयं को आधुनिक बनने की इस भागम-भाग जिंदगी में भ्रम या संशय का जीवन जी रहा है । कंपनियों द्वारा बाजार में दिनोंदिन नए-नए प्रोडक्ट लाये जा रहे हैं । संशय इस बात का है कि व्यक्ति कौन-सा और किस कंपनी का सामान अपने जीवन के प्रयोग में लाए । प्रत्येक कंपनी अपने आपको एक दूसरे से उत्तम बताने में कभी चूक नहीं करती । सबसे ज्यादा प्रचार-प्रसार शारीरिक सुंदरता को लेकर हो रहा है । सौंदर्य प्रसाधन की वस्तुएं जैसे कोल्डक्रीम, सनस्क्रीम नए- नए ब्रांड के साबुन । यह फैसला करना बहुत कठिन हो जाता है कि कौन-सा ब्रांड पेटेंट है । ‘पहले इस्तेमाल करें, फिर विश्वास करें’ की तर्ज पर लोगों को धमाकेदार विज्ञापनों को दिखाया जा रहा है ।

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और रहने के लिए मकान है। भारत की आजादी के बाद एक बहुत बड़ा हिस्सा कई गंभीर संकटों से जूझ रहा है। उसके सामने खाने की कमी, पानी की कमी, ईंधन की अनुपलब्धता और रोजगारों के छिन जाने का संकट पैदा हो गया है। मगर विकल्प नजर नहीं आ रहा है। यह सारे संकट वैश्वीकरण के इस दौर से पहले और यहां तक कि 'विकास' के आधुनिक रूपों से पहले भी मौजूद थे मगर प्रश्न यह है कि विकास और वैश्वीकरण को तो इसलिए शुरू किया गया था कि इन संकटों को दूर कर देंगे। विडंबना यह है कि उन्होंने इन संकटों को दूर करने की बजाय और घना कर दिया है।

नवउदारवाद के इस दौर में 'हम आगे' बढ़ने की रेस चल रही है। वैश्वीकरण आज थोड़े लोगों के हाथों में केंद्रित एक ऐसी संस्कृति का निर्माण कर रहा है, जिसमें हाशियों के लोगों को उसमें से बाहर ढकेलने की पूरी तैयारी कर ली गई है। यही वैश्वीकरण और खुद को मुख्यधारा के संस्कृति के रूप में स्थापित कर चुका था तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति के संरक्षकों, ठेकेदारों का सदियों से दलितों आदिवासियों जैसे पिछड़े समूहों को, उसकी संस्था को मिटाने की साजिश रची जा रही है।

नवउदारवाद के अंतर्गत आर्थिक-सुधार-नीति का परचम पूरी दुनिया में लहरा रहा है। हम यानी भारत विकसित देश बनने की दौड़ में हैं। हम किसी देश के बराबर अपने को कह रहे हैं पर हम अपनी अवस्था का समग्र दर्शन और प्रदर्शन करने में हिचकिचाते हैं। भारत में प्रतिदिन गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। सामाजिक व्यवस्था में सरकार द्वारा अनेक नीतियों को लागू करने के बावजूद भी बहुत बड़ा भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहा है जो भारत की गंभीर समस्या है। इतनी प्रगति, धन एवं साधन के निर्माण के बाद भी गरीबों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। हम जितना खुश हैं अपनी प्रगति को लेकर, उतना ही असमंजस में हैं गरीबों की संख्या को लेकर।

उक्त बातों को ध्यान में रख कर यह कहा जा सकता है कि नवउदारवादी नीतियाँ असफल ही रही हैं। 1991 ई. में आयी आर्थिक मंदी को सुधार के लिए जो आर्थिक सुधार की नीतियाँ बड़े ताजातरीन तरीके से वित्तमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था में लागू किया गया। नई अर्थनीति लागू करने का आशय यही था कि बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जाए, परंतु इसका परिणाम कुछ और ही निकला। डॉलर के मुकाबले भारतीय मुद्रा लगातार लड़खड़ा रही है। अगर यही हाल रहा तो आने वाले दिनों में भारतीय अर्थव्यवस्था के संकट को और अधिक होने का अंदाजा लगाया जा रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति ने कई बुर्जवा अखबारों को मोटी सुर्खियों में यह छापने पर मजबूर कर दिया कि ‘अलविदा 2020, स्वागत 1991’। भारतीय अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों का दावा था कि 2020 तक भारत ‘आर्थिक महाशक्ति’ बनकर उभरेगा। यह आर्थिक महाशक्ति तो नहीं बन पाया, लेकिन 1991 जैसे संकटग्रस्त हालात में जरूर पहुँच गया। नवउदारवादी नीतियों पर असफलता का एक कारण यह भी है कि भारतीय समाज में आर्थिक असमानता तेजी से बढ़ रही है ‘पैसे को पैसा खींचता है’ वाली कहावत सही साबित हो रही है। अमीर और अमीर होता जा रहा है और गरीबों की स्थिति दिनोंदिन बदतर होती जा रही है।

1.13 नवउदारवाद का कृषक जीवन पर प्रभाव

“लाखों एकड़ खेत पड़े हैं, ठप्प है पैदावार।

फाजिल धरती का कण-कण करता है हाहाकार ॥

कागज पर खेती होती है, कलम हुई है हर-फार।

छोड़ रहे गाँव-गाँव खेत, मजदूरों के परिवार ॥”

नागार्जुन की यह पंक्ति नवउदारवादी दौर के किसानों की स्थिति को बयान करती है। सरकार द्वारा कृषि सुधार योजनाओं का लाभ कुछ ही किसानों को मिल पाया है। किसानों की स्थिति को

सुधारने के लिए बहुत सारी योजनाएँ चल रही हैं। उनमें से कई योजनाएँ मात्र कागजी ही रह गई हैं। पूँजीवाद के एकदम विपरीत 'लागत ज्यादा फायदा कम' की तर्ज पर कब तक खेती हो सकती है। अंततः किसान खेत को परतीछोड़ देना चाहता है, क्योंकि इस महँगाई के दौर में बीज से लेकर सिंचाई तथा कीटनाशक दवाओं के छिड़काव तक की तमाम समस्याओं को झेल रहा होता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का बहुत बड़ा योगदान होता है। इस तरह देखा जाय तो अर्थव्यवस्था की नींव कृषि ही है। किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए तत्कालीन सरकार द्वारा सकारात्मक कदम उठाए गए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्पादन क्षेत्र में वृद्धि हुई है परंतु बढ़ती महँगाई की तुलना में बहुत कम। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की केंद्र बिंदु भारतीय जीवन की धुरी भी है। आर्थिक जीवन का आधार रोजगार का प्रमुख स्रोत तथा विदेशी मुद्रा के अर्जन का माध्यम है, इसी कारण कृषि को देश की आधारशिला कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज भी देश में लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि एवं उससे संबंधित क्षेत्रों से ही आम जनता अपना जीविकोपार्जन कर रही है।

‘नवउदारवाद: विविध आयाम’ नामक पुस्तक में गिरीश मिश्र यह दिखाते हैं कि आने वाले दिनों में इसके प्रभाव से लोग कृषि-दास बन जाएंगे। फ्रेडरिक फान हायेक की पुस्तक ‘द रोड टू सर्फडम’ का हवाला देते हुए मिश्र जी कहते हैं कि- “दुनिया की तत्कालीन परिस्थितियों में जो रास्ता अपनाया जा रहा है वह लोगों को कृषिदास बना देगा अर्थात् वह आमजन को कृषि दासता की ओर ढकेलेगा। याद रहे कि पूँजीवाद कायम होने के पहले सामंती, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था थी जिसमें थोड़े से सामंत बाकी सब कृषिदास थे जो स्वतंत्रता से विहीन थे। वे अपने सामंती मालिकों को छोड़ अन्यत्र बिना उसकी इजाजत के रोजगार के अवसर नहीं ढूँढ़ सकते थे। सतही तौर पर वे ही परंपरागत गुलामों से भिन्न दिखते थे। क्या उत्पन्न करें और कैसे

उत्पन्न करें जैसे सवालों के उत्तर सामंजस्य करते थे।²⁴ कृषि सुधार के क्षेत्र में अलग-अलग देशों में अनेक क्रांतियाँ हुईं। जो इस प्रकार हैं-

1. नवपाषाण युग में क्रांति (लगभग 1000 ई. पूर्व)
2. अरब कृषि क्रांति
3. ब्रिटिश कृषि क्रांति
4. स्कॉटलैंड की क्रांति
5. हरित क्रांति (1943-1970)

औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप में वैश्विक स्तर पर कृषि क्रांति हुई। हरित क्रांति का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक उपकरणों शोध या अनुसन्धान द्वारा कृषकीय उत्पादन में वृद्धि था। हरित क्रांति 1940-60(भारत में 1966-67) के मध्य क्षेत्र हुए शोध, विकास, तकनीकी परिवर्तन एवं अन्य कार्य-शृंखला को संदर्भित करता है। इसके परिणाम स्वरूप पूरे विश्व में कृषि उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। नॉर्मन बोरलॉग के नेतृत्व में कृषि क्रांति हुई इन्हें ही हरित क्रांति का जनक माना जाता है। इस क्रांति ने उच्च उत्पादन क्षमता वाले बीज, आधुनिक उपकरणों का इस्तेमाल, सिंचाई की व्यवस्था, कृत्रिम खादों एवं कीटनाशकों का प्रयोग आदि के प्रयोग से लाखों लोगों की भुखमरी से रक्षा करने का श्रेय दिया जाता है।

इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति और वैज्ञानिकता की बढ़ती प्रगति के परिणामस्वरूप भारतीय कृषकों के कृषि संबंधी कार्यों के तौर तरीके में कई परिवर्तन हुए हैं। नए-नए वैज्ञानिक उपकरणों से खेती की जाने लगी। जिससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई। इन उपकरणों से खेती करने से किसानों को समय कम लगता और काम भी ज्यादा होने लगा। सिंचाई के साधनों जैसे- नहर, ट्यूबवेल सुलभ होने से फसलों का उत्पादन समय पर होने लगा। किसानों के खेतों में बीज

²⁴नवउदारवाद विविध आयाम, गिरीश मिश्र, पृष्ठ संख्या : 21

बोने से लेकर फसलों को काटने और घर तक पहुँचाने संबंधी सभी काम मशीनों द्वारा होने से किसानों को बहुत सुविधा हुई।

उदारवाद का ही प्रभाव है कि जमीन में बीज बोने से पहले मिट्टी का वैज्ञानिक परीक्षण किया जाता है उसके बाद ही मिट्टी की उर्वरा शक्ति क्षमतानुसार बीजों का रोपण किया जाता है। नवउदारवाद के पहले खेतों में काम-काज बहुत मंद गति से होता था। कृषि कार्य के नए उपकरणों जैसे- ट्रैक्टर, अनाज साफ करने की मशीन, सिंचाई की उचित व्यवस्था, नवीन बीजों का प्रयोग, हाइब्रिड बीजों का प्रयोग आदि के बाजार में आने से कृषि कार्य में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। कृषि को रोजगारपरक बनाया गया। नगदी फसलों के उत्पादन में जोर दिया गया। एक वर्ष में एक से अधिक फसलों के उत्पादन पर बल दिया गया।

1.13.1 समय की बचत

वैज्ञानिक उपकरणों के आविष्कार से कृषि कार्य में तीव्रता से सरलता आयी जिन खेतों को जोतने या अन्य कार्यों के लिए बैलों का प्रयोग किया जाता था। इसमें काफी समय लग जाता था। अब बैल का स्थान ट्रैक्टर जैसे नवीन उपकरणों ने ले लिया। वैश्वीकरण के प्रभाव से फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। तरह- तरह के हाइब्रिड बीजों के प्रयोग होने लगा जिसके परिणामस्वरूप औसत से ज्यादा उत्पादन में बढ़ोतरी होने लगी है। फसलों में लगने वाली बीमारी से बचाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटनाशक दवाओं की सुलभता हुई जिस से फसलों को नष्ट होने से आसानी से बचाया जा सका।

उदारीकरण या वैश्वीकरण का दौर आने से पहले भारत में कृषि सुधार संबंधी कई प्रयास हो रहे थे। जिसमें हरित क्रांति का बहुत बड़ा योगदान रहा। भारत में हरित क्रांति की शुरुआत लगभग 1966 ई०के आस-पास हुई। हरित क्रांति का उद्देश्य देश के सिंचित एवं असिंचित कृषि क्षेत्र में अधिक उपज देने वाले संकर तथा बौने बीजों के प्रयोग से फसल उत्पादन में वृद्धि करना

था। इस क्रांति के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता आई है और व्यवसायिक कृषि को बढ़ावा मिला है। हरित क्रांति के फलस्वरूप गेहूँ, गन्ना, मक्का, बाजरा इत्यादि फसलों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर में काफी बढ़ा है। देश में आर्थिक उन्नतिशील बीजों का प्रयोग होने लगा। हरित क्रांति से गेहूँ जैसी फसल में सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है।

फसलों को संरक्षित करने के लिए पौध संरक्षण, बहुफसली योजनाओं, आधुनिक कृषि यंत्र, और मृदा संरक्षण योजनाओं का भी बहुत योगदान रहा। पौध संरक्षणके अंतर्गत खरपतवार एवं कीटों को नष्ट करने के लिए दवा छिड़कने का कार्य किया जाता है। बहुफसली कार्यक्रम का उद्देश्य एक ही भूमि पर एक वर्ष में एक से अधिक फसल उगाकर उत्पादन को बढ़ावा देना है। हरित क्रांति में आधुनिक कृषि उपकरणों जैसे-ट्रैक्टर, थ्रेसर, हार्वेस्टर बुलडोजर तथा डीजल एवं बिजली के पम्पसेटों आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मुद्रा संरक्षण के विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टी का परीक्षण सरकारी प्रयोगशालाओं में किया जाता है। परीक्षण के अनुसार कृषकों को रासायनिक खाद एवं उत्तम बीजों के प्रयोग की सलाह दी जाती है। हरित क्रांति के फलस्वरूप खेती के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन हुआ और खेती व्यावसायिक रूप में होने लगी। देश में गन्ना, कपास, पटसन तथा तिलहनों के उत्पादन में वृद्धि हुई है।

जहां एक तरफ नवउदारवादी कृषि संबंधित नीतियों का कृषक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है या यूँ कहें उदारवादी नीतियों से भारतीय किसानों के समक्ष बहुत सारी सुविधाएं हैं फिर भी इसी के बरक्स नवउदारवाद का नकारात्मक प्रभाव किसानों की बदहाली को बयां करता है जिसके परिणामस्वरूप भारतीय किसान कर्ज जैसी समस्याओं से आज जूझ रहा है। जिसकी वजह से किसान आत्महत्या कैसे खतरनाक कदम को उठा रहा है। नवउदारवादी नीतियों का कृषक जीवन पर पड़े नकारात्मक प्रभाव इस प्रकार हैं-

1. सरकारी या गैर-सरकारी कर्ज की मार ।
2. प्राकृतिक आपदाओं का बढ़ना ।
3. सरकारी योजनाओं का समुचित लाभ न मिल पाना ।
4. शिक्षा का अभाव, जमीन विस्थापन ।
5. गाँव से शहरों की ओर कृषकों का पलायन ।
6. किसान की जमीन को सरकारी योजनाओं की भेंट ।
7. महँगाई का बढ़ना ।
8. फसलों का कम दामों में विक्रय ।
9. बी०टी०बीजों के प्रयोग से उत्पन्न समस्या ।
- 10 . आय की असमानता ।
- 11 . व्यक्तिगत असमानता ।
- 12 . क्षेत्रीय असमानता ।
- 13 . कॉरपोरेट कृषि का उदय ।

1.13.2 व्यक्तिगत असमानता

नवउदारवादीजो नीतियाँ अपनाई गई वह बहुत खर्चीली थी, क्योंकि किसानों को कृषि से संबंधित कई चीजों को एक साथ प्रयोग करना पड़ता था जिसके लिए काफी धनराशि की जरूरत पड़ती थी जो साधारण किसानों के बस की बात नहीं थी । वहीं बड़े किसान जिसके पास बड़ी मात्रा में साधन उपलब्ध थे । इन सब वस्तुओं को खरीदने एवं प्रयोग करने की क्षमता रखते थे । छोटे किसान नई तकनीकी एवं उनके प्रयोग से वंचित रहे । इसी कारण धीरे-धीरे समाज में व्यक्तिगत असमानता फैलती गई । लोग एक दूसरे को हेय की दृष्टि से देखने लगे । इस पूँजीवादी व्यवस्था ने मानवीय संवेदना को पूरी तरह से मृतप्राय बना दिया । क्षेत्रीय समानता वैश्विक क्रांति

का सबसे प्रमुख दुष्प्रभाव देश में प्रादेशिक असमानता को बढ़ावा देना था। नए-नए उपकरण या तकनीक केवल वहीं तक सीमित रही जहां फसलों के लिए निरंतर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी।

1.13.3 मिलावटी वस्तुओं द्वारा किसानों के साथ धोखाधड़ी

पिछले कुछ वर्षों से नए तरीके से कृषि अपनाने वाले किसानों के साथ धोखाधड़ी हो रही है जो किसानों के लिए एक नई समस्या उभरकर सामने आई है। बाजारों में नकली सामानों का फर्जीवाड़ा बढ़ा है, नकली बीज, मिलावटी उर्वरक नकली कीटनाशक बाजार में धड़ल्ले से बिक रहे हैं। इसकी खरीद से किसानों को नुकसान हो रहा है। उदारवाद से पहले खेती करने के साथ ही साथ किसान पशुपालन भी करता था। पशु पालने से किसानों को खाने पीने की अनेक सामग्री के साथ-साथ देशी उर्वरक भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाया करती थी, परंतु वर्तमान समय में बहुत कम किसान खेती के साथ पशुपालन का कार्य करते हैं कृषि कार्यों के नवीन उपकरणों के प्रयोग से उत्पादन में यथोचित वृद्धि तो हुई परन्तु किसान पशु पालन को बहुत कम कर दिया। जिस कारण से उसे बीज उर्वरक और खाने-पीने की सभी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए बाजारों पर निर्भर रहना पड़ता है।

1.13.4 कर्ज की समस्या और किसान-आत्महत्या

नवउदारवाद के दौर में अनेक योजनाओं को लागू करने के बावजूद भी कृषकों की स्थिति बहुत दयनीय है। वह किसान जो शहर वासियों के जीवन का आधार स्तंभ है। वही किसान आज अपनी समस्याओं का निवारण न होने के कारण आत्महत्या करने पर मजबूर है। किसानों की आत्महत्या करने के तो कारण कई हो सकते हैं परंतु सबसे मुख्य और भयावह कारण है सरकार द्वारा कृषि हेतु लिए गए कर्ज को समय पर न चुका पाना और जमींदारों, सरकारी प्यादों

द्वारा किया गया शोषण है। कांग्रेस की सरकार केंद्र में सत्तारूढ़ होने से पहले किसानों की आत्महत्याओं की घटनाएं सामने आयी थी।

किसानों को संकट से उबारने का आधार बनाकर कांग्रेस फिर सत्ता में आई। हुआ कुछ भी नहीं परिस्थितियों पहले से भी अधिक भयावह हो गई। “कृषि की बदहाली इस तरह फैली हुई है कि इसका अंदाजा बड़ी तादाद में किसानों की आत्महत्याओं से लगाया जा सकता है। कटु सत्य यह है कि वर्तमान हालात में तो कृषि क्षेत्र से बहुत ज्यादा उम्मीद कर पाना बेमानी है। इसके लिए कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। अंतर्राष्ट्रीय श्रमसंगठन के सुझाव के अनुसार तो हमें खाद्य सुरक्षा से बहुत आगे की स्थिति हासिल करने की तैयारी में जुटना है क्योंकि स्थितियाँ बहुत ही भयावह हैं।”²⁵

आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में किसान अतिवृष्टि या अनावृष्टि या फिर कर्ज की बेशुमार मार का शिकार होकर आत्महत्या कर रहा है। **पुण्य प्रसून वाजपयी** यह मानते हैं कि किसानों की आत्महत्या की सबसे बड़ी वजह कर्ज है जिससे किसानों में आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ रही है-“इस देश के 52 फीसदी किसान कर्ज से डूबे हुए हैं सबसे ज्यादा खुदखुशी किसानों की कर्ज में डूबे होने की वजह से हो पा रही है जिसको सरकार राहत नहीं दे पा रही है।”²⁶ सरकार की प्रशासनिक खामियों की वजह से किसानों को आत्महत्या करने पर मजबूर किया जा रहा है।

1.13.5 बी०टी०बीजों का दुष्प्रभाव

जहां एक तरफ से कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए भूमि का वैज्ञानिक परीक्षण करवा कर भूमि के अनुकूल फसलों के उत्पादन पर बल दिया गया। इसके लिए किसानों का नए-नए बीजों

²⁵उदारीकरण और आर्थिक विकास, मानचंद खंडेला, पृष्ठ संख्या :171

²⁶https://www.youtube.com/watch?v=hSikiC5x51o&ab_channel=PunyaPrasunBajpai

के प्रयोग के लिए विवश किया गया। वहीं दूसरी तरफ बी०टी०जैसे विदेशी बीजों के प्रयोग से किसानों को बदतर बना दिया। ये बीज महँगे तो हैं ही और किसानों का लगातार घाटा दे रहे हैं। ऐसे बीजों के अधिक पैदावार व कीड़े न लगने के दावे झूठे साबित हो रहे हैं इसके बावजूद सरकारी अफसर, विदेशी जेनेटिक बीजों के इस्तेमाल के लिए किसानों पर दबाव बना रहे हैं। रासायनिक खाद व कीटनाशकों के अंधाधुंध इस्तेमाल से होने वाले दुष्परिणाम किसान व उसके खेत झेल रहा है। बावजूद इसके सरकार चाहती है कि किसान अपनी पारंपरिक खेती को छोड़कर नई तकनीकी अपनाए बी.टी. बीजों के प्रयोग से सबसे बड़ा खतरा यह है कि जिस खेत में बीजों को बोया जाता है, कीटनाशकों का इतना प्रयोग कर दिया जाता है कि इन खेतों की उर्वरा शक्ति धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। जिससे इन खेतों का बंजर होने का खतरा लगातार बना रहता है। बी.टी. के प्रयोग से खेती करने में लागत बढ़ जाती है और इसकी तुलना में लाभ घट जाता है।

1.13.6 किसानों के अस्तित्व की चुनौती

भारतीय कृषि ढांचागत सुविधाओं के अभाव की चुनौतियों का लगातार सामना कर रही है। दिनोंदिन महँगाई बढ़ रही है। जनसंख्या में भी लगातार वृद्धि हो रही है। अन्य वस्तुओं के वृद्धि की अनुपात में किसानों द्वारा उत्पादित अनाज और नगदी फसलों का अनुपात बहुत कम है या कहीं नगण्य है। ऊँचे ओहदे के किसानों की तो नहीं पर एक या दो जोत वाले किसानों जिसे सीमांत किसान कहते हैं की सबसे बड़ी चुनौती बीज रोपने से लेकर उत्पादित वस्तुओं को बाजार में बेचने तक का है। अब बाजार में ऐसे मध्यस्थ खड़े हैं जो उत्पादन के अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया में मूल्य जोड़ते हैं। यह बहुत बड़ी विडंबना है कि किसानों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य बाजार के चंद लोगों द्वारा तय किया जाता है।

वर्तमान में राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि का प्रतिशत जनसंख्या 1951 ई. में करीब- करीब 75% था वह अब 18.50 प्रतिशत से भी नीचे पहुँच गया है जबकि आज भी देश की करीब

60 % जनसंख्या कृषि पर आधारित है। किसानों के अस्तित्व की चुनौती के संबंध में मानचंद खंडेला लिखते हैं कि- “प्रश्न उठता है कि वर्ष 1991 में जहाँ 11.7 करोड़ लोग कृषि से जुड़े हुए थे वह संख्या 2001 में 10.36 करोड़ और वर्तमान में 9 करोड़ से भी कम क्यों हो गई है? स्पष्ट है कि रासायनिक खाद, बिजली, डीजल, कीटनाशक दवाइयों, परिवहन लागत, उन्नत बीज, आदि कृषि इनपुट्स के मूल्य तुलनात्मक रूप में कृषि उत्पादों के विक्रय मूल्य से बहुत अधिक बढ़े हैं। सरकारी खरीद मूल्य तो बहुत ही धीमी गति से बढ़ाये गए हैं तथा क्रेडिट कार्ड, भण्डारण सुविधाओं एवं कृषि ऋणों जैसी सुविधाओं को बढ़ाने का बहुत अधिक प्रयास किया गया है।”²⁷ सरकार और पूँजीपतियों के बीच व्यापारिक समझौता हो रहा है इससे किसानों की स्थिति खराब हो रही है। कॉरपोरेट जगत किसानों की जमीन को सरकार से बहुत कम दामों में खरीदकर आधुनिकीकरण के बहाने किसानों को भूमिहीन बनाया जा रहा है किसानों को बहुत कम मुआवजा देकर शांत करवा दिया जा जाता है। इसके परिणाम स्वरूप किसान अपने ही खेत में मजदूर बन कर रह जाता है या वह अपनी जीविका चलाने के लिए शहरों की ओर पलायन कर रहा है।

1.13.7 कॉरपोरेट-कृषि का उदय

नवउदारवाद के दौर में पूँजीपति वर्ग कृषि को व्यवसाय के रूप में अपना रहा है। कृषि के संबंध में सरकार जिस तरह के नीतियों को चला रही है व कानून बना रही है, उससे आम किसान बेहाल हो रहा है। धीरे-धीरे कृषि पर पूँजीपतियों या बड़ी कंपनियों का आधिपत्य होता जा रहा है। पूँजीपतियों को अत्यधिक उत्पादन और लाभ कमाने से मतलब है। भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हो रही है या कीटनाशकों के प्रयोग से अनाज, फल, सब्जी या कोई भी खाद्य सामग्री सेहत के लिए हानिकारक हो रही है, इससे उनको कोई लेना-देना नहीं है। उसे सिर्फ अपने फायदे से

²⁷उदारीकरण और आर्थिक विकास, मान चंद खंडेला, पृष्ठ संख्या : 175

मतलब है। कॉरपोरेट खेती से किसानों की संस्कृति पर ठेक सारे खतरे हैं। किसानों की वर्षोंपुरानी परंपरा और उनकी मेहनत को दरकिनार करके सरकार खेती को बड़े कॉरपोरेट घरानों को ठेके पर देने जैसा खतरनाक कदम उठा रही है। इस तरह के सरकारी निर्णय से भले ही तात्कालिक फायदा हो, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम कभी अच्छे नहीं हो सकते।

किसान मजबूरीवश कंपनियों के चंगुल में फँस जाता है। “एक ओर जहाँ कर्ज उसे चैन से जीने नहीं देता वहीं वह आत्महत्या करने पर मजबूर है। वह सूखा अत्यधिक वर्षा या अन्य प्राकृतिक आपदाएं उसकी कमर ही तोड़ देती हैं। इस प्रकार के उहापोह की स्थिति में फँसा हमारा किसान देश के दलालों के चलते समर्थन मूल्य तक, अपनी फसल नहीं बेच पाता, फसल को रोककर रखने की स्थिति में भी वह नहीं है, क्योंकि ऐसा करने पर उसकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं। अतः कांट्रेक्ट कॉरपोरेट खेती में उसे भविष्य लग सकता है, लेकिन वह आगे चलकर मीठा जहर ही साबित होगी, क्योंकि बड़ी कंपनियाँ कभी घाटे का सौदा नहीं करेगी।”²⁸

किसानों के कर्ज की समस्या के बाद दूसरी सबसे बड़ी समस्या किसानों की अशिक्षा और सरकारी योजनाओं का सही जानकारी न होने की है। शिक्षित न होने के कारण किसान कई सरकारी योजनाओं से अनजान रह जाता है। अगर कोई यह कहता है कि भारतीय किसानों के पास अनुभव की कमी है तो यह पूरी तरह गलत है, क्योंकि हमारे यहाँ किसानों की कमी नहीं है, कमी है तो यह किसानों को समयानुसार स्वयं को सामंजस्य बैठाने की। सरकार द्वारा इन्हें बहला कर नकदी और व्यापारिक कृषि करने का लालच देकर प्रोत्साहित करती है, इसमें खर्च भी ज्यादा लगता है और समय आने पर फसल भी खराब हो जाती है।

²⁸उदारीकरण और आर्थिक विकास, मान चंद खंडेला, पृष्ठ संख्या : 155

निष्कर्ष

भारत में वर्ष 1991 में 'नई अर्थनीति' लागू होने के बाद उदारवाद की चर्चा परिचर्चा जोर-शोर से होने लगी। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय तथा दो पड़ोसी देशों से युद्ध होने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था जो पहले से ही डांवाडोल थी और भी गड़ड़-मड़ड़ हो गई। अर्थव्यवस्था सुधार हेतु सरकार का नई अर्थनीति बहुत बड़ा प्रयास था। इसके तहत उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण (LPG) जैसे विचारधाराओं का भारत देश के साथ ही वैश्विक स्तर पर उदय हुआ। वाशिंगटन आमराय के सिद्धांतों को प्रगतिशील देशों में आयात और निर्यात के विस्तार स्वरूप नवउदारवाद एक विचारधाराके रूप में सामने आया। नवउदारवाद का आमजन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। खेती किसानों करने वाले लोगों की स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती गई और सीमांत किसान कर्ज में डूबते गए। आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र और पंजाब तथा हरियाणा के तमाम किसान ऋण ग्रस्तता के कारण आत्महत्या करने पर विवश हुए।

अंततः भारतीय अर्थव्यवस्था बिना कृषि के विकास व विस्तारके तीव्रतर आर्थिक विकास, सबके लिए रोजगार, गरीबी उन्मूलन और उद्देश्यों को प्राप्त कर नहीं सकती। इसलिए कृषि को केंद्र में रखकर तथा जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखकर (समस्त किसानों की समस्याओं का ध्यान में) नीति बनाने की आवश्यकता है। सरकार के प्रयास के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण के प्रति सजग और जागरूक होना पड़ेगा। विकास के नाम पर दिनोंदिन 'कटते जंगल और घटते पहाड़' के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ता जा रहा है और पृथ्वी पर पानी के स्रोतों का स्तर लगातार घटता जा रहा है जो केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी वालों के लिए बहुत बड़े खतरे की ओर इशारा करता है। समय के बदलाव के अनुसार कृषि में भी बदलाव ज्यादा लाया जाए और जरूरत के अनुसार खेती किया जाए। तभी समस्याओं का समाधान निकल सकता है। भारतीय कृषि के संबंध में वर्तमान में हो रहे परिवर्तनों

को देखते हुए सही प्रतीत हो रहा है। आज भी भारत के कई इलाकों के किसान वर्षा से प्राप्त जल पर ही खेती के लिए निर्भर हैं। कहीं अधिक पानी से तो कहीं बिन पानी किसान परेशान हो रहा है।

“भारतीय कृषि मानसून का जुआ है

जिसके रास्ते में धुआं ही धुआं है

बारिश कभी ज्यादा कभी कम होती है

ये घटनाएँ अक्सर होती ही रहती है

कभी माँ, कभी बेटी तो कभी धरती स्वयं रोती है” (स्वयं)

भारतीय किसानों को मानसून पर निर्भरता तो अतीत से होता चला आ रहा है। आज भी बुंदेलखंड और महाराष्ट्र के कई इलाकों के किसान मानसून पर ही निर्भर रहते हैं। कई कृषि क्रांतियाँ हुईं, कृषि क्षेत्र में विश्वबैंक जैसी संस्थाओं ने खुले दिल से सहायता की, बनती-बिगड़ती सरकारों ने अपने अनुसार योजनाएं बनाती रहीं, इन तमाम कोशिशों के बावजूद भारतीय किसानों की मूल समस्याएँ ज्यों की ज्यों बनी हुई हैं। नवउदारवादी-नीतियाँ सदैव किसान विरोधी ही साबित हुईं। कृषि विशेषज्ञों और आलोचकों ने इन किसान-विरोधी-नीतियों की हमेशा आलोचना की है। नवउदारवादी-नीतियों का किसानों के जीवन में पड़ने वाले सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को बड़ी सूक्ष्मता से दिखाया गया है। एक नहीं दो-दो हरित क्रांति होने के बावजूद भी किसानों की आत्महत्याएँ थम नहीं रही है। आए दिन किसी न किसी अखबारों में किसान आत्महत्या की खबरे छपती रहती है। वर्तमान समय के किसानों के सामने कई चुनौतियाँ हैं, इनमें से सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह अपने कृषि-संस्कृति को कैसे बचाए ? नवउदारवादी-नीतियों के ही कारण कॉरपोरेट कृषि का उदय हुआ, ठेके की खेती होने से किसान

अपनी ही जमीन पर मालिक से नौकर बनता जा रहा है। इन तमाम समस्याओं को इस अध्याय में बखूबी दिखाया गया है।

द्वितीय अध्याय

हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन का स्वरूप

- 2.1 आरंभिक दौर के हिंदी उपन्यासों का स्वरूप और किसान-जीवन ।
- 2.2 स्वतंत्रतापूर्व हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन । (1920 ई. -1947 ई.)
- 2.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन । (1948 ई.-1969 ई.)
- 2.4 समकालीन हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन । (1970 ई.-1990 ई.)

प्रस्तावना

उपन्यास साहित्य की प्रमुख विधाओं में सबसे लोकप्रिय विधा है। जीवन को व्यापकता और विविधता के साथ चित्रित करने की सहजता जितनी इस विधा में है शायद उतनी किसी अन्य विधा में नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस विधा में किसी लेखक के द्वारा कोई रूढ़ि नहीं बनायी जाती है और उसे अपेक्षित विस्तार भी दिया जा सकता है। इस प्रकार जीवन को समग्रता में सामाजिक सन्दर्भ में चित्रित करना उपन्यास विधा की विशिष्टता है। हिंदी साहित्य में गद्य की विभिन्न विधाओं के साथ ही उपन्यास विधा का भी आरम्भ आधुनिक काल अर्थात् भारतेंदु युग से माना जाता है।

समय-समय पर उपन्यासकारों ने भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का चित्रण उपन्यास में करते रहे हैं। आलोचक मैनेजर पाण्डेय ‘उपन्यास और लोकतंत्र’ शीर्षक पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं-“उपन्यास का जन्म लोकतंत्र के साथ हुआ है। लोकतंत्र उपन्यास का पोषक है और उपन्यास लोकतंत्र का। यही नहीं उपन्यास का स्वभाव भी लोकतान्त्रिक है।”²⁹ साहित्य के स्वरूप का निर्माण समाज के परिघटनाओं से होता है। इसलिए साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। उपन्यास जैसी विधाओं का फलक काफी विस्तृत होता है। इसकी कथावस्तु में एक कथा के समानांतर कई कथाएं चलती रहती हैं। इसलिए उपन्यास को महाकाव्य की संज्ञा दी जाती है।

‘उपन्यास’ नामक निबन्ध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि- “आजकल के उपन्यास लिखने में बहुत लोगों की धड़क खुल गई है। इनमें यदि थोड़े हैं जिन्हें अपनी कल्पना और अनुभव का सहारा है तो बहुत से ऐसे भी हैं जिनका अन्य भाषाओं की विख्यात पुस्तकों ही

²⁹उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या : 4

पर गुजारा है। उपन्यास साहित्य का एक प्रधान अंग है। मानव प्रकृति पर इसका प्रभाव बहुत पड़ता है। अतः अच्छे उपन्यासों से भाषा की बहुत कुछ पूर्ति और समाज का बहुत कुछ कल्याण हो सकता है। मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का यत्न करता है, जिनसे मुनष्य का जीवन बनता है और इतिहास आदि की पहुँच के बाहर है। बहुत लोग उपन्यास का आधार शुद्ध कल्पना बतलाते हैं। पर उत्कृष्ट उपन्यासों का आधार अनुमान शक्ति है, न कि केवल कल्पना।”³⁰

उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक समाज की तात्कालिक घटनाओं का वर्णन विस्तृत रूप में करता है। **अर्नेस्ट ए० बेकर** ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ‘गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बनाया है। यों तो विश्व साहित्य का आरम्भ ही संभवतः कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज-कल साहित्य का मेरुदंड रही है, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना उपयुक्त होगा।’ आधुनिक उपन्यास जीवन की विश्रृंखलताओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है। जीवन का जितना व्यापक और सर्वांगीण चित्र उपन्यास नामक विधा में मिलता है उतना साहित्य की अन्य किसी भी विधा में उपलब्ध नहीं होता। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद् एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिलती है। प्राचीन युग में जो स्थान महाकाव्य का था आज वही स्थान उपन्यास का है।

भारत में उपन्यास लेखन की कला यूरोपीय लेखकों की देन है। “भारत में उपन्यास का जन्म अभिशप्त स्थितियों में हुआ। उस अभिशप्त की छाया भारतीय उपन्यास पर लम्बे समय तक पड़ती रही। उससे मुक्ति के लिए उपन्यास विधा को कठिन संघर्ष करना पड़ा। भारत में उपन्यास

³⁰आचार्य रामचंद्र के श्रेष्ठ निबन्ध, सं. सत्य प्रकाश मिश्र/विनोद तिवारी, पृष्ठ संख्या : 247

का जन्म उन्नीसवीं सदी के मध्य में तब हुआ जब देश में अंग्रेजी राज था। उपनिवेशवाद के कारण भारतीय समाज के यथार्थ और भारतीय जनता की चेतना में ऐसे अंतर्विरोध थे, जो उपन्यास के स्वाभाविक विकास में बाधक थे। यूरोप में उपन्यास का उदय जिन स्थितियों में हुआ था उसके ठीक विपरीत परिस्थितियाँ यहाँ मौजूद थीं।³¹ भारतीय उपन्यासों के संकलनकर्ता (विशेष रूप से हिंदी भाषा के) **गोपाल राय** मानते हैं कि यूरोप में मुद्रण यंत्र के स्थापना के बाद चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में मध्यवर्गीय पाठक वर्ग का उदय हुआ जिससे वहाँ उपन्यास के उदय के लिए बुनियादी संरचना के निर्माण में योग दिया। जिसके फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व से ही यूरोप में उपन्यास अस्तित्व में आया।

फ्रांस की **मदाम स्तेल** ने लिखा है कि “उन्हीं समाजों में उपन्यास का विकास होता है जहाँ स्त्रियों का स्थान ऊँचा हो और व्यक्तिगत जिंदगी में लोगों की गहरी दिलचस्पी हो। ऐसे ही समाज में उपन्यास वैयक्तिक अनुभवों का माध्यम और वैयक्तिक स्वतंत्रता का वाहक बनता है।”³² भारत में जिस समय इस विधा का उदय हुआ उस समय भारतीय समाज में स्त्री रूढ़ियों से जकड़ी, झूठे-आदर्शों से घिरी और यातनाओं में जी रही थी। इसलिए भारतीय उपन्यासों में स्त्री के विविध रूप दिखाई दे रहे थे। वह कहीं पतिता है तो कहीं पतिव्रता। इस तरह अनेक उपन्यासकारों ने भारतीय परिवार में स्त्री के उत्पीड़न की करुण गाथा कही है।

2.1 आरंभिक दौर के हिंदी उपन्यासों का स्वरूप

हिंदी भाषा में उपन्यास लेखन का आरम्भ 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण से माना जाता है। हिंदी के पहले उपन्यास को लेकर इतिहासकारों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान प्रकाशन वर्ष

³¹ उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या : 78

³² उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या : 58

तथा उसमें समाहित औपन्यासिक-तत्त्वों के आधार पर हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं, तो कुछ लम्बी कहानियों को ही उपन्यास का दर्जा देते हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी' (पं० गौरीदत्त-1870), 'भाग्यवती' (श्रद्धाराम फुल्लौरी-1877) और 'परीक्षागुरु' (लाला श्री निवासदास-1882) का नाम प्रथम श्रेणी में लिया जाता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'परीक्षागुरु' को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास माना है परन्तु इसके लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व बंगला और मराठी भाषाओं में उपन्यास का जन्म हो चुका था। उपन्यास के इस अनिश्चितता के संबंध में गोपाल राय लिखते हैं- 'हिंदी उपन्यास का आरम्भ कहाँ से माना जाय अथवा हिंदी का प्रथम उपन्यास कौन है ? यह प्रश्न आज भी विवादस्पद बना हुआ है। इसका मुख्य कारण उपन्यास पद के अर्थ की तरलता या अनिश्चितता है। हिंदी में नॉवेल का अर्थ में उपन्यास पद का प्रयोग 1875 ई० में हुआ।'³³

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी के पहले उपन्यास के सन्दर्भ में दो उपन्यासों - 'भाग्यवती' और 'परीक्षागुरु' की चर्चा की है। हिंदी का पहला उपन्यास कौन-सा हो इस बात को लेकर शुल्क जी दो अलग-अलग बातें कहते हैं। एक स्थान पर वे 'भाग्यवती' को प्रकाशन वर्ष के आधार पर प्रथम सामाजिक उपन्यास की संज्ञा देते हैं तो दूसरी तरफ 'परीक्षागुरु' को। शिव नारायण श्रीवास्तव ने 'रानी केतकी की कहानी', श्री कृष्ण लाल ने 'चंद्रकांता', डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' और डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त ने 'भाग्यवती' को हिंदी का प्रथम उपन्यास माना है। कुल मिलाकर अधिकतर विद्वानों ने 'परीक्षागुरु' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है। मौलिकता के आधार पर आरंभिक उपन्यासों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है-

³³हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 23

1. सामाजिक उपन्यास
2. ऐतिहासिक उपन्यास
3. घटना-प्रधान उपन्यास या रोमांचक उपन्यास

सामाजिक उपन्यास के अंतर्गत समाज में व्याप्त बाह्यआडम्बर और सामाजिक कुरीतियों तथा दाम्पत्य और पारिवारिक जीवन से संबंधित घटनाओं को रोचक और कलात्मक तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। सामाजिक उपन्यासों में मनोविज्ञान की सच्चाई दिखाई देती है। सामाजिक उपन्यासों के अंतर्गत निम्नलिखित उपन्यासकारों की गणना की जाती है- बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा, गंगाप्रसाद गुप्त, ब्रजनन्दन सहाय, राधाचरण गोस्वामी, बालमुकुन्द शर्मा, बलदेव प्रसाद मिश्र, अयोध्या सिंह उपाध्याय और मनन द्विवेदी आदि सामाजिक उपन्यासकार हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास में लेखक किसी पौराणिक कथा या किसी ऐतिहासिक व्यक्ति को अपने उपन्यास का मुख्य पात्र बनाकर उस समय की घटित राजनीतिक घटनाओं का कथावस्तु बनाता है। इसके साथ ही उस समय की संस्कृति और सभ्यता का भी चित्रण करता है। इस वर्ग के उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण, युगीन सामाजिक परिस्थितियाँ, तत्कालीन रीति-नीति, आचार-विचार, वेश-भूषा आदि का चित्रण किया जाता है। उपन्यासकार राजाओं की विलासिता, स्वार्थ-लिप्सा, विश्वासघात, निर्दयता तथा राजाओं की चतुर्दिक प्रसिद्धि का वर्णन अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार करता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना भी विद्यमान थी। डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा में सर्वप्रथम किशोरीलाल गोस्वामी का 'हृदय तरंगनी' या 'आदर्श रमणी' का उल्लेख मिलता है जो 'हिंदुस्तान' पत्रिका में धारावाहिक के रूप में 1890 ई० में प्रकाशित हुआ। जहाँ तक सर्वश्रेष्ठता

की बात है तो वृंदावनलाल वर्मा को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है। इनके अतिरिक्त मथुरा प्रसाद शर्मा, गंगा प्रसाद गुप्त, जैनेंद्र किशोर, वृजनंदन सहाय, मिश्रबन्धु, जयशंकर प्रसाद आदि प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं।

रोमांचक या घटना-प्रधान उपन्यास के अंतर्गत जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी आदि से संबंधित उन सभी उपन्यासों को स्थान दिया जाता है जिनका लक्ष्य आश्चर्य पूर्ण घटनाओं एवं क्रिया-कलापों के वर्णन के द्वारा पाठक को विस्मित कर देना होता है। तिलस्मी उपन्यासों में जादू, इंद्रजाल, अलौकिक कारनामे, गड़े हुए धन को खोजने तथा उसे प्राप्त करने आदि से संबंधित वृत्तांतों की भरमार होती है। इसके अतिरिक्त इसमें ऐयारी या कपट-कौशल, छल-छद्म आदि का वर्णन होता है। इन उपन्यासों में घटनाओं को इतना रोचक बनाया जाता है कि पाठक या श्रोतागण को एक जिज्ञासा सी बनी रहती है। इस श्रेणी में देवकीनंदन खत्री का उपन्यास ‘चंद्रकांता’ का मुख्य स्थान है। ‘चंद्रकांता’ हिंदी साहित्य का ऐसा उपन्यास था जिसे पढ़ने के लिए अहिन्दी भाषियों ने हिंदी सीखी थी। इस वर्ग के उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री (‘चंद्रकांता’, ‘भूतनाथ’, ‘चंद्रकांता संतति’), हरे कृष्ण जौहर (‘कुसुम लता’), गोपाल राम गहमरी (‘अद्भुत लास’, गुप्तचर, ‘बेगुनाह का खून’) आदि उपन्यासकार हैं।

सामाजिक, ऐतिहासिक, घटना-प्रधान तथा अनूदित उपन्यासों के पश्चात् हिंदी साहित्य लेखन में अभूतपूर्व बदलाव दिखाई देता है। उपर्युक्त उपन्यासों में लेखक पात्रों का चयन किसी ऐतिहासिक महापुरुष या राजाओं, महाराजाओं को करता था और अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार कथानक को स्वरूप प्रदान करता था। मुंशी प्रेमचंद के आगमन के बाद हिंदी उपन्यास के इतिहास में एक नए युग की शुरुआत हुई और किसान तथा मजदूर साहित्य के केंद्र में आया। हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन अभिव्यक्ति को निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा समझा जा सकता है-

1. स्वतंत्रतापूर्व हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन ।
2. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन ।
3. समकालीन हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन ।

2.2 स्वतंत्रता पूर्व हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन (1920 ई.-1947 ई.)

प्रारंभिक दौर में लिखे गए उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार रहा है । भले ही उपन्यास कला की दृष्टि से वे उपन्यास उतने उल्लेखनीय न हों, किन्तु उस समय के उपन्यासकारों ने उपन्यास को एक नई दिशा देने का प्रयास जरूर किया है । उपन्यास से विषय, शिल्प एवं भाषा का जो विकास इस काल में हुआ उसी का संशोधित रूप आगे के उपन्यासों में दिखाई देता है । खैर, जो भी हो, इन उपन्यासों ने प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासों के लिए पृष्ठभूमि अवश्य प्रस्तुत की है । प्रेमचन्द, युगीन हिंदी उपन्यासों में प्रेमचन्द अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं । इनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है और जन-जीवन का प्रामाणिक एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखने को मिला । प्रेमचन्द के उपन्यासों के केन्द्रीय पात्र किसी देश का राजकुमार या पौराणिक कथाओं का प्रसिद्ध नायक न होकर श्रमिक, गरीब, किसान और मजदूर वर्ग ही थे । प्रेमचन्द के उपन्यास कृषक-समस्या, मानवतावाद, राष्ट्रीय-आन्दोलन, भारतीय ग्रामीण-संस्कृति, शोषण, विधवा-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज-प्रथा आदि विभिन्न विषयों से संबंधित हैं ।

हिंदी उपन्यास लेखन में प्रेमचन्द के आने से बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है । इनके साहित्य-लेखन में ग्रामीण-संस्कृति की सौधी महक विद्यमान है । स्वतंत्रता पूर्व हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्गीय ग्रामीण-जीवन, गरीब तथा मजदूर-किसानों को केंद्र बनाकर साहित्य लेखन की शुरुआत प्रेमचन्द के आगमन से ही होती है । कृषक-जीवन, कृषक-समस्या, मानवतावाद और

सामंती-प्रथा का विस्तृत चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचन्द के किसान-जीवन पर आधारित उपन्यासों के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं –“हिंदी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले लिखा न था। एक तो किसानों पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा काम प्रयोग था। प्रेमचन्द ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी...प्रेमचन्द ने अपना कथा विषय चुना-सदियों से पिसते हुए दासों की चेतना को जो अब भी जाग रही थी और उनके हृदय में इंसान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी।”³⁴ हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं जैसे- उड़िया, असमिया, मराठी, कन्नड़ और गुजराती में किसान संस्कृति को केन्द्रीय समस्या बनाकर क्या साहित्य लिखा जा रहा था ? इस बात पर भी दृष्ट्यावलोकन करना अतिआवश्यक है।

हिंदी कथा साहित्य से इतर अन्य भाषाओं में कृषकों की समस्याओं को आधार बनाकर प्रेमचन्द से बहुत पहले उड़िया भाषा में **फकीर मोहन सेनापति** का उपन्यास ‘छमाण आठ गुंठ’ अर्थात् ‘छः बीघा जमीन’ प्रकाशित होता है जिसमें शिशु विहीन जुलाहे-किसान-दम्पती की कथा कही गई है। जिसमें गाँव के साहूकार द्वारा किसान दम्पती को पीड़ित और प्रताड़ित किया जाने का चित्रण किया गया है। परमानन्द श्रीवास्तव ‘उपन्यास का पुनर्जन्म’ पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- “फकीर मोहन सेनापति के उपन्यास ‘छमाण आठ गुंठ’ प्रेमचन्द से बहुत पहले एक शिशु विहीन जुलाहे दम्पती की कथा है। जिसे एक गाँव के साहूकार ने पीड़ित और आतंकित किया था। असमिया में गोपीनाथ महान्ति का उपन्यास ‘कृषक के वंशज’ भारतीय यथार्थवादी परंपरा का उपन्यास है। बंगला में तारा शंकर बंधोपाध्याय, विभूतिभूषण

³⁴प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या : 44

बंधोपाध्याय, मानिक बंधोपाध्याय के उपन्यासों में तनाव भरे भारतीय सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है।”³⁵

भारतीय उपन्यासों में यथार्थवाद और उपन्यास का स्वतंत्र रूप तब विकसित हुआ, जब उपन्यासों के केंद्र में किसान आया, जो भारत का अभिन्न अंग है। किसान-जीवन से जुड़कर ही भारतीय उपन्यास की सच्ची भारतीयता विकसित हुई और उपन्यास राष्ट्रीय-जीवन की महागाथा का प्रतिनिधि साहित्य रूप बन सका। किसान भारतीय समाज का मेरुदंड है फिर भी किसान सदियों से शोषण का शिकार होता रहा है। किसानों से लगान इतना अधिक लिया जाता था कि बालमुकुन्द गुप्त को लिखना पड़ा-

“अहा ! विचारे दुःख के मारे निसिदिन पच पच मरे किसान।

जब अनाज उत्पन्न होय तब सब उठवा ले जाय लगान ॥”³⁶

किसान केन्द्रित उपन्यास के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि- “भारतीय उपन्यास को किसान-जीवन की महागाथा बनाने की परंपरा का आरम्भ उड़िया के कथाकार फकीर मोहन सेनापति (1843-1918)के उपन्यास ‘छमाण आठ गुंठ’(1897) से होता है। उड़िया के समालोचक मानसिंह ने यह सवाल ठीक ही पूछा है कि फकीर मोहन से पहले किस भारतीय लेखक ने गाँव के फटेहाल और मूर्ख लोगों को अपनी रचनाओं का नायक बनाया है ? उनकी रचनाओं का सबसे जीवंत पात्र नाई, जुलाहा, खेतिहर मजदूर और अछूत हैं। उन्होंने साहित्य की दुनिया में आम आदमी और औरत को महत्त्व प्रदान किया। इस उपन्यास के साथ उड़िया में उपन्यास का उदय हुआ और भारतीय उपन्यास में किसान-जीवन के यथार्थवादी उपन्यास की

³⁵ उपन्यास का पुनर्जन्म, परमानन्द श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या : 7

³⁶ <http://sanjihivirasat.blogspot.com/2010/12/1965-1-2-1880-1886-3-18-1907.html>

परंपरा का सूत्रपात भी हुआ। ‘छमाण आठ गुंठ’ में गरीबों और शोषितों से गहरी सहानुभूति है और जमींदार तथा नये धनिकों से तीखी घृणा है।”³⁷

उड़िया उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति के बाद भारतीय उपन्यास में किसान-जीवन के यथार्थवादी चित्रण की परंपरा को प्रेमचन्द ने ही विकसित किया। प्रेमचन्द ने भारतीय उपन्यास और उसकी यथार्थवादी कला को अधिक उन्नत बनाया। जिस समय प्रेमचन्द साहित्य लेखन कर रहे थे उस समय भारतीय समाज गुलामी, सामंतवाद, पूँजीवाद और विदेशी साम्राज्यवाद से ग्रस्त था। किसानों की दयनीय स्थिति, उनकी समस्याओं तथा उन पर होने वाले शोषण की अभिव्यक्ति जिस प्रकार मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य में मिलती है, अन्य में नहीं। प्रेमचन्द ने इन्होंने ‘प्रेमाश्रम’ ‘रंगभूमि’ ‘कायाकल्प’ और ‘गोदान’ जैसे उपन्यासों में सामन्ती और महाजनी व्यवस्था का शिकार किसानों की दयनीय स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है।

मध्यकालीन सामाज में लगान वसूली, नजराना, हारी बेगारी के शोषणकारी मुद्दे प्रमुख रहे। हालांकि प्रेमचन्द से पहले किसानों को केंद्र बनाकर लिखा गया पर कथा साहित्य तो मिलता है पर मध्यकालीन कवियों के साहित्य में किसान-जीवन पर पर्याप्त मात्रा में विचार किया गया है जैसे- कबीरदास, तुलसीदास और सूरदास जैसे भक्तिकालीन कवियों में अपनी रचनाओं में किसानों की स्थिति को बयां किया है। कबीर ने एक आध्यात्मिक पद में लगान वसूलने वालों को बहुत ही निर्दयी बताते हुए कहा है-

“अब न बसूं इहि गाऊं गोसाईं,

तेरे नेवगी खैरे सयाने हो राम’।”³⁸

³⁷उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या : 88

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कवितावली में तत्कालीन समाज व्यवस्था के पस्त हालत का चित्र खींचते हुए लिखा है कि-

“खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि /

बनिक को न बनज, न चाकर को चाकरी ।

जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,

कहै एक एकन सों कहाँ जाई, का करी

किसबी किसान कुल, बनिक भिखारी भाट

चाकर चपट नट चोर चार चेटकी ।”³⁹

साहित्य समाज को देखने का एक अच्छा जरिया है । जिस समय प्रेमचन्द ‘प्रेमाश्रम’ और ‘गोदान’ उपन्यास लिख रहे थे उस समय भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था । किसान सामन्ती और जमींदारी तथा महाजनी जैसी कुव्यवस्थाओं से जूझ रहा था । समाज में घटित होने वाली घटनाओं का प्रभाव लेखक पर पड़ना स्वाभाविक था । आमतौर पर प्रेमचन्द को किसानों का कथाकार और ‘गोदान’ को भारतीय किसानों के जीवन का महाकाव्य कहा जाता है । हिंदी साहित्य में औपन्यासिक क्षेत्र में पहली बार ऐसा हुआ था जब प्रेमचन्द ने किसी किसान को नायक बनाकर उपन्यास लिखा तथा किसानों की दयनीय स्थिति को हू-ब-हू अभिव्यक्त किया है ।

खैर, जो भी हो सही मायने में किसानों के प्रति हो रहे अन्याय, शोषण, सूदखोरों द्वारा बेरहमी में इन पर किया गया अत्याचार और किसान किस तरह अपने ही खेतों में मजदूर बन

³⁸ किसान आन्दोलन की साहित्यिक जमीन, रामाज्ञा शशिधर, पृष्ठ संख्या : 50

³⁹ किसान आन्दोलन की साहित्यिक जमीन, रामाज्ञा शशिधर, पृष्ठ संख्या : 51

जाता है इनका चित्रण प्रेमचन्द से ही प्रारम्भ होता है। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि- “प्रेमचन्द के कथा साहित्य में मध्यवर्ग भी है, लेकिन केन्द्रीय स्थिति किसान- जनता की ही है। यहाँ किसानों का जीवन संघर्ष ही केन्द्रीय विषय है। जीवन में किसान जिस शोषण के शिकार थे, उस शोषण के पेचीदे तंत्र, उसकी जटिल प्रक्रिया और उसकी भयानक परिणति का चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। इसके साथ ही उन्होंने सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध किसान जनता के मुक्ति संघर्ष का भी चित्रण किया है। प्रेमचन्द अपनी रचनाओं में अपने समय के किसान-जीवन के जितने महान कथाकार हैं, वे अपने समय के भारतीय समाज के ऐतिहासिक संघर्ष और विकास की दिशा, प्रक्रिया और गति को पहचानने वाले उतने ही महत्त्वपूर्ण इतिहासकार भी हैं।”⁴⁰

प्रेमचन्द किसान, मजदूर मध्यवर्ग, सामन्त वर्ग, पूँजीपति वर्ग और साम्राज्यवादी शासकों का चित्रण एक दूसरे से अलग एकाकी रूप में नहीं करते, वे एक व्यापक सामाजिक – राजनीतिक प्रक्रिया और उसकी विचारधारात्मक परिणतियों के भीतर अंतर्वर्गीय संघर्ष और संबंधों का चित्रण करते हैं। किसान-जीवन संबंधी उपन्यासों का विवरण इस प्रकार है-

1. स्वतंत्रता पूर्व हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन (1920 ई.-1947ई.)

क्र. सं.	लेखक	उपन्यास
1	प्रेमचन्द	प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1924), गोदान (1936)
2	जगदीश झा विमल	खरा सोना (1921)
3	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	अलका (1933)
4	रामचंद तिवारी	कमला (1943), सरिता सागर और अकाल (1946)

⁴⁰ उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या : 121

5	रांगेय राघव	विषाद मठ (1943)

2. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन (1948ई.-1969ई.)

6	नागार्जुन	बलचनमा (1954), बाबा बटेसर नाथ (1954)
7	फणीश्वरनाथ रेणु	मैला आँचल (1954)
8	भैरव प्रसाद गुप्त	गंगा मैया (1952), सती मैया का चौरा (1959)
9	शिवप्रसाद सिंह	अलग-अलग वैतरणी (1967)
10	रामदरश मिश्र	जल टूटता हुआ (1969)

3. समकालीन हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन

11	जगदीश चन्द्र	धरती धन न अपना (1972), मुट्ठी भर कांकर (1976)
12	विवेकी राय	लोकक़ण (1977), सोनामाटी (1983)

प्रेमचन्द पहले 'नवाबराय' के नाम से उर्दू भाषा में लिखते थे। हिंदी भाषा में इन्होंने सन 1918 में 'सेवासदन' उपन्यास से आरम्भ किया। इसके बाद 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन', 'कर्मभूमि', और 'गोदान' आदि उपन्यासों की रचना की है। 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों में प्रेमचन्द ने पराधीनता, साहूकारों, सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता की विवशता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, मध्यवर्गीय किसान की कुंठाएं और साहूकारों द्वारा किसानों के अमानवीय व्यवहार

का चित्रण किया है। किसान-जीवन के सन्दर्भ में 'प्रेमाश्रम' को 'गोदान' की पूर्व पीठिका कही जा सकती है।

एक तरफ प्रेमचन्द का साहित्य लेखन चल रहा था और दूसरी तरफ अंग्रेजों का भारतीय जनता पर शोषण। ब्रिटिश शासन की शोषण नीति से पैदा हुई किसानों की दीनता, उसकी दयनीय जीवन स्थिति तथा अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' आदि उपन्यासों में करते हैं। आर्थिक शोषण का एक मुख्य और सर्व प्रमुख रूप यह था कि भूमिकर अधिक निर्धारित था और जमींदार तथा सरकारी अमलों से उसे निर्दयता पूर्वक वसूला जाता था।

इसके फलस्वरूप किसान कर्ज में डूबे रहते थे और उसकी स्थायी संपत्ति धीरे-धीरे महाजनों और बड़े किसानों के कब्जे में होती जाती थी। जिससे वे किसान से कृषि-मजदूर तथा मिल मजदूर में बदलते जाते थे। जमींदारों और महाजनों को किसानों को लूटने की सारी सुविधाएं सरकार से प्राप्त थीं। जमींदार केवल अपने कमीशन से संतोष नहीं करते थे वरन बेगारी, चंदा, सगुन, डांड आदि रूप में अतिरिक्त भूमिकर वसूलते थे और सरकार उन पर कोई अंकुश नहीं लगाती थी। इस प्रकार जमींदार और महाजन तथा उनके माध्यम से ब्रिटिश सरकार अवध के किसानों तथा किसान मजदूरों का शोषण करती थी।

'प्रेमाश्रम' किसान-जीवन पर लिखा हिंदी का संभवतः पहला उपन्यास था जो अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया था। जिसमें उन्होंने नागरिक जीवन और ग्रामीण जीवन का सम्पर्क स्थापित किया है और राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। परिवारों की कथा का मोह तो वे इस उपन्यास में भी नहीं छोड़ सके, क्योंकि प्रभाशंकर रायकमलानन्द गायत्री और डिप्टी ज्वालासिंह के परिवारों की कथा से ही उपन्यास का ताना-बाना बनाया गया है। 'प्रेमाश्रम'

उपन्यास में कई पीढ़ियों से चली आ रही जमींदारी का चित्रण किया गया है। जहां एक तरफ ज्ञानशंकर क्रूर तथा किसानों के ऊपर भारी से भारी अपराध और अन्याय करने वाला है। वहीं दूसरी तरफ मायाशंकर जमींदार परिवार में जन्म लेने के बाद भी किसानों से तादात्म्य करने वाला मानवोचित-गुण संपन्न एक आदर्श जमींदार है। 'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण किसानों के जीवन-संघर्षों को कथानक बनाया है।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास में प्रेमचन्द ने भारतीय किसानों के गरीबी को मुख्य विषय बनाया है। अपनी समस्या प्रधान रचनाओं में प्रेमचन्द ने साफ कह दिया है कि किसानों के जन्मगत मामला अर्थाभाव है। जिसका उल्लेख वर्तमान समय के कृषि विशेषज्ञों और कृषि प्रेमियों तथा आलोचकों ने भी किया है। प्रेमचन्द ने 'ऋण' यानी कर्ज को किसान वर्ग का सबसे बड़ा अभिशाप बताया है। इस उपन्यास के सन्दर्भ में डॉ० इन्द्रनाथ मदान का मानना है कि यह भारतीय साहित्य में पहला उपन्यास है जो ग्राम्य-जीवन और उसकी आधारभूत समस्याओं का वर्णन करता है। प्रेमचन्द भारतीय साहित्य में नवीन ढंग के कथा-साहित्य की सृष्टि करने वाले अग्रदूत थे।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास के संबंध में गोपाल राय लिखते हैं-“प्रेमचन्द ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसानों और जमींदारों के संबंधों का चित्रण किया है। इस काल की सबसे तीखी सच्चाई यह है कि भारत एक विदेशी पूँजीवादी ताकत का उपनिवेश था जिसका एक मात्र लक्ष्य देश का आर्थिक शोषण करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार को किसी भी हद तक मानवीय मूल्यों और अधिकारों की उपेक्षा तथा दमन और अत्याचार के किसी भी माध्यम का उपयोग करने में कोई हिचक न थी। इस आर्थिक शोषण ने देश के प्राकृतिक साधनों

और यहाँ की जनता के श्रम का शोषण प्रमुख था जिसके लिए ब्रिटिश शासन ने प्रशासन तंत्र, जमींदार वर्ग और साहूकारों- महाजनों समुदाय को अपना सहायक बना रखा था।”⁴¹

प्रेमचन्द गाँधी युग के लेखक हैं तो इन पर गांधीवाद का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। ‘प्रेमाश्रम’ उपन्यास में जहाँ एक तरफ सामंती संस्कृति और पूँजीवादी सत्ता का वर्चस्व दिखाया गया है, वहीं दूसरी तरफ किसानों से जबरन करवाया गया बेगार भी चित्रित किया गया है। किसान आन्दोलन का प्रभाव भी ‘प्रेमाश्रम’ में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यद्यपि किसान जमींदारों के खिलाफ खुलकर विद्रोह तो नहीं करते तथापि सामंती व्यवस्था के सताए किसान कहीं-कहीं विद्रोहात्मक रवैया अपनाते-अपनाते रुक जाते हैं।

प्रेमचन्द के अन्य उपन्यास ‘कायाकल्प’ और ‘कर्मभूमि’ के छोटे किसान और किसान मजदूर जमींदारों द्वारा की गई लगान वृद्धि, बेगारी तथा फसल न होने पर भी लगान वसूली का विरोध करते हैं और एक जुट होकर लड़ते हैं। जमींदारों से किसानों के इस संघर्ष में सरकार जमींदारों का साथ देती है। इन किसानों और मजदूरों का नेता गाँधीवादी है, पर किसान बीच-बीच में हिंसा पर उतारू हो जाते हैं।

किसानों पर हो रहे शोषण को प्रेमचन्द सेवा समितियाँ बनाकर समाप्त करना चाहते थे। ‘रंगभूमि’, ‘कायाकल्प’ और ‘कर्मभूमि’ में जो समितियाँ बनाई गई हैं इनका उद्देश्य तख्ता पलटना नहीं वरन सामाजिक सुधार करना है और जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों से अनुनय विनय द्वारा किसानों के तकलीफों को दूर करने का प्रयास करना है।

⁴¹हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 132

किसान-जीवन से सम्बंधित प्रेमचन्द का सबसे व्यापक और विस्तृत उपन्यास 'गोदान' है जो किसान-जीवन की महागाथा के नाम से जाना जाता है। गोदान महाकाव्य का नायक 'होरी' है जो खेतों में जीतोड़ मेहनत करने के बाद भी अपने परिवार वालों का भरण-पोषण बड़ी मुश्किल से कर पाता है। भारतीय समाज में व्याप्त सामंती और सूदखोरी जैसी कुव्यवस्थाओं का शिकार 'होरी' जैसे कई किसान होते हैं।

नजराना देने के बाद भी जब होरी रायसाहब के यहाँ बेगार करने जाता है तो मुन्नी कड़े शब्दों में विरोध करती है। फिर भी सामाजिक परंपरा में बंधा होरी उसकी एक नहीं मानता। अंततः होरी अपने खेतों में काम करते-करते प्राण त्याग देता है। ऐसी स्थिति केवल एक किसान होरी की ही नहीं है बल्कि होरी जैसे कई किसान इस समाज में कर्ज भरा जीवन जी रहे हैं। 'गोदान' उपन्यास किसान-जीवन के अंदरूनी तह को परत-दर-परत खोलता है। सामंती विचारधारा के राय साहब और पूँजीपति खन्ना से मित्रवत व्यवहार को वर्णन करते हुए यह दिखाना चाहते हैं कि किस प्रकार सामन्त और पूँजीपति मिलकर किसानों का भरपूर शोषण करते हैं।

प्रेमचन्द की रचना 'गोदान' को किसान-जीवन का 'ट्रेजिक महाकाव्य' कहा जा सकता है। वैसे तो इनके कई उपन्यास किसान-जीवन की गहरी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं पर वास्तव में 'गोदान' में ट्रेजिक और महाकाव्य की नयी एकता से निर्मित उपन्यास दिखाई देता है। 'गोदान' उपन्यास कृषक जीवन की दयनीय स्थिति की दास्तान है। मानव स्वभाव जिज्ञासाओं से भरा होता है। मनुष्य की एक इच्छा पूरी होते-होते दूसरी चाहत स्वतः दिलोदिमाग में पैदा हो जाती है। जिससे वह कभी पूरा नहीं कर पाता है। उसके मन में सागर की लहरों की तरह हिलोरे लेती रहती है। जिज्ञासा केवल जिज्ञासा ही बनकर रह जाती है और मनुष्य की जीवन लीला समाप्त हो जाती है।

है। 'गोदान' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र होरी के माध्यम से प्रेमचन्द ने कर्ज की समस्या को चित्रित किया है। निम्नवर्गीय भारतीय किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है और उसी कर्ज रूपी सागर में डूबकर मर जाता है। फिर भी साहूकारों, सूदखोरों और महाजनों का कर्ज अदा नहीं कर पाता और पैतृक संपत्ति के रूप में अपना कर्ज अपनी संतानों को दे जाता है। प्रेमचन्द कर्ज को मेहमान बताते हैं और 'गोदान' उपन्यास में लिखते हैं-“कर्ज वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।”⁴²

कृषकों के शोषण के लिए मात्र जमींदार ही उत्तरदायी नहीं है वरन उसके शोषण की एक शृंखला है यथा पटवारी, कानूनगो, कारिंदे एवं मुखिया भी सहायक है। इस उपन्यास में सरकारी अमलों द्वारा किसानों पर किये गए उन तमाम शोषण को अभिव्यक्त करता है जो सामंतों और पूँजीपतियों से मिली भगत से किये जाते हैं। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि- “गोदान की मूल समस्या ऋण की समस्या है। इस उपन्यास में किसानों के साथ मानो वह आप बीती भी कह रहे हों। किसान के जीवन के अलग-अलग पहलुओं पर वह उपन्यास लिख चुके थे प्रेमाश्रम में बेदखली और इजाफा लगान पर 'कर्मभूमि' में बढ़ते हुए आर्थिक संकट और किसानों की लगान बंदी की लड़ाई पर। लेकिन कर्ज की समस्या पर उन्होंने विस्तार से कोई उपन्यास न लिखा था। 'गोदान' लिखकर उन्होंने किसान की उस समस्या पर प्रकाश डाला जो आये दिन उनके जीवन को सबसे ज्यादा स्पर्श करती है।”⁴³

‘गोदान’ उपन्यास में ग्रामीण-वातावरण के अत्यंत सजीव-चित्र मिलते हैं- “भोला का पुरवा था तो छोटा, मगर बहुत गुलजार। अधिकतर अहीर ही बसते थे और किसानों को देखते इनकी दशा बहुत बुरी न थी। भोला गाँव का मुखिया था। द्वार पर बड़ी सी चरसी थी जिस पर

⁴²गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या : 89

⁴³प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या : 115

दस-बारह गाय भैसैं खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में के बड़ा सा तख्त पड़ा था जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूँटी पर ढोलक लटक रही थी, किसी पर मंजीरा। एक तख्त पर कोई पुस्तक बस्ते में बंधी रखी थी, जो शायद रामायण हो।”⁴⁴ ‘गोदान’ में जहां एक तरफ गरीब मजदूर किसानों की तमाम समस्याओं से प्रेमचन्द पाठक को रूबरू कराते हैं वहीं दूसरी तरफ ब्राह्मणवादी संस्कृति से दलितों के निर्णायक संघर्ष को भी दिखाते हैं।

‘गोदान’ सामंतवाद और पूँजीवाद की मिली भगत का दस्तावेज है। ‘गोदान’ में चित्रित राय साहब जो सामन्ती विचारों का अवसरवादी इंसान है और मिल मालिक खन्ना जो उभरते हुए पूँजीपति का प्रतिनिधित्व करता है। ये दोनों मिलकर बेलारी गाँव के सभी किसानों का शोषण करते हैं। ‘गोदान’ उपन्यास जिसके नायक होरी का जिजीविषा और जिन्दा रहने के लिए संघर्ष हमें प्रेमचन्द की खुद अपनी जिजीविषा और संघर्ष की याद दिलाती है मृत्यु के कुछ समय पहले की उनकी मनः स्थिति का चित्रण प्रेमचन्द इस प्रकार करते हैं-“जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानों उनके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है जीवन संग्राम का वह हारा है। वह उल्लास, वह गर्व, यह पुलक, क्या हार ले लक्षण हैं। इन्हीं हारों में उनकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उनकी विजय पताखाएं हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है।”⁴⁵

प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्रामीण-जनता धार्मिक अंधविश्वासों से जकड़ी हुई अंकित दिखलायी पड़ती है। प्रायः ग्रामीण-जनता का धर्म पर अटूट विश्वास होता है। धर्म ने जाति भेद के कठोर स्तंभों का निर्माण करके मानव की गैर-बराबर बताया है। पूजा-पाठ ऐसे बाह्याडम्बर थे, सामाजिक कुरीतियाँ, परंपराएँ, मान्यताएँ एवं रीति-रिवाज सब धर्म के महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार कर लिए गए हैं। ‘गोदान’ उपन्यास की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें ऋण समस्या का सजीव

⁴⁴गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या : 31

⁴⁵गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या : 307

चित्रण किया गया है। इसके साथ ही साथ इस उपन्यास में पारिवारिक संबंधों पर बहुत गहराई से विचार किया गया है तथा सामाजिक मान मर्यादा के नये मानदण्ड प्रस्तुत किये गये हैं।

वास्तव में अगर भारतीय गाँवों की वास्तविक स्थिति, गाँवों की सम्पन्नता और विपन्नता को गहराई से देखना चाहते हैं तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देगा। साहित्य के माध्यम से भारतीय आम जनता अर्थात् गरीब किसान की नेकी-बदी का पता लगाया जा सकता है। किसानों के जीवन उसकी सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति को देखना है तो प्रेमचन्द के अतिरिक्त अन्य जगहों पर शायद ही मिले। 'गोदान' कृषक जीवन को संत्रास देने वाली परिस्थितियों का लेखा-जोखा है। प्रेमचन्द ने इसमें जमींदारों द्वारा कृषकों पर किए गए अमानवीय और पाशविक अत्याचार से पाठक को रूबरू करवाते हैं। किस प्रकार जमींदार राय साहब द्वारा भोले-भाले होरी जैसे किसान को बेवकूफ बनाते हैं।

होरी जमींदारी को पिछले जन्मों का अच्छा परिणाम मानता है और गरीबी को पिछले जन्म में किये गए बुरे कार्यों का दुष्प्रभाव मानता है। जो किसान अपने खेत में सम्पूर्ण देश के लिए अन्न उगाता है, वह स्वयं भूखा रात बिताता है। वह चाहे 'पूस की रात' का हल्कू हो या 'सद्गति' का दुखिया या फिर 'गोदान' का होरी। 'गोदान' उपन्यास में ग्रामीण कृषक जीवन से जुड़े विभिन्न पात्र आते हैं। इन पात्रों का कहने का अपना अलग-अलग ढंग होता है। प्रेमचन्द इस मायने में बहुत मंजे हुए उपन्यासकार हैं। गोदान उपन्यास के केंद्र में 'गाय' है। इसी के इर्द-गिर्द उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण होता है। सम्पूर्ण उपन्यास में गाय संचित अभिलाषा के रूप में कभी स्वप्न में तो कभी यथार्थ रूप में विद्यमान है।

किसानों को लगान के अलावा नजराना भी देना पड़ता था तथा बेगारी जैसे काम जमींदारों के करने होते थे। जमींदार के अतिरिक्त यदि उनके कारिंदे गाँव की निगरानी करने आये

तो किसान को ही उसके खर्चे का इंतजाम करना पड़ता था। सरकारी हामिद और उनके कर्मचारी मिलकर किसान को कैसे शोषण करते हैं 'गोदान' उपन्यास के अंत में प्रेमचन्द होरी के भावी दामाद रामसेवक से कहलवाते हैं-“यहां तो जो भी किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे तो गाँव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिंदे का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कनिसिटीबिल तो जैसे उनके दामाद है। कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी जंट, कभी कलट्टर, कभी कमिसनर किसान को उसके सामने हाथ बांधे हाजिर रहना चाहिए।”⁴⁶

ग्रामीण संस्कृति पर आधारित अगले उपन्यासकार के रूप में जगदीश झा विमल हैं, जिन्होंने 'खरा सोना' में किसानों के शोषण का चित्रण किया है। 'खरा सोना' उपन्यास में पूँजीपतियों और किसानों का संघर्ष दिखाया गया है। जमींदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार, मिल मालिकों और मजदूरों का संघर्ष तथा हड़ताल आदि का चित्रण किया गया है। अंत में उपन्यासकार मजदूरों और मिल मालिकों का समझौता कराकर अपनी समन्वयवादी सोच का परिचय देता है। जगदीश झा विमल प्रेमचन्द के ही समकालीन हैं। जगदीश झा ने अपना अंतिम उपन्यास द्वितीय विश्वयुद्ध के दरम्यान 1941 ई० में लिखा जिसमें जमींदारों द्वारा निर्धन किसानों का शोषण, उनकी जमीन और जोरू पर छल-प्रपंच से अधिकार जमाने के प्रयास तथा पुलिस विभाग में फैले भ्रष्टाचार और समकालीन पारिवारिक समस्याओं का चित्रण किया है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का दूसरा उपन्यास 'अलका'(1933) में अवध के किसानों की समस्या पर प्रस्तुत किया गया है। निराला ने इस उपन्यास में माध्यम से अवध के किसानों की अभावग्रस्त दयनीय और नारकीय जिंदगी का अंकन किया है। इसमें चित्रित समय आजादी के

⁴⁶गोदान, प्रेमचन्द, पृष्ठ संख्या : 354

लड़ाई का वह समय था जब प्रथम विश्वयुद्ध के बाद गाँधी के नेतृत्व में आन्दोलन चल रहे थे। गाँधी के प्रयासों से लगभग सभी वर्ग आजादी की लड़ाई में सम्मिलित हुए। इसमें कोई संदेह नहीं कि उच्चवर्ग के लोगों ने त्याग किया और तकलीफें झेली परन्तु किसान, मजदूरों का त्याग भी कुछ कम नहीं था।

भारतीय किसान और मजदूर-वर्ग ने अभी अपनी मुक्ति की लड़ाई पूरी शक्ति से शुरू नहीं की थी। “हिंदी के सबसे बड़े उपन्यासकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में किसानों की तकलीफें और जमींदारों-साहूकारों तथा सरकारी तंत्र द्वारा उसके शोषण का चित्रण तो किया पर वे भी किसानों, मजदूरों द्वारा व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह का चित्रण करने से कतरा गए। उनका ध्यान इस तथ्य की ओर प्रायः नहीं गया कि कांग्रेस के नेतृत्व में जमींदारों पूँजीपतियों के विरुद्ध किसान मजदूरों के विद्रोह को उभरने न देने की कोशिश करता था। इसका कारण था कांग्रेस नेतृत्व का वर्ग स्वार्थ। पर निराला ने ‘अलका’ में इस वर्ग स्वार्थ का स्पष्ट उल्लेख किया है। उपन्यास का एक पात्र उन नेताओं का भी आलोचनात्मक रूप में उल्लेख करता है लाखों करोड़ों कमाई करने के बाद बन गए हैं। इस प्रकार कांग्रेस नेतृत्व और किसान जनता के वर्ग स्वार्थ एक दूसरे से सर्वदा भिन्न थे जिसे निराला ने प्रेमचन्द की तुलना में ज्यादा अच्छी तरह से समझा था। निराला ने ‘अलका’ में जमींदारों के विरुद्ध किसानों की बगावत का अंकन किया है।”⁴⁷

भारत एक कृषि प्रधान देश है जो किसान अन्न उगाकर सबका पेट भरता है लेकिन खुद के पास पेट भरने के लिए कुछ भी नहीं है। खेती का खर्च इतना है कि किसान ठीक से दो वक्त की रोटी नहीं खा पा रहा है। इन्हीं किसानों पर केन्द्रित अगले उपन्यासकार के रूप में **रामचंद्र तिवारी** का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने दो उपन्यास ‘कमला’(1943) और ‘सागर सरिता

⁴⁷हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 152

और अकाल’(1946) लिखा है। ‘कमला’ उपन्यास में उत्तरी भारत के एक गाँव के किसानों की परिस्थितियों का चित्रण किया है जिसमें निर्धन, साधनहीन, अशिक्षा तथा अभाव पीड़ित किसानों की जिंदगी का यथार्थ चित्रण किया है।

इस उपन्यास में किसानों के आचार-व्यवहार, रहन-सहन, आशाओं-आकांक्षाओं आदि के साथ ग्रामीण-जीवन के विविध-पक्षों का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रम की महत्ता, स्त्रियों के लिए शिक्षा की जरूरत आदि पर भी विचार किया गया है। ‘सागर सरिता और अकाल’ उपन्यास बंगाल के अकाल पर आधारित है। इन उपन्यासों में प्राकृतिक आपदा से किसानों के जीवन को और भी बदतर होने, मिल मालिकों, महाजनों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले शोषण आदि का भी चित्रण है। अकाल और भुखमरी को लेकर नागार्जुन के साथ रामचंद्र तिवारी का नाम लिया जा सकता है। रांगेय राघव का उपन्यास ‘विषाद मठ’ भी किसान-जीवन पर आधारित उपन्यास है।

2.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन (1948 ई.-1969 ई.)

स्वतंत्रता के बाद एक नये भारत का उदय हुआ। लोगों में एक उम्मीद जगी कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और भारतीय जनता में कई तरह के सुधार किए जाएंगे। भारत की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए भी अनेक प्रयास किए गए। इन सबके बीच पंचवर्षीय योजनाएँ भी बनाई गईं। प्रथम पंचवर्षीय योजना का ध्येय ही यह था कि भारतीय कृषि को बढ़ावा दिया जाय। आजादी से पहले किसानों का सबसे अधिक शोषण जमींदारों और महाजनों द्वारा होता था। जमींदार ही जमीन का सर्वेसर्वा होता था। वह मध्यम और निम्न जातियों के लोगों को काम के लिए भूमि दिया करता था और मनमाने तरीके से लगान वसूल करता था। सरकार भी कुछ नहीं बोलती थी क्योंकि लगान वसूली का एक हिस्सा सरकार को भी जाता था। इसलिए भारत में

संवैधानिक रूप से जमींदारी जैसी प्रथा को समाप्त कर दिया गया । जिसे जमींदारी-उन्मूलन के नाम से जाना जाता है । जमींदारी प्रथा भारत में मुगलकाल एवं ब्रिटिश में प्रचलित एक राजनैतिक-सामाजिक कुरीति थी जिसमें भूमि का स्वामित्व उस पर काम करने वालों का न होकर किसी और (जमींदार) का होता था जो खेती करने वालों से कर वसूलते थे । जमींदारी प्रथा समाप्त होने के बाद भी भारतीय किसानों का अबाध रूप से महाजनों, जमींदारों और सूदखोरों तथा सरकारी तंत्रों द्वारा शोषण होता रहा । कृषकों के शोषण का भारतीय उपन्यासकारों ने एक विशेष क्षेत्र को आधार बनाकर वहां की भौगोलिक तथा राजनीतिक दिशा और दशा के अनुसार अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्ति दी है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् किसान-जीवन संबंधी समस्याओं पर केन्द्रित उपन्यास लेखन का कार्य नागार्जुन और फणीश्वरनाथ रेणु ने आरम्भ किया । नागार्जुन संभवतः आजादी के बाद के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने प्रेमचन्द की परंपरा को पुनः जीवित ही नहीं किया अपितु उसे आगे बढ़ाया । नागार्जुन ने मिथिलांचल के गांवों को अपनी कथाभूमि बनाया है । इन्होंने कविता और उपन्यास दोनों विधाओं में किसानों की दयनीय स्थिति की मार्मिकता को अभिव्यक्त किया है । ‘अकाल और उसके बाद’ शीर्षक कविता में अकाल के बाद उत्पन्न किसानों की भुखमरी और लाचारी को अभिव्यक्त किया है-

“कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास ।

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गस्त,

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।”⁴⁸... (नागार्जुन)

नागार्जुन के दो उपन्यास ‘रतिनाथ की चाची’(1948) और ‘बलचनमा’(1952)

ग्रामीण- जीवन पर आधारित ऐसे उपन्यास हैं जिसमें साधन विहीन ईमानदार और परिश्रमी किसान के जीवन की गाथा है। ‘बलचनमा’ में ग्रामीण-जीवन की कटु और नग्न यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। उपन्यास का मुख्य पात्र बलचनमा सम्पूर्ण निम्न वर्ग का प्रतीक है। निम्न वर्ग सदियों से जमींदारों के शोषण और दमन का शिकार रहा है। जिसमें बच्चे और स्त्रियाँ भी शामिल हैं। इनके साथ जमींदार पशुवत व्यवहार करता है। ‘बलचनमा’ एक ऐसे परिवार का सदस्य है जिसमें सबके सब मजदूर किसान हैं। लेखन ने साधनहीन एवं अधिकार वंचित किसानों का जमींदारों द्वारा किए जाने वाले शोषण और दमन के विरुद्ध विद्रोह की भावना को अभिव्यक्ति दी है। किसान मजदूरों की समस्याओं, अंधविश्वास तथा इससे फैली अशांति का चित्रण किया गया है। लेखक एक संगठन शक्ति के द्वारा बलचनमा के माध्यम से किसानों के हक की लड़ाई को दिखाया है। ‘बलचनमा’ किसानों को संगठित करके अधिकारों की ओर उन्मुख करना चेतना का संकेत है। वैसे तो ‘रतिनाथ की चाची’ उपन्यास से नागार्जुन जमींदारों द्वारा किसानों की बेदखली, जमींदारों के विरुद्ध किसानों के संघर्ष आदि का चित्रण आरम्भ कर देते हैं परन्तु वहां मात्र संकेत देते हैं जो आगे चलकर बलचनमा में विस्तृत रूप प्रदान करते हैं।

गोपाल राय का मानना है कि- “बलचनमा केवल इसलिए एक उल्लेखनीय उपन्यास नहीं है कि इसमें कृषक-मजदूरों पर जमींदारों के अत्याचार और शोषण का चित्रण किया है। यह काम प्रेमचन्द ने कहीं ज्यादा तीखे और धारदार रूप में किया था। पर प्रेमचन्द ने जमींदारों के विरुद्ध किसानों के विद्रोह का चित्रण नहीं किया है। उनके उपन्यास में किसान का विद्रोह केवल

⁴⁸https://kavitakosh.org/kk/अकाल_और_उसके_बाद_/_नागार्जुन 9 जुलाई 2013, समय- 9 : 39

सांकेतित होकर रह गया है। प्रेमचन्द किसानों की समस्याओं के समाधान लिए उसके संगठन की आवश्यकता का तो अनुभव करते हैं, पर उनके उपन्यासों के किसान किसी संगठन का निर्माण कर जमींदारों के विरुद्ध आन्दोलन नहीं करते।”⁴⁹ इसी समय जमींदारों के खिलाफ किसान आन्दोलन जोर पकड़ने लगा था और जमींदार अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए लड़ाई लड़ रहे थे।

फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखित ‘मैला आँचल’(1954) हिंदी का पहला आँचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास की कथावस्तु बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के ‘मेरीगंज’ गाँव है। मेरीगंज गाँव के माध्यम से ‘रेणु’ ने वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियों का भी चित्रण किया है। ‘मैला आँचल’ उपन्यास में आजादी के कुछ पहले तथा आजादी के दो-तीन वर्ष बाद तक की घटनाओं का चित्रण किया गया है। जमींदारों और अंग्रेजों द्वारा मिलकर भारतीय किसानों पर किए गए अत्याचारों का उल्लेख किया गया है। मेरीगंज की सारी धरती दो-तीन आदमियों के अधिकार में है बाकी जनता इन्हीं की दया-भाव पर निर्भर रहती है। जमींदारों और सामंतों के अलावा ग्रामीण या तो खेतिहर मजदूर है या बटाईदारी पर खेती करते हैं।

इन खेतिहर मजदूरों को भरपेट भोजन और तन ढकने को कपड़ा भी नहीं मिलता और रहने के नाम पर फूस की झोपड़ी में सारी जिंदगी काट देते हैं। गरीबी इतनी ज्यादा है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई बीमारी हो गयी तो उनके पास इलाज करवाने का पैसा नहीं रहता। जमींदार, तहसीलदार और धनी किसानों द्वारा गरीब किसानों का शोषण किया जाता है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार अंग्रेजी अफसर और जमींदार मिलकर वहाँ की जनता पर अपना मनमाना अधिकार जमाते हैं। “जमींदारों ने अपने भाड़े के लठैतों को जगह-

⁴⁹हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 218

जगह संथालों की लहलहाती फसलों पर हुलका कर संथाली टोली पर चढ़ाई करवाकर रुपये लाठी के हिसाब से बटोरे हुए लठैतों को संथालों के तीरों से जखमी करवाकर, सबल प्रमाण पेश कर दिया था। संथालों के जोर जुल्म का मुख्य कारण है यह अंग्रेज कलक्टर।”⁵⁰

ग्रामीण परिवेश और किसान-जीवन को विषय वस्तु बनाकर उपन्यास लेखन परंपरा में भैरव प्रसाद गुप्त का नाम लिया जाता है। इन्होंने ‘गंगा मैया’ (1952) और ‘सती मैया का चौरा’ (1959) इन दो उपन्यासों में वर्ग चेतना और साम्यवाद के प्रति प्रतिबद्धता मुखरित हुई है। हालांकि इन उपन्यासों में आँचलिकता के तत्व हैं फिर भी आँचलिकता के साथ-साथ किसान-जीवन संबंधी समस्याओं का चित्रण गहराई से किया गया है क्योंकि अँचल विशेष का संबंध ही ग्राम जीवन से है, वहां की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों से है। ‘गंगा मैया’ उपन्यास में उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के एक गाँव को केंद्र बनाया गया है। शक्ति और साहस का परिचय देने के उद्देश्य से लेखक ने कथा नायक के रूप में ‘मटरू’ जैसे सशक्त व्यक्तित्व की सृष्टि की है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किसानों से जमींदारों का संघर्ष दिखाया है।

इनके उपन्यासों में वर्ग-विहीन, वर्ण-शोषण और जमींदारों तथा पूँजीपतियों पर किसान मजदूरों की विजय के आकांक्षित आदर्श को अभिव्यक्ति दी गई है। सबसे बड़ी बात यह है कि गुप्त जी इन मजदूरों किसानों की स्थिति, नियति कथा मार्क्सवादी सिद्धांतों के चौखट में रखकर प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास में वर्णित अभावग्रस्त ग्रामीणों के पारिवारिक वैमनस्य, बिरादरी के लोगों द्वारा कृषक वर्ग के हितों का विरोध और किसानों तथा जमींदारों से मिली पुलिस शासन के हथकंडे और रिश्वतखोरी का चित्रण किया गया है।

⁵⁰मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृष्ठ संख्या : 75

इन उपन्यासों में कृषक मजदूर वर्ग साम्यवादी चेतना से युक्त होते हैं। इसी वजह से इनके पात्र विषमताओं और शोषण के सामने सिर नहीं झुकाते बल्कि संघर्ष करते दिखाई देते हैं। ‘जंजीरों और नया आदमी’ उपन्यास में भी साम्यवादी चेतना से संपन्न नए आदमियों के माध्यम से सामंती व्यवस्था की जंजीरों से मुक्ति पाने की तत्परता की ओर संकेत किया गया है। इसके साथ वर्गीय चेतना से संपन्न किसान एकजुट होकर जमींदार, सरकारी तंत्र और कांग्रेसी नेताओं से संघर्ष करते हैं।

किसान-जीवन पर आधारित उपन्यासों की श्रेणी में ‘अलग-अलग वैतरणी’(1967) को भी रखा जा सकता है। ‘अलग-अलग वैतरणी’ शिवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित ग्रामीण जीवन और कृषकों की समस्या पर केन्द्रित उपन्यास है। अँचल विशेष होने के कारण कुछ विद्वान इसे आँचलिक उपन्यास के खाँचे में रखते हैं पर शिवप्रसाद सिंह इसे आँचलिक नहीं मानते। ‘अलग-अलग वैतरणी’ का केन्द्रीय तथ्य है- आजादी के बाद उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के गाँवों के जिंदगी के दिनोंदिन बिगड़ती स्थिति का चित्रण किया गया है। इसमें खेती छोड़ते युवकों को दिखाया गया है यानी यह उपन्यास किसानों का खेती से पलायन के सन्दर्भ को प्रस्तुत किया गया है।

जमींदारों और साहूकारों द्वारा किसानों पर किया जाने वाला अमानवीय शोषण को लेखक ने विस्तारपूर्वक चित्रित किया है। लेखक ने जमींदारों तथा सरकारी ठेकेदारों के भ्रष्ट चरित्र को दिखाने की कोशिश की है। जमींदार, साहूकार, महाजन, तहसीलदार तथा जितने भी सरकारी नुमाइन्दे हैं सब अलग-अलग तरह से किसानों का शोषण करने में कोई कमी नहीं करते। यह उपन्यास जमींदारी प्रथा को लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के कुल मिलाकर लगभग अर्धसती के जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है।

2.4 समकालीन हिंदी उपन्यास और किसान-जीवन (1970 ई.-1990 ई.)

आजादी के बाद साठ-सत्तर दशक में ग्रामीण-जीवन और उनकी समस्याओं पर लेखन कार्य बहुत कम मिलता है। इस समय के ज्यादातर उपन्यासकार महानगरों में बसने लगे और गाँवों से उनका लगाव कम होने लगा। विवेकी राय जैसे उपन्यासकार को छोड़ दें, तो इस समय गाँव और किसान-जीवन को केंद्र में रखकर लेखन कार्य न के बराबर हुआ है। इस बीच एक लम्बा अंतराल देखने को मिलता न है। इसके कई कारण हो सकते हैं, एक कारण तो यह है कि भारत में हरित क्रांति का पदार्पण हो चुका था खाद्यान्न पूर्ति के मामले में भारत आत्मनिर्भर बन रहा था। सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में सुधार की उम्मीद दिखाई दे रही थी। साम्प्रदायिक तनाव और इमरजेंसी जैसी राजनीतिक उथल-पुथल हो रही थी इसीलिए लेखन का विषय आपातकाल तथा अन्य सामाजिक और राजनीतिक विषय हो गए थे। दूसरा कारण यह है कि महँगाई अपना पैर पसार रही थी लेकिन किसानों की समस्याएँ ज्यों का त्यों बनी रहीं।

इस उप अध्याय के अंतर्गत ग्रामीण और किसान-जीवन से संबंधित उन उपन्यासों को लिया गया है जो सन 1970 से 1990 के बीच प्रकाशित हुए हैं। भारतीय कृषक जीवन की जटिलताएँ अर्थ पर निर्भर है। व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक स्तर में अर्थ की बहुत बड़ी भूमिका होती है। इसी अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए हिंदी उपन्यासकारों ने किसानों की स्थिति को चित्रित किया है। रामदरश मिश्र अपने उपन्यास ‘जल टूटता हुआ’, ‘सूखता हुआ तालाब’ तथा ‘पानी के प्राचीर’ में किसानों की इसी आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हैं। ‘जल टूटता हुआ’ उपन्यास की कथावस्तु स्वातंत्र्योत्तर भारत के किसानों की आर्थिक स्थिति को बनाया गया है। भारत को आजादी मिलने के बाद सारे नियम कानून भारतीय राजनेताओं के पास है फिर भी किसानों की स्थिति में जिस गति से सुधार होना चाहिए वैसे नहीं हो रहा है।

किसान दर-दर की ठोकरें खाता हुआ जीवन जी रहा है। भारतीय किसानों की स्थिति ये है कि फसलों की बुआई, कटाई तथा अन्य खर्चों के लिए स्त्रियों के गहने गिरवी रखने पड़ रहे हैं। ‘जल टूटता हुआ’ उपन्यास में किसान महाजनों का कर्ज अदा न कर पाने के कारण किसानों की फसलों को रातो-रात कटवा लेता है। मजदूर किसान के बच्चे साल भर खाने के लिए तरसते रहते हैं। उपन्यास में इस प्रकार चित्रित है- “उस दिन खाने ले लिए कुछ नहीं था। तिजहर को बाबू साहब घूमते-घामते दीवान खाने की ओर आ गए। सबसे पूछा की क्या इसके खाने पीने का इंतजाम हो गया था? सभी चुप थे।”⁵¹ यह कैसी बदनसीबी है कि जो सभी का अन्नदाता है, वही आज अन्न के लिए तरसता है। इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है?

‘सूखता हुआ तालाब’ उपन्यास में महाजन शामदेव अपने गाँव के गरीब मजदूरों को कर्ज देकर एक का पांच वसूलता है। खुशी या गमी जब भी हो किसान कर्ज के लिए महाजनों का दरवाजा खटखटाते हैं। महाजन रुपये तो दे देता है पर इसके बदले धीरे-धीरे किसानों के खेतों को छीन लेता है। इस तरह किसान, किसान से मजदूर में तब्दील हो जाता है।

हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन की अभिव्यक्ति की अगली कड़ी में जगदीश चन्द्र का नाम लिया जाता है। इन्होंने कई उपन्यास लिखे जैसे- आधा पुल(1973), कभी न छोड़े खेत(1976), धरती धन न अपना(1976), मुट्ठी भर कांकर(1976), घास गोदाम(1985), नरक कुंड में वास(1994) और ‘लाट की वापसी’ आदि। ‘धरती धन न अपना’ इनका बहुचर्चित उपन्यास है जो सामाजिक दृष्टि से बाढ़ संघर्ष और किसान जीवन, मजदूर आदि समस्याओं का पाठक के सामने रखता है। इस उपन्यास में लेखक ने पंजाब के घोड़ेवाला गाँव की विविध स्थितियों को अत्यंत ही संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है। इसमें पंजाबी जाट किसानों के

⁵¹जल टूटता हुआ, रामदरश मिश्र, पृष्ठ संख्या : 102

देश विभाजन के समय उत्पन्न स्थितियों से रूबरू करवाया गया है। जाट किसानों की मानसिकता उनके तौर तरीके, जीवन पद्धति तथा संस्कार का यथार्थ और सूक्ष्म चित्रण दिखाई देता है।

सामंती व्यवस्था किस प्रकार अपने ही अंतर्विरोध में चरमरा कर टूट और बिखर रही है इसका भी संकेत उपन्यास के माध्यम से किया गया है। **‘मुट्टी भर कांकर’** उपन्यास देश विभाजन के बाद पंजाबी शरणार्थियों के सैलाब के फलस्वरूप दिल्ली के आस-पास के जाट किसानों के बेघर होने और अपनी पुश्तैनी जमीन से उखड़ जाने की त्रासदी को बयां करता है। पूँजीपतियों ने किसानों की अशिक्षा, अंधविश्वास, सरलता, पुराने मूल्यों से जुड़े रहने की प्रवृत्ति आदि का फायदा उठाकर उनकी जमीनें हथिया लेते हैं। किसानों की जमीनें उनकी हाथों से निकल गई और मुट्टियों में रुपये की गड़्डियाँ आ गयीं। ये गड़्डियाँ उनके लिए मुट्टी भर कांकर से समान थीं। इसमें लेखक ने विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं को दिखाया है। **‘कभी न छोड़े खेत’** उपन्यास में किसानों की संघर्ष गाथा विद्यमान है।

चकबंदी कृषि सुधार संबंधी एक ऐसी योजना है जिसके तहत किसान की कई भागों में विभक्त जमीनों को एक ही स्थान पर करना। **विवेकी राय** के उपन्यास **लोकक्रण(1977)** और **सोना माटी(1983)** कृषक जीवन में आने वाली तमाम समस्याओं को उजागर करते हैं। **‘सोना माटी’** उपन्यास में यह दिखाया गया है कि किसानों के प्रति जमींदारों का उत्पीड़न अपनी चरम सीमा पर है। औरतों का शोषण, मजदूरों की मजदूरी और निम्नवर्ग पर आतंक जमाने के लिए उच्च वर्गों के लोग कोड़े और लाठियों से पीटता रहता है। भूमि एकीकरण के तहत इस उपन्यास में सरकार चकबंदी जैसी योजना चलाती है। **‘सोना माटी’** उपन्यास में इसी चकबंदी जैसी योजनाओं का किसानों पर होने वाले प्रभावों का वर्णन किया गया है। चकबंदी योजना का

ज्यादातर प्रभाव नकारात्मक ही रहा है। गाँव के अपेक्षाकृत ऊँचे ओहदे के किसान अपनी ताकत के अनुसार चकबंदी अधिकारी को रिश्वत देकर छोटे किसानों की जमीनों को छीन लेते हैं तथा सावर्जनिक उपयोग को जैसे- तालाब, धर्मशाला और पुस्तकालय को अपने नाम करवा लेते हैं। जमीन विस्थापन को लेकर छोटे किसान और बड़े किसानों में हाथापाई भी होती है।

‘लोककण’ उपन्यास आठवे दशक के एक गाँव उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल जिले का प्रामाणिक और मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करता है। यह अत्यंत पिछड़ा और गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाला क्षेत्र है। यह वह क्षेत्र है जहाँ भूमिपतियों द्वारा छोटे किसानों और कृषक मजदूरों का अमानवीय शोषण होता है। जहाँ ग्रामीण विकास के नाम पर चलाई गई सरकारी योजनाएँ साधन सम्पन्न भूमिपतियों, इंजीनियरों, ठेकेदारों और राजनीतिक व्यावसायिकों की तिजोरी भरने में चुक जाती है। यह सब वस्तुतः उस मूल संकट का ही परिणाम है जो समस्त आधुनिक जीवन पर छाया हुआ है। इसका एक कारण प्रजातंत्र, पूँजीवाद और सामंतवाद का आपसी मेल-जोल है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में उपन्यास जैसी विधा की शुरुआत तो बंगला साहित्य से होते हुए हिंदी साहित्य में आयी। हिंदी साहित्य में शुरुआती दौर के उपन्यास तो मनोरंजन प्रधान थे। समय और परिस्थिति के अनुसार समाज की सच्चाई को रचनाकारों ने अभिव्यक्त करना आरम्भ किया। वर्तमान समय के उपन्यासों की कथावस्तु एक सामान्य व्यक्ति को नायक बनाकर लिखा जा रहा है। खैर उपन्यास की कथावस्तु का फलक काफी विस्तृत होता है। जहाँ तक हिंदी कथा साहित्य में गाँव का जीवन, गाँव की सभ्यता और गाँव की संस्कृति तथा

गाँव में ही अत्यधिक संख्या में जीवन यापन करने वाले किसान के चित्रण की बात की जाय तो कथा सम्राट प्रेमचन्द का नाम लिया जाता है।

हिंदी भाषा में प्रेमचन्द ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने पहली बार लोगों का ध्यान ग्रामीण जीवन की ओर ले गए और किसानों के दुःख-दर्द को लेखन बद्ध किया। हिंदी कथा साहित्य में किसान-जीवन का केंद्र बिंदु बनाकर लिखने का बीज प्रेमचन्द ने ही बोया। जो वर्तमान समय में एक नए विमर्श के रूप में हमारे सामने आया है। लेकिन प्रेमचन्द से बहुत पहले उड़िया भाषा के उपन्यासकार 'फ़कीर मोहन सेनापति' ने किसानों के शोषण का जिक्र 'छः बीघा जमीन' नामक उपन्यास में कर चुके थे।

भारतीय किसानों का शोषण आजादी से पहले से होता आ रहा था और आज भी हो रहा है। फर्क सिर्फ इतना है कि प्रेमचन्द के समय का किसान यदि सेठ, साहूकार और सामंतों के आतंक से परेशान था तो आज का किसान पूँजीपति और सरकारी बैंकों से लिया गया कर्ज की अदायगी न कर पाने की वजह से परेशान है। पहले भी किसानों की मुख्य समस्या कर्ज थी और आज भी कर्ज ही है। इसके कई कारण हैं। पानी, बीज और फसलों के उचित दाम न मिलने के कारण किसानों की स्थिति दिनोंदिन बदतर होती जा रही है। जिसका जिक्र आज के उपन्यासकारों ने किया है और इन समस्याओं के समाधान भी बताये हैं।

तृतीय अध्याय

नवउदारवाद के दौर के हिंदी के प्रमुख उपन्यास

- 3.1 'बेदखल' : ताल्लुकेदारी प्रथा का शिकार भारतीय किसान
- 3.2 'जमीन अपनी तो थी' : भूमिहीन भारतीय किसान की वेदना
- 3.3 'हिडिम्ब': किसानों की जमीनों पर पूँजीपतियों की गिद्ध-दृष्टि
- 3.4 'हलफनामे' : किसानों का मुआवजा और प्रशासन का खेल
- 3.5 'रेहन पर रघू' : गंवई संस्कृति का बदलता स्वरूप और किसान का जीवन
- 3.6 'आखिरी छलाँग' : कर्ज की मर्ज से परेशान आत्महत्या करता किसान
- 3.7 'अधबुनी रस्सी : एक परिकथा' : चकबंदी अधिकारियों का षडयंत्र
- 3.8 'नरक मसीहा' : खेती से पलायन कर मजदूर बनता किसान
- 3.9 'जहां एक जंगल था' : जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण
- 3.10 'गाँव भीतर गाँव' : ग्रामीण राजनीति का शिकार होता दलित-समाज और भूमिहीन किसान
- 3.11 'फाँस' : आत्महत्या के फाँस में फँसता भारतीय-किसान
- 3.12 'अकाल में उत्सव' : किसान क्रेडिट कार्ड योजना का खोखलापन
- 3.13 'ये जमीन हमारी है' : कॉरपोरेट कंपनियों का बढ़ता प्रभाव
- 3.14 'ताकि बची रहे हरियाली' : जैविक-खेती और कॉरपोरेट जगत

प्रस्तावना

निजीकरण और बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव ने समस्त मानव-जीवन को प्रभावित किया है। कहीं पर इसका प्रभाव सकारात्मक है तो कहीं पर नकारात्मक। इस दौर में औद्योगीकरण या यंत्रीकरण से जहाँ एक तरफ कल-कारखानों और कृषि कार्य के लिए नए-नए यंत्रों की ईजाद होने से कार्यों को बहुत आसान बनाया गया वहीं दूसरी तरफ श्रमिकों और खेतिहर मजदूरों की कमर तोड़ दी। नवउदारवाद का सबसे ज्यादा नकारात्मक प्रभाव भूमिहीनों, मजदूरों और किसानों पर पड़ा वह चाहे श्रमिक मजदूर हो या दिहाड़ी मजदूर। इस पूँजीवादी समाज ने किसानों के जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया है। कृषि क्षेत्र में भी कॉरपोरेट जगत ने जड़ें जमाना शुरू किया और पूँजीपति-वर्ग किसानों की जमीनों को सरकार के सहयोग से खरीदने लगे, अब ‘ठेके पर खेती’ होने लगी जिससे किसानों की स्थिति दयनीय होती गई और किसान अपने ही खेतों में मजदूर बनते गए। नवउदारवाद की नीतियों से किसान का जीवन किस तरह दयनीय होता गया इसका विवरण और विश्लेषण विभिन्न उपन्यासकारों के हवाले इस अध्याय में किया गया है।

भारत विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं वाला देश है। इस देश की आधी से ज्यादा आबादी आज भी गाँवों में निवास करती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखते हुए यहाँ समय-समय पर राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उथल-पुथल होता रहा है। किसी भी देश की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था तभी सुदृढ़ या मजबूत रहती है जब उस देश की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है और यही भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है। कृषि का कार्य भारत की आधी आबादी से ज्यादा ग्रामीण जनता करती है। जिसकी वजह से प्रधानतः भारत गाँवों का देश कहलाता है और यह भी कहा

जाता है कि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। गाँव का स्वरूप ही भारत का असली स्वरूप है।

गाँव के सन्दर्भ में डॉ० हिन्दुराव रामचंद्र ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद के कथा साहित्य में गाँव' में लिखा है कि- "गाँव ग्रामीण क्षेत्र की मूल इकाई है। गाँव में मानवीय दृष्टिकोण आज भी विद्यमान है। आज भी 65 से 70 प्रतिशत जनता जीवन-निर्वाह के लिए कृषि पर निर्भर हैं। आज भूमंडलीकरण के कारण बहुत बदलाव आ गए हैं। बाजारवाद के कारण भी जमींदारी पद्धति में भी परिवर्तन हो गया है। गाँव की समस्याएँ सुधारों के बावजूद भी यथावत बनी हुई हैं। हमारे गाँव एक बहु-संबंधवादी तालमेल के प्रतीक हैं। महात्मा गाँधी, डॉ० बी० आर अम्बेडकर तथा अन्य समाज सुधारकों के अथक प्रयासों का यही फल हुआ है कि समाज में इतना परिवर्तन आया है।"⁵²

कृषि उत्पादन का कार्य करने वाली ग्रामीण जनता को सामान्यतः किसान कहा जाता है। भारतीय किसान अत्यंत परिश्रमी और संघर्षशील है। वह (किसान) दिन-रात कड़ी मेहनत करता रहता है। वही किसान आज तमाम चिंताओं और समस्याओं से घिरा हुआ है। वर्तमान समय में देश किसान आन्दोलनों और कर्ज माफी की मांग के दौर से गुजर रहा है। कहीं न कहीं किसान अपनी समस्याओं को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं। स्थिति यह हो गई है कि किसानों की माँगों को सरकार द्वारा अनसुनी करने के कारण दिल्ली के जंतर-मंतर नामक स्थान पर हुए विशाल आन्दोलन में किसान अपने मल-मूत्र खाने-पीने की बात कर रहे होते हैं।

बहरहाल, किसान अपनी जायज माँगों को समय-समय पर उठाता रहा है। पिछली शताब्दी के नवें दशक के बाद भूमंडलीकरण की आंधी ने भारतीय गाँवों को भी अपने गिरफ्त में

⁵²प्रेमचंद के कथा साहित्य में गाँव, डॉ. हिंदुराव रामचंद्र घरपणकर, पृष्ठ संख्या : 6

लेना शुरू किया। बाजारवाद का ऐसा बवंडर उठा कि समाज का ऐसा कोई वर्ग नहीं था जो इस बाजारवाद से अछूता रहा हो। किसी भी देश या राज्य के विकास में किसानों और मजदूरों जैसे तमाम मेहनतकशों की अहम भूमिका होती है। किसान-वर्ग ऐसा वर्ग है जिसमें सभी धार्मिक समुदायों का समुच्चय है जो सभी कौम, धर्म, जाति और समुदायों के व्यक्तियों से बना है। किसान का संबंध सीधे-सीधे उस देश की खेती-बाड़ी तथा अर्थव्यवस्था से होता है। लेकिन मेहनतकश वर्ग निम्नवर्गीय-किसान और मजदूर किसान है जिनके पास बहुत कम जमीन है या भूमिहीन हैं। अक्सर यह कहा जाता है कि भारत कृषि प्रधान देश है। हाँ, बात तो सही है पर किसी समय भारत कृषिप्रधान देश रहा होगा लेकिन आज भारत कृषि प्रधान देश नहीं बल्कि विदेशी कम्पनी प्रधान देश हो गया है जो किसानों से किसानों छीन रहा है और इसके साथ ही उनके जीवन में परिवर्तन ला रहा है।

आज का भारत प्रेमचन्द के भारत से काफी बदल गया है। खेती करने के नियम-कायदे बदल गए हैं। पर किसानों की समस्याएँ जस की तस बनी हुई हैं, हाँ किसानों की इन समस्याओं का स्वरूप जरूर बदल गया है। मनुष्य अब उतना और वैसा सामाजिक नहीं रहा जैसा पहले था। समाज में आये इन परिवर्तनों का असर उपन्यासकारों के लेखन में भी दिखाई देता है। नवें दशक में भारत सरकार द्वारा लागू की गई 'नई आर्थिक नीति' (1991) अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारतीय समाज के निम्न तबके से उच्च तबकों तक में एक परिवर्तन दिखाई दिया और किसानों की जीवन-शैली में भी बहुत बदलाव दिखाई दिया। खेतीबाड़ी का सारा काम-काज मशीनों से होने लगा।

‘हरित क्रांति’ को बढ़ावा दिया गया। फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग बड़ी मात्रा में किया जाने लगा। रासायनिक खादों का प्रयोग करने से तात्कालिक

लाभ तो खूब हुआ पर बाद में उसके दुष्परिणाम सामने आने लगे । इससे वैश्विक-ग्राम या बाजारवाद का दुष्प्रभाव भी दिखाई देने लगा है । इसी समय नवउदारवाद का दौर आरम्भ होता है और किस तरह साहित्य लेखन में भी एक नई शैली पनपती है । यह लेखन शैली इस समय के उपन्यासकारों में दृष्टिगत होती है । स्वतंत्रता के बाद सामंती व्यवस्था का संवैधानिक तरीके से अंत कर दिया गया फिर भी किसानों का शोषण होता रहा । उदारीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण के कारण कॉर्पोरेशन पूँजी की ललचाई नजरें नए ढंग से खेतिहर समाज पर गड़नी शुरू हो गई । अब नई व्यवस्थाओं के अनुसार पूँजीपति ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन खरीद सकेंगे । कॉर्पोरेट कंपनियों का लगातार विस्तार हो रहा है । किसानों की उपजाऊ जमीनों को पूँजीपतियों द्वारा अपार्टमेन्ट में बदला जा रहा है ।

सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति के संवर्धन और विकास के लिए अर्थ(रूपया) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । समय की मांग के अनुसार कृषि के उत्पादन में परिवर्तन होना लाजमी है । इंग्लैंड से भारत तक का औद्योगिक क्रांति का सफ़र और भारत में हरित क्रांति (1966-67) होने से कृषि उत्पादन में काफी बदलाव आया है कृषि उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी हुई फिर भी भारतीय किसान किसी न किसी रूप से अभावग्रस्त, शोषित और प्रताड़ित रहा है । जिसकी अभिव्यक्ति उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में की है । किसानों के जीवन को केन्द्रीय बिंदु बनाकर प्रेमचन्द से लेकर कथाकार संजीव और पंकज सुबीर तक एक लम्बी परंपरा रही है । नवउदारवाद के दौर के किसान-जीवन पर आधारित उपन्यासों का विवरण अग्रलिखित है-

क्रम संख्या	लेखक	उपन्यास
1	कमलाकांत त्रिपाठी	‘बेदखल’ (1997)
2	जगदीश चन्द्र	‘जमीन अपनी तो थी’ (2001)

3	एस. आर हरनोट	‘हिडिम्ब’ (2002)
4	राजू शर्मा	‘हलफनामे’ (2006)
5	काशीनाथ सिंह	‘रेहन पर रघू’ (2008)
6	शिवमूर्ति	‘आखिरी छलाँग’ (2008)
7	सच्चिदानंद चतुर्वेदी	‘अधबुनी रस्सी : एक परिकथा (2009)
8	मदन मोहन	‘जहाँ एक जंगल था’ (2012)
9	भगवानदास मोरवाल	‘नरक मसीहा’ (2014)
10	सत्यनारायण पटेल	‘गाँव भीतर गाँव’ (2015)
11	संजीव	‘फाँस’ (2015)
12	अनंत कुमार सिंह	‘ताकि बची रही हरियाली’ (2015)
13	पंकज सुबीर	‘अकाल में उत्सव’ (2017)
14	विश्वंभर मिश्रा	‘यह जमीन हमारी है’ (2017)

3.1 ‘बेदखल’ : ताल्लुकेदारी प्रथा का शिकार भारतीय किसान

कमलाकांत त्रिपाठी द्वारा लिखित ‘बेदखल’ उपन्यास वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से वर्ष 1997 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में आजादी के सौ वर्ष पहले हुए भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय के अवध के किसानों के प्रति हो रहे अंग्रेजों द्वारा शोषण को बहुत गहराई से दिखाया गया है। भारत में जमींदारी व्यवस्था या ताल्लुकेदारी व्यवस्था मुगलकाल एवं ब्रिटिश काल में प्रचलित राजनैतिक और सामाजिक कुरीति थी जिसमें भूमि का स्वामित्व उस पर

काम करने वाले का न होकर किसी और जमींदार का होता था जो खेती करने वालों से कर या लगान वसूलते थे।

भारत में स्वतंत्रता के बाद इस व्यवस्था को कानूनन समाप्त कर दिया गया। तालुकेदार किसी ताल्लुके का जमींदार या बड़ा जमींदार अंग्रेजी शासन में अवध प्रदेश में वह जमींदार जिसे सरकार के विशिष्ट अधिकार प्राप्त हों। यह जमींदार किसानों से बेदखल या अपने मन माफिक लगान लगाता था। प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारतीय लोगों के प्रति अंग्रेज अधिकारियों का रवैया एकदम बदल गया। इस आन्दोलन के बाद ही ताल्लुकेदारी जैसी प्रथा भारतीय समाज में पनपी थी।

हालांकि आजादी के बाद जमींदारी व्यवस्था को संवैधानिक तरीके से खत्म कर किया गया फिर भी किसानों का शोषण हो रहा है। इसी ताल्लुकेदारी व्यवस्था से शोषण के शिकार भारतीय किसानों का चित्रण 'बेदखल' उपन्यास में कमलाकांत त्रिपाठी ने किया है। ताल्लुकेदारी जैसी सामाजिक कुप्रथा का जिक्र लेखक ने 'बेदखल' उपन्यास में इस प्रकार किया है- "तालुकेदार कौन है ? १००० ईर्विन नाम के एक अंग्रेज ने अपनी पुस्तक में लिखा है, अवध को कुदरत ने भारत की फुलवारी बनाया था। तालुकेदारों की करतूतों से यह बरबाद हो गया। ये लोग पहले माल-गुजारी के ठेकेदार थे, बाद में तिकड़म भिड़ाकर जमीनें दबा बैठे। कुछ अंग्रेज हाकिमों की मदद और कुछ अपनी चालबाजी से जमीनों पर मालिकाना हक जमा लिए।"⁵³

किसानों को दिन-रात यह चिंता सताती रहती है कि इस बार लगान कैसे चुकाया जाए। उन्हें जमीन बेदखली के डर हमेशा बना रहता है जिसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार किया

⁵³बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 72

गया है-“हाँ भइया, आज तो सबको जल्दी होगी। खरिहग-फरवार देते समय नानी मरती है। दस-दस चक्कर लगावाते हो। समुझ अपने ढंग से काम करता रहा।

“क्या करें जब राजा-दैव से बचे तब तो तोहका दें।”

अरे भइया दैव से एक बार बच भी जाय पर रजा से कैसे बचे।”

“ठीकै कहा भइया। आज हाड़ तोड़कर बोआई कर रहे हैं, कल बेदखली हो जाय तो घरौ का ओर्द जंगरे में जाय कि नाही?” लगान पूरा भरोगे तो बेदखली काहे होगी हो। अरे कौनौ अन्त है लगान का। बस भरे जाओ। रसीद देता है कोई। रसीद दे दें तो बेदखली का डर कैसे दिखाएँ। और बेदखली का डर न रहे तो नजराना कौन देगा।”⁵⁴

‘बेदखल’ उपन्यास में अवध के किसानों के शोषण की कारुणिक गाथा कही गई है। ताल्लुकेदारी के कुचक्रों से वहां के भूव्यवस्था और उससे जुड़ी सामाजिक संरचना का शिकार किसानों की स्थिति बाबा रामचन्द जैसे बुद्धिजीवी व्यक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इसके साथ ही इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से किसान आन्दोलन को दिखाया गया है कि किस प्रकार किसान को लगान देने के साथ-साथ अपने घर के सदस्यों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने की चिंता दिन-रात लगी रहती है। खेत में पके और लहलहाते फसलों को देखकर उसके मन में कर्ज चुकाने और अन्य खर्चों को पूरा करने की एक उम्मीद बनी रहती है, जिसका वर्णन लेखक इस प्रकार करता है- “इस साल दाना साबुत और मोटा है। भगवान ने चाहा तो

⁵⁴बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 10

लगान की किस्त भरने के बाद भादों-क्वार तक मजे से गिरस्ती चल जाएगी सुमित ने जौ के ढेर को उत्साह से देखते हुए कहा और बैठकर उसे बटोरने लगा।”⁵⁵

किसान की सबसे बड़ी समस्या यह है कि खेती के खर्चों के साथ अपने परिवार के खर्चों को कैसे चलाए ? ‘बेदखल’ उपन्यास इन्हीं समस्याओं को उभारता है। यह उपन्यास भारत के औपनिवेशिक दौर के किसानों के दर्द को बयां करता है। भारत में अठारह सौ सत्तावन की बहुत बड़ी क्रांति हुई थी। उससे पहले ही किसानों ने जमींदारों और साहूकारों के खिलाफ एक बड़ा अभियान छेड़ चुके थे। ‘बेदखल’ उपन्यास में इसी अभियान या आन्दोलन का उल्लेख किया गया है। इसमें जमींदारों, काश्तकारों और ताल्लुकेदारों की बर्बरता को दिखाया गया है। किसानों के खेतों में फसल अच्छी हो या खराब लगान तो देना ही पड़ता था। उपन्यास के नायक द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि किसानों के फसलों का जायजा लेकर उनकी परिस्थिति के अनुसार लगान की उगाही की जाए।

जिसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार किया गया है –“सन अठारह सौ अड़सठ में अवध लगान कानून लागू हुआ था। अब से किसानों की दुर्दशा लगातार बढ़ती रही थी। बहुत शोर-शराबे के बाद सन छियासी में कानून में तब्दील हुई और किसानों को सात-साला कह मिला। अब कानूनन सात साल तक लगान में बढ़ोत्तरी नहीं हो सकती थी और उसके बाद भी फी रुपया एक आना ही लगान बढ़ाया जा सकता था। कुछ दिन राहत रही। लेकिन फिर वही ढाक के तीन पात। शेर के सामने बकरी बैठी हो तो उसकी क्या दशा होगी। तालुकेदारों के पास हजारों हथकंडे। लगान अदा नहीं हुआ इस पर बेदखली। काश्तकार मार गया, इस बिना पर बेदखली।

⁵⁵बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 59-60

बेदखली से बचना है तो नजराने का इंतजाम करो । कितने असामी नजराने की रकम चुकाने के लिए बेटियाँ बेचने को मजबूर हुए । और असामी के मरने पर मुर्दाफरोशी का रिवाज ।”⁵⁶

इन उपन्यासकारों ने सामन्ती व्यवस्था, महाजनी सभ्यता, जमींदारी प्रथा, जमीन चकबंदी, जमीन से बेदखली, भूमिहीन होना तथा बाजारवाद का साधारण किसानों की चकाचौंध से बदलती संस्कृति, सरकारी बैंको में कर्ज अदायगी न करने की समस्या तथा किसान आत्महत्या इन सारी समस्याओं को लेखकों ने अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्ति दी है । किसान-जीवन पर आधारित सभी उपन्यासों का चित्रण करना तो संभव नहीं है फिर भी कुछ प्रमुख उपन्यासों में अभिव्यक्त कृषकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति तथा दयनीय और भयावह स्थिति को दिखाया जा रहा है ।

3.2 ‘जमीन अपनी तो थी’ : भूमिहीन भारतीय किसान की वेदना

‘जमीन अपनी तो थी’ उपन्यास जगदीश चन्द्र द्वारा लिखित है जो राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से वर्ष 2001 में प्रकाशित हुआ है । यह उपन्यास इक्कीसवीं सदी के प्रथम वर्ष का उल्लेखनीय उपन्यास है जिसमें दलित समाज का बहुत बारीकी से चित्रण किया गया है । साथ ही साथ भूमिहीन किसानों की आकांक्षाएँ और स्वप्न को बहुत ही संजीदगी से चित्रांकित किया गया है । यह उपन्यास दलित जीवन के दयनीय दास्तान को तो व्यक्त करता ही है इसके साथ ही इसमें दलितों की जिंदगी की जद्दोजहद के बावजूद हासिल की हुई कामयाबी का दूसरा छोर भी अंकित है ।

⁵⁶बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 40

उपन्यास का नायक कालिदास है जो निम्न जाति का है। इसलिए वह अपनी जाति के अनुसार पेशे का मोची है। काम वह जरूर मोची का करता है पर उसकी सोच बहुत ऊँची है। इसमें कालिदास या काली की असफल प्रेमकथा भी कही गई है। काली गरीब और निर्धन है पर अपने कामों के प्रति अत्यंत परिश्रमी और चेतनाशील है। वह सामाजिक अपमान को झेलते हुए भी एक आशा और उम्मीद के साथ जी रहा है। वह जानता है कि हमारा समाज शिक्षित होकर ही सम्मान की जिंदगी जी पाएगा इसीलिए अपने लड़के को पढ़ा-लिखाकर आई०ए०एस० बनाता है। काली की प्रसिद्धि और मेहनत को देखकर वहां के सरदार तथा कई छोटे-बड़े जमींदार घृणा करते हैं।

जगदीश चन्द्र के पूर्व प्रकाशित ‘नरककुण्ड में बास’ और ‘धरती धन न अपना’ इन दोनों उपन्यासों के विस्तार के पीछे भारतीय दलित समाज की अवस्था-दुरवस्था को उसके विविध चरणों में विकासात्मक रूप से पकड़ने का भाव छिपा था। आजादी के पहले का घोड़ेवाहा का दलित काली ‘धरती धन न अपना’ से जब नरककुण्ड में बास के तहत सामने आता है तो युग स्थितियों का परिवर्तन ही साफ लक्षित नहीं होता, इस परिवर्तन के संबंधगत और भावगत रूपाकार भी पकड़ में आने लगते हैं। स्मिता सिन्हा का ‘जमीन अपनी तो थी’ उपन्यास के सन्दर्भ में कहना है कि-“जमीन अपनी तो थी’ जातीय संघर्ष से उपजी कहानी है। यह कहानी तब शुरू होती है जब पिछड़ा वर्ग अपनी मान मर्यादा के प्रति सचेत और अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति जागरूक हुआ। यह कहानी है नंद सिंह और काली की... जो जातिपाँति की रूढ़ियों और अमानवीय सामंतवाद का शिकार हो अपने ही गाँव से विस्थापित कर दिए गए और अपनी ही जमीन के लिए जीवन पर्यंत संघर्षरत रहे।”⁵⁷

57 <http://aksharchhaya.blogspot.com/2020/08/blog-post.htm>, 17 march 2017

आजाद भारत में अब दलित वर्ग के उभार के अनेक सकारात्मक पहलुओं के साथ-साथ कुछ ऐसे पहलू भी उभरने शुरू हो गए थे, जिनमें प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के बीज छिपे थे। जगदीश जी अक्सर यह बात दोहराते थे कि नरककुण्ड में बास के आखिरी खण्डों में काली अपने साथी मजदूरों का छोटा-मोटा लीडर जरूर बनता है पर मजदूरों से एलिमिनेट हो रहा है क्योंकि वे उसे मालिकों का पिट्टू समझते हैं। जगदीश जी इस गहरी सामाजिक प्रक्रिया को और ब्योरे व तफसील के साथ समझना चाह रहे थे जिसकी परिणति अंततः ‘जमीन अपनी तो थी’ के रूप में हुई। इस उपन्यास का काली साहसी है, निडर है, क्रोध करने में सक्षम है, अपने काम और अपनी परंपरा पर गर्व करता है और आखिर में अपने बेटे के रूप में अपनी परंपरा को बदलते और एक नितान्त भिन्न राह पकड़ते देखता है।

उपन्यास के एक स्थान पर यह जिक्र आता है कि अब दलितों, मजदूरों और भूमिहीनों को भी सरकार जमीन वितरण करेगी। यह सुनकर दलित बस्तियों में आशा की एक उम्मीद जगती है कि वे भी अब खेती-बाड़ी करेंगे। उनके दिन भी अब बहुरेंगे। जैसे ही सरकार द्वारा यह अधिसूचना जारी होती है कि सभी को जमीने दी जाएगी वैसे ही पूरी सोसाइटी में खलबली मच जाती है। लाला जी जैसे साहूकार और जमींदार इन भूमिहीनों के प्रति अमानवीय शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसका जिक्र लेखक इस प्रकार करता है- “आज का पूरा अखबार इन्हीं खबरों से भरा पड़ा है कि सरकार ने अधर्मियों, मजहबियों और ऐसी जाति को खेती के लिए जमीन देने के बारे में कानून बना दिया है। दिल्ली से मंजूरी मिलते ही लागू हो जाएगा।

भूमि सुधार कानून में यह कहा गया था कि गाँव में जिनके पास औसत से ज्यादा जमीनें हैं उसे गरीबों में बाँट दी जाएगी और घर के प्रत्येक सदस्य को पांच एकड़ दिया जायेगा। उपन्यास का नायक काशी मन ही मन सोचने लगा कि चलो सरकार कम से कम हम गरीबों पर भी ध्यान दे

रही है। पर शायद उसके लिए यह दिन में स्वप्न देखने जैसा था। जमींदारों और सरदारों के अमानवीय व्यवहार को देखकर सोचता है कि-“हमारे प्रति मन में घृणा और विरोध क्यों है? भूमि सुधार की खबर पर वे इतने नाराज क्यों हैं? तिलमिलाए क्यों हैं? सरकार हरिजनों को जमीन देगी तो उनका तो कोई नुकसान नहीं है। वह फफक उठा चाचा हमें खेती के लिए जमीन देने का ऐलान सरकार ने किया है मरोड़ अड्डे के दुकानदारों के पेट में उठ रहा है।”⁵⁸

भूमिहीन परन्तु परिश्रमी तबका अपने आप को समाज में बिना रीढ़ का समझने लगा है। जमीन मिलने की उम्मीद को देखकर वह कहता है- “चाचा लगता है हमारे शरीर में भी रीढ़ की हड्डी जुड़ रही है।”⁵⁹ भूमि सुधार कानून आने से पहले सरकारी दफ्तर में खेलबाजी होती है और अधिकतर जमींदारों को पहले ही मालूम हो जाता है कि ऐसा होने वाला है वह सजग हो जाते हैं और वे अपनी जमीन अपने सारे नाते-रिश्तेदारों के नाम करवा देते हैं। ताकि उनकी जमीनें उन्हीं के पास रहे। पहली बात तो सरकार द्वारा भूमिहीनों के जीवन सुधार के लिए चलाई योजनाओं का ज्यादा से ज्यादा फायदा बिचौलिए ही उठाते हैं। जमीनी स्तर के लोग इसका लाभ बहुत कम ही उठा पाते हैं। सरकार द्वारा गरीबों के लिए चलाये जा रहे ‘राशन वितरण योजना’ की सच्चाई को इस उपन्यास में बहुत ही बारीकी से दिखाया गया है कि किस प्रकार साहूकार कोरे कागज पर गरीबों के अंगूठे का निशान लगवाकर उनके साथ धोखा कर रहा है।

शिक्षा देश की प्रगति और विकास में जड़ी-बूटी के समान है। जिसके अभाव में समाज या देश एकांगी-सा हो जाता है। शिक्षित व्यक्ति ही समाज में सम्मानित होता है वही देश को उच्चतम ऊँचाई पर पहुँचा सकते हैं। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है कि-‘विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते।’ मनुष्य को जीवन निर्वाह के लिए रोटी,

⁵⁸जमीन अपनी तो थी, जगदीश चंद्र, पृष्ठ संख्या : 137

⁵⁹जमीन अपनी तो थी, जगदीश चन्द्र, पृष्ठ संख्या : 49

कपड़ा और मकान के साथ-साथ शिक्षा की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो गई है। 'जमीन अपनी तो थी' उपन्यास में शुरुआती शिक्षा या प्राथमिक शिक्षा खोखलेपन को उजागर करता है। भारत में प्राथमिक शिक्षा का स्तर बहुत गिरा हुआ है। सच्चाई यह है कि गरीबों किसानों और मजदूरों के ही बच्चे सरकारी विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। कहीं-कहीं तो इन विद्यालयों की यह स्थिति है कि यह मात्र कागजों या फाइलों पर ही चलते हैं।

बच्चों की उपस्थिति और अनुपस्थिति हेडमास्टर की कृपा पर निर्भर रहती है। यह उपन्यास इन्हीं सच्चाइयों को बयां करता है। उपन्यास का एक पात्र पृतपाल सिंह कहता है-“हमारे बच्चे तो इस स्कूल में पढ़ते नहीं। बाकी रहे अधर्मियों और मजहबियों के बच्चे, वे डंगर चराने, खेतों में काम करने और गलियों में डंडे बजाने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। तू स्कूल को गाँव में किसके लिए रखना चाहता है। पृतपाल सिंह ने तुरंत उत्तर नहीं दिया। वह तरलोक सिंह की ओर देखता रहा। चाचा जी आपको ज्यादा पता होना चाहिए। आप गाँव के सरपंच है। काका सरपंच तो तूने ही बनवाया है। चाचा जी स्कूल का गाँव में रहना बहुत जरूरी है। पृतपाल सिंह गंभीर हो गया। पहला कारण मास्टर दलीपसिंह और बीवी तृप्ता का तबादला हो जाएगा। गाँव के बच्चों को नहीं पढ़ाते, और बीसियों काम सँवारते हैं। दूसरा कि इसे मॉडल ग्राम बनवाना है।”⁶⁰

3.3 'हिडिम्ब' : किसानों की जमीनों पर पूँजीपतियों की गिद्ध दृष्टि

'हिडिम्ब' उपन्यास एस० आर० हरनोट द्वारा लिखित वर्ष 2004 आधार प्रकाशन, पंचकुला से प्रकाशित हुआ, जिसमें किसान-जीवनके जमीन संबंधित संघर्षों को दिखाया गया है। 'हिडिम्ब' उपन्यास के भौगोलिक संरचना का जो ताना-बाना बुना गया है वह हिमांचल प्रदेश के घाटी का वर्णन किया गया है। जिसमें हरे-भरे देवदारु के लम्बे और सुडौल पेड़ जो दूर से एकदम

⁶⁰जमीन अपनी तो थी, जगदीश चन्द्र, पृष्ठ संख्या : 104

शंक्वाकार दिखाई दे रहे हैं। एक छोर पर नदियाँ और झरने के नियमित चलते रहने की सुरीली आवाज साथ ही साथ पास ही खेत खलिहान का ऐसा दृश्य देखते ही सभी का मन अनायास ही ठहर जाता था। जिसका जिक्र हरनोट इस प्रकार करते हैं-“सामने की घाटियां देवदार के घने पेड़ों से सजी-लदी रहती। दूर से लगता मानो हरे रंग का मलमली कालीन बिछाया गया हो। उसके बीच कहीं-कहीं नंगी पहाड़ियां भी दिखाई देती थीं। कुछ में घास उगी रहती थी। इन्हीं की तराईयों में दूर-दूर छोटे-छोटे गाँव बसे थे। वे दूर से टापुओं की तरह दिखाई देते थे।”⁶¹ इस गाँव में शावणू नड़ जाति का एक निम्नवर्गीय किसान है जो खेती बाड़ी करके अपने परिवार को पालता है।

इस उपन्यास में किसानों की मुख्य समस्या मंत्री जैसे पूँजीपति भेडियों से अपनी जमीन को बचाए रखने की है। किसानों की जमीन पर पूँजीपतियों की गिद्ध दृष्टि लगी रहती है। शावणू जो उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है की उपजाऊ और समतल जमीन को देखकर दौरे में आए मंत्री को भा गई। वह मन ही मन शावणू की जमीन को हथियाने का षड्यंत्र रचाने लगा और उसी समय अपने रंगरूटों को गाँव भेजकर उस जमीन के मालिक को फौरन बुलाने का आदेश दिया। किसी किसान के घर सरकारी लोग जैसे- पटवारी, लेखपाल तथा तहसीलदार आए तो ऐसे भयभीत होता है जैसे कोई बड़ी मुसीबत आ गई है क्योंकि उसे पता है ये लोग तभी आते हैं जब लगान वसूली या ऋण की उगाही करना होता है। मंत्री किसी भी हालत में शावणू की जमीन हड़पना चाहता है।

भारत जैसे देश में यह मना जाता है कि जमीन उसकी माँ के समान होती है। उसे बेचना यानी अपनी माँ और अपना मान सम्मान सब कुछ बेच देने के समान है। मंत्री द्वारा शावणू के

⁶¹हिडिम्ब, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ संख्या : 11

जमीन को बेचने के बारे में कहता है तो शावणू का हृदय कांप जाता है। वह मन ही मन डर रहा है। वह सोचने लगता है कि मैं अपनी माँ को कैसे बेच सकता हूँ? काफी हिम्मत जुटाने के बाद वह जमीन को बेचने से मना कर देता है। जिसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार किया गया है- “माई बाप ! यह जमीन तो मेरे पुरखों की है। बाप दादा की है। उन्हें बी ये देओ किरपा से परापत हुई थी। आज हमारी दोथ-सांझ है। रोजी-रोटी है सरकार। मेरी माँ है। मैं अपनी माए को कैसे बेच सकता हूँ। मेरे को नी बेचणी है जमीन। नहीं बेचणी है।”⁶²

नवउदारवाद और बाजारवाद के दौर में कृषि क्षेत्र में भी बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई दे रहा है। निजीकरण के चलते किसानों की जमीनों पर पूँजीपतियों का एकाधिपत्य दिखाई दे रहा है। जहां एक समय जिन खेतों में अच्छी फसलें उगायी जाती थीं। शाक-सब्जी और अनाज तथा अन्य नगदी फसलों की खेती की जाती थी वहीं आज के समय में टूरिस्टों की सुविधा के लिए नए-नए और आलीशान होटल खोले हा रहे हैं। अच्छे-अच्छे और जालीनुमा बंगलों का निर्माण कर दिया गया है। जिसका सबसे बड़ा कारण किसानी जीवन पर भूमंडलीकरण का बढ़ता हुआ प्रभाव है। जिसका सीधा प्रभाव हमारे दैनिक जीवन पर पड़ा। फसलों के उत्पादन कम होने से किसान पूरी तरह बाजार पर निर्भर होता गया। जिसका उल्लेख हरनोट जी इस प्रकार करते हैं- “मैंने सुना है शोभा जे म्यारे लोगों ने बहुत जमीनें बेच दीं। म्यारे लोग सोचते नी कि धरती तो मेरी माए है। मैं तो देखता हूँ कि म्यारे छोकरे-छल्ले तो दारू-भांग में ही मस्त हैं। इन परदेशियों के गुलाम ही बण गए हैं। मालिक नोकर होर नोकर मालिक। कितना बुरा समा आ गया सोभा।”⁶³

यह उपन्यास किसान-जीवन की उन तमाम परेशानियों को बयां करता है जिस परेशानी से हिमांचल प्रदेश के किसान लड़ रहे हैं। इस क्षेत्र के किसानों की सबसे बड़ी समस्या वहां के हरे-

⁶²हिडिम्ब, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ संख्या : 22

⁶³हिडिम्ब, एस. आर. हरनोट, पृष्ठ संख्या : 68

भरे जंगल और नदियाँ हैं। कुल मिलाकर वहां का प्राकृतिक सौन्दर्य ही उन किसानों के दुःख का कारण बनता है क्योंकि मंत्री जैसे अधिकांश पूँजीपति वहीं अपना आशियाना बनाना चाहते हैं। इसी के बहाने उस क्षेत्र में व्यापार करना चाहता है। नवउदारवाद के इस दौर में देश में विकास के नाम पर जो प्रकृति का दोहन हो रहा है वह जग जाहिर है।

बड़े-बड़े उद्योगपति पूँजीवादी कॉरपोरेट कम्पनियाँ ने कई स्थानों पर अपना कारखाना खोला। केवल हिमाचल प्रदेश ही नहीं झारखण्ड, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे भारत के कई राज्यों में धीरे-धीरे अपना वर्चस्व स्थापित किए हैं। भूमंडलीकरण के भागमभाग जीवन में कॉरपोरेट जगत के उदय होने से हिमाचल प्रदेश की सुन्दर घाटी पर अपना ठिकाना बनाया तथा वहां के किसानों की जमीनों को जबरदस्ती खरीदकर एक टूरिस्ट प्लेस बनाने का प्रयास करते हैं और कामयाब भी होते हैं।

3.4 ‘हलफनामे’ : किसानों का मुआवजा और प्रशासन का खेल

‘हलफनामे’ उपन्यास राजू शर्मा द्वारा लिखित किसान-जीवनपर आधारित है। जो वर्ष 2007 में राधाकृष्ण पेपर बैक प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित है। पिछले कुछ दशकों से किसान आत्महत्या भारतीय समाज और सरकार के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। वर्तमान समय में सरकार की सबसे बड़ी चुनौती किसान आत्महत्या को रोकने की है। देश में विकास में नाम पर प्राकृतिक संसाधनों के लगातार हो रहे दोहन से पर्यावरण असंतुलित हो रहा है तथा दिन प्रतिदिन जल स्तर नीचे होता जा रहा है। जिसका परिणाम यह हो रहा है कि मौसम-चक्र बुरी तरह से प्रभावित होता जा रहा है। नतीजन कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि हो रही है। जिसका सीधा प्रभाव किसानों की आत्महत्या पर पड़ रहा है। राजू शर्मा का ‘हलफनामे’ उपन्यास किसान

आत्महत्या को केंद्र में रखकर पूरे विकास के मॉडल तथा पूँजी के क्रूर गठजोड़ की पड़ताल करता है।

हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं कि हमारे सभी स्रोतों और प्राकृतिक संसाधनों पर कॉरपोरेट घरानों का दबदबा है। हमारी मुख्य उत्पादक शक्ति किसान-वर्ग को उसकी मिट्टी से मिटाया जा रहा है। और बड़े-बड़े कॉरपोरेट कंपनियों को खुली छूट दी जा रही है। साम्राज्यवादी ताकतें हम पर हावी होती जा रही हैं। इन्हीं साम्राज्यवादी ताकतों के मनमौजी आर्थिक नीतियों के कारण किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो रहा है। किसान आत्महत्या के सन्दर्भ में उपन्यास का एक पात्र सुदर्शन पत्रकार पी. साईनाथ का हवाला देते हुए कहता है –“किसान जब आत्महत्या करता है तो वह जिंदगी और मौत के बीच अवसादपूर्ण चुनाव नहीं है, बल्कि जिंदगी के लिए संघर्ष की आजादी का लोप है। मौत का चुनाव किसान नहीं करता बल्कि तंत्र उसका जीने का अधिकार छीन लेता है ...।”⁶⁴ मतलब साफ है कि किसानों द्वारा की गई आत्महत्या, आत्महत्या नहीं है बल्कि यह शासन तंत्र द्वारा की गई हत्या है। जिसका शिकार किसान लगातार हो रहा है।

फसलों की बुआई से लेकर पानी जैसी तमाम समस्याएँ तथा तैयार हुई फसल का उचित दाम न मिलना और किसानों द्वारा लिया गया कर्ज की अदायगी न कर पाना ये सब किसान आत्महत्या के कारण हैं। किसानों की बुनियादी समस्या सिंचाई की असुविधा तथा आत्महत्या जैसी सोचनीय समस्या को राजू शर्मा का ‘हलफनामे’ उपन्यास परत-दर-परत उकेरता है। मकई राम के पिता स्वामीराम आंध्रप्रदेश राज्य के एक छोटे से गाँव ‘सवेरा’ के छोटी जोत का किसान है।

⁶⁴हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 50

किसी समय स्वामीराम प्रसाद द्वारा उत्पादित फसलों का मंडियों में गुणगान किया गया था। वह पिछले दो बार बेहतरीन काश्तकार का इनाम पाया था। लेकिन सूखे की वजह से बोरवेल लगाने के लिए अन्य किसानों की तरह स्वामीराम को भी वहां के प्रमुख लाला से पैसा कर्ज लेना पड़ता है। उसके गाँव को डार्क एरिया घोषित किया गया था इसलिए बोरवेल के लिए सरकार से कर्ज मिलना नामुमकिन है।

इस अवसर पर महकमे से मिलीभगत करके बोरिंग का धंधा शुरू कर दिया। इस पर छोटे किसान और भी कर्ज से डूब गए। लाला अपने नीति में सफल हुआ और मालामाल हो गया। इसका जिक्र उपन्यास में इस प्रकार है-“बड़े-बुढ़ौने ऐसी दिक्कत का सामना पहले नहीं किया था कि आसमान से पानी बरसे पर जरूरत के लिए किसान तरसे। जिसके पास साधन था वह पानी का धंधा करने लगे। खरीद-फरोख्त खूब होने लगी। ... पानी को लेकर घरों में आपस में संग्राम छिड़े थे, एक विरानगी छा गई मेहनतकशी पर छोटी किसानी और मजदूरी पर। सबकुछ धोखा सा लगने लगा। छोटे काश्तकारों के बीच छोटे विवादों के लिए बड़ी लड़ाईयां होने लगी मुकदमेबाजी बढ़ गई...। सरकारी अमीन सरकार के कर्ज की अदायगी के अलावा लाला के कर्जों का मोलभाव भी करने लगा खेत बिकने लगे...”⁶⁵ खेत के खर्च के साथ साथ परिवार का भी खर्च बढ़ता जाता है। और अंत में स्वामीराम कर्ज की अदायगी न कर पाने के कारण रोजमर्रा की जिंदगी से नहीं लड़ पाता, निराश और हताश होकर आत्महत्या कर लेता है।

इसके बाद उसके परिवार वालों का क्या हस्र होता है इसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार किया गया है-“यह एक नई सामाजिक किस्म पैदा की है हमारे देश ने विधवाएं जिनके किसान पतियों ने खुदकुशी कर ली। जिस तरह एकाएक उसकी दुनिया टूटती है, उसका अंदाजा

⁶⁵हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 130

हम-तुम नहीं लगा सकते । कोई मर्द नहीं समझ सकता । आदमी का न रहना तो एक दुःख है, औरत पर फंदा चारों तरफ से कसता है । खाना, बच्चों की परवरिश खेत की रखवाली एक तरफ, लेनदार दरवाजे पर तकाजा करता है । खेत से या आबरू से । वह किसे बचाए या क्या बचाए ? पता है सरकारी बीमा कम्पनियाँ अनपढ़ किसान औरतों का बीमा नहीं करतीं । उनके अधिकारी का कहना है । ऐसी औरतें इतनी असुरक्षित हैं कि उनका बीमा करना कंपनी के लिए खुदकुशी करने के समान है !”⁶⁶

कथाकार संजीव के समान राजू शर्मा ने भी ‘हलफनामे’ उपन्यास में कपास की खेती करने वाले किसानों को अपने उपन्यास का केंद्र बनाते हैं । जी. एम. कपास की खेती ने किसानों की जिंदगी और नरक बना दी है । किसान आत्महत्या का सबसे पहले उल्लेख इन्हीं कपास की खेती करने वाले किसानों के सन्दर्भ में मिलता है । सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि अपने पिता की मृत्यु पर मुआवजा के लिए मकई राम को एक दो नहीं बल्कि कई हलफनामों से गुजरना पड़ता है और उसमें भी कार्यालय के नौकरशाहों की असंवेदनशीलता ऐसी की अचानक एक दिन तहसीलदार कहता है कि तुमने जो उन्नीस हलफनामे दिए थे वे सब गायब हो गए हैं और मुआवजा चाहिए तो उसके बदले सभी अफसरों के पैट गरम करना पड़ेगा ।

3.5 ‘रेहन पर रघू’ : गंवई संस्कृति का बदलता स्वरूप और किसान का जीवन

ग्रामीण और कृषक जीवन पर आधारित अगला उपन्यास काशीनाथ सिंह का ‘रेहन पर रघू’ है । यह उपन्यास नवउदारवादी संस्कृति के परिणाम स्वरूप मध्यवर्गीय परिवार के बदलते संबंधों की गाथा है । इसमें व्यक्ति के साथ ही समाज के बदलते हुए स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई है । एक मध्यवर्गीय किसान किसी तरह खेती से अपने परिवार का भरण-पोषण करते हुए बच्चों

⁶⁶हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 52

को शिक्षित करता है। यद्यपि उपन्यास का नायक रघुनाथ डिग्री कॉलेज का अध्यापक हैं लेकिन अध्यापक से पहले रघुनाथ जी एक किसान हैं जिन्हें अपने बच्चों की अच्छी परवरिश के लिए, उनकी पढ़ाई-लिखाई के लिए बैंकों से कर्ज लेना पड़ता है। यहाँ तक कि अपनी जमीन को भी रेहन पर रखना पड़ता है।

इस उपन्यास में भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का पूरा का पूरा मॉडल पात्रों में दिखाई पड़ता है। चौथीराम यादव अपने एक लेख में लिखते हैं-“कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता के जिस खतरे की ओर इशारा किया था। वह दोनों ही उपन्यासों में और भी खतरनाक रूप से मौजूद है। भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और उपभोक्ता केन्द्रित बाजारवाद पर आधारित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने यूरोपीय समाज को बहुत कुछ तोड़ा जरूर था पर पूरी तरह से नहीं... वैश्वीकरण मंदी का दौर सबसे घातक दुष्परिणाम है जिससे दुनिया भर के देशों की अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिया है। भारतीय सन्दर्भ में देखा जाय तो आधुनिकीकरण ने शहर, गाँवों दोनों का चेहरा बदल दिया है।”⁶⁷

काशीनाथ ने इस उपन्यास में दो संस्कृतियों की टकराहट को चित्रित किया है। एक तरफ रघुनाथ अपनी कृषकीय परंपरा को बचाये रखना चाहते हैं और दूसरी तरफ उनके सभी बच्चे आधुनिकता की चकाचौंध में आकर उपभोक्तावादी संस्कृति को धड़ल्ले से अपना रहे हैं। रघुनाथ की स्थिति ऐसी हो गई है कि वह अपने बड़े बेटे संजय के प्रेम विवाह को स्वीकार नहीं करता फिर भी मन में पुत्रप्रेम बना है। बार-बार यही सोचता है कि मैंने नाहक ही इसके पीछे खेत को रेहन पर रख दिया, कोई फायदा नहीं हुआ सिवाय अपमान के। “इसी दिन के लिए उन्होंने

⁶⁷चौपाल, पत्रिका, सं. कमलेश्वर प्रसाद, अंक 1, पृष्ठ संख्या : 31

पाल पोस कर बड़ा किया था, पढ़ाया-लिखाया था, कर्ज लिए थे, खेत रेहन रखे थे। और दुनिया भर की तवालतें सही थी।”⁶⁸

देखा जाय तो आज भी सामंती और पूँजीवादी संस्कृति की टकराहट में किसानों की संस्कृति पिस रही है। इसका इतना बड़ा दुष्परिणाम यही है कि वर्तमान समय में किसान लाखों की संख्या में आत्महत्या कर रहे हैं। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि किस प्रकार गंवई संस्कृति का शहरीकरण हो रहा है। यह बड़ी विडंबना है कि सामंती-समाज व्यवस्था में शारीरिक श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा है।

3.6 ‘आखिरी छलाँग’ : कर्ज की मर्ज से परेशान आत्महत्या करता किसान

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है किन्तु आज वह एक आर्थिक प्राणी बन गया है। वह इसलिए कि जब तक किसी मनुष्य की आर्थिक दशा और दिशा अच्छी नहीं रहेगी तब तक उसकी सामाजिक स्थिति कभी भी अच्छी नहीं रहेगी। किसी भी देश की चतुर्दिक स्थिति तभी अच्छी होती है जब उस देश की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ हो। मनुष्य अपना जीवन समाप्त करने की बात तभी करता है जब वह परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते निराश और हताश हो जाता है। हाँ इसकी वजहें अलग-अलग हो सकती हैं।

‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास शिवमूर्ति का इसी आर्थिक परिस्थितियों की दीनता का जीवन्त दस्तावेज है। इसमें किसान-जीवन के संघर्षों की त्रासदी को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। इसकी कथावस्तु का आधार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ग्रामांचल है। इसका नायक पहलवान एक किसान है। उसके सामने विरासत में मिली तथा नई विकास नीतियों के कारण

⁶⁸रेहन पर रघू काशीनाथ सिंह, पृष्ठ संख्या : 24

निर्मित अनेक समस्याएं हैं। आज किसानों के समक्ष गरीबी, अशिक्षा, भुखमरी एवं आत्महत्या जैसी अनेक समस्याएं हैं।

शिवमूर्ति गाँव और किसानों के जीवन के कथाकार हैं। ये गाँव के वातावरण में जन्मे, पले बढ़े, गाँव की मिट्टी से जुड़े रहे। इसीलिए इनके कथा साहित्य में गाँव और गाँव में रहने वाले किसानों के जीवन का चित्रण स्वाभाविक रूप से आया है। किसान-जीवन को अपनी रचना का विषय उन्होंने किसी सामाजिक प्रवृत्ति या साहित्यिक आकांक्षाओं के तहत नहीं अपनाया है। वे ग्रामीण एवं किसान-जीवन के सहज रचनाकार हैं।

उपन्यासकार शिवमूर्ति ने इस उपन्यास में किसानों की मूलभूत आवश्यकताएँ जैसे- खाद, पानी, बिजली की समस्या, कर्ज की समस्या प्राकृतिक समस्या, फसलों के उचित दाम न मिलने की समस्या तथा किसान आत्महत्या की समस्या को बहुत ही बारीकी से दिखाया है। किसानों के दुःख-दर्द, खेती-बाड़ी, बुआई, जोताई, छोटी जोत के किसानों को अधिक पैदावार के लिए महँगे खाद, बीज, कीटनाशक, ट्यूबवेल, ट्रैक्टर, ट्राली आदि के लिए बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं के कर्ज के मकड़जाल में फँसकर हताश और निराश होकर किसान आत्महत्या करने पर विवश है।

सीमांत किसान को नवउदारवादी अर्थव्यवस्था में जिन सरकारी योजनाओं ने प्रभावित कर उन्हें पूरी तरह से तबाह किया है इसी का मार्मिक चित्रण उपन्यास में किया गया है। शिवमूर्ति ने 'आखिरी छलाँग' उपन्यास के नायक पहलवान के माध्यम से सम्पूर्ण भारत के किसानों की दारुण स्थिति को दिखाने का प्रयास किया गया है। वर्तमान समय में किसानों के शोषण में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। अगर प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में जमींदारी प्रथा और सामंती प्रथा

के द्वारा किसानों के शोषण का चित्रण किया है तो शिवमूर्ति के उपन्यास ‘आखिरी छलाँग’ में बैंक सोसाइटी तथा सरकारी योजनाओं के द्वारा किसानों के शोषण का चित्रण किया गया है।

‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास की मूल समस्या किसानों की आत्महत्या को लेकर है। लेखक किसानों की समस्या को वर्तमान सन्दर्भ में जोड़कर दिखाने की कोशिश की है। उपन्यास का नायक पहलवान अपने सपनों में उन तमाम किसानों के संघर्ष को देखता है और उसके माध्यम से अपने आप को खोजने की कोशिश करता है। इस प्रकार लेखक ने किसानों की तात्कालिक समस्याओं को बहुत ही संजीदगी और बारीकी से प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में दलित, किसान और मजदूर वर्ग को देखा जा सकता है।

किसान को खेती-बाड़ी के खर्च के अतिरिक्त पारिवारिक खर्चों की चिंता लगातार बनी रहती है जिसका उल्लेख शिवमूर्ति इस प्रकार करते हैं –“वे मन ही मन तत्काल खोपड़ी पर सवार खर्चों का हिसाब लगाने लगे। ट्यूबवेल का बिल सवा चार सौ रुपये। इंजीनियरिंग पढ़ रहे बेटे का मासिक खर्च डेढ़ हजार रुपये। खाद के लिए दो हजार रुपये। बैल का खुर ठीक न हुआ तो ट्रैक्टर से खेत की जोताई के लिए हजार-बारह सौ रुपये मोटा-मोटी पांच हजार रुपये। धान का भाव इस समय गिरकर पाँच सौ रुपये कुन्टल हो गया है। यही दो महीने रोका जा सके तो छः पौने छः सौ का रेट मिल सकता है लेकिन लगता है कि रोकना नहीं हो पाएगा।”⁶⁹

उपन्यास का नायक पहलवान सरकारी सोसाइटी से कर्ज लेता है। कर्ज समय से न अदा करने के कारण कर्ज वसूली करने वाला अमीन पहलवान को भरे बाजार में बैठा लेता है जो पहलवान के लिए अपमान की बात थी। ताल्लुकेदार, जमींदार और सेठ साहूकारों तथा महाजनों द्वारा किसानों का शोषण होता रहा है। किसानों से समय पर कर्ज या लगान न मिलने के कारण

⁶⁹आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय (पत्रिका), जनवरी, 2008, पृष्ठ संख्या : 79

उसे जमीन से बेदखल कर देना । तथा तरह-तरह की कष्टदायक यातनाएं देना इन जमींदारों के लिए आम बात हो गई थी ।

जिसका जिक्र शिवमूर्ति इस प्रकार करते हैं-“बकायेदारों को जमीन पर बैठाने का उद्देश्य उसे उसकी हीन दशा महसूस कराना रहता होगा । जमीनदारी के जमाने में तो उसे धूप में मुर्गा बनाया जाता था । कोड़े से पिटवाया जाता था । बकायेदारों को कुर्सी पर बैठाना जबकि खुद अमीन को मामूली-सी चारपाई पर बैठकर अपनी अमीनगीरी की इज्जत बचानी पड़ रही हो । उस पर ऐसी लगने वाली बात ! बर्दास्त से बाहर है ।”⁷⁰

किसान मजबूर है तो सिर्फ रुपयों से वह कठिन से कठिन मेहनत और परिश्रम करने में कभी कोताही नहीं करता । कर्ज माफ़ी और बकायेदारों की उगाही के सन्दर्भ में सच्चाई यह है कि गरीब, मजदूर और किसानों को ही परेशान करती है जबकि बड़ी-बड़ी मीलों, फैक्ट्रियों पर सिर्फ बिजली का ही लाखों का बकाया है, उसे वसूलने की सरकारी अफसरों की हिम्मत नहीं है सारा नियम कानून सिर्फ किसानों मजदूरों के लिए ही है । भारतीय किसानों की स्थिति इतनी बदतर हो गई है कि इसका अंदाजा पहलवान के बातों से लगाया जा सकता है –“किसान के घर में जन्म लेकर न पहले कोई सुखी रहा है न आगे कोई रहेगा । इन्हीं परिस्थितियों में जिंदगी की नाव खेना है ।”⁷¹

‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में शिवमूर्ति ने किसान आत्महत्या का जिक्र करते हुए इन समस्याओं से कैसे निपटा जाय ? इसके लिए वे किसान को संगठित होकर लड़ने की बात कहते हैं । किसानों को फसलों का उचित दाम नहीं मिलता । जब किसान के घर में प्याज, टमाटर जैसी

⁷⁰ आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय (पत्रिका), जनवरी, 2008, पृष्ठ संख्या : 82

⁷¹ आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय (पत्रिका) जनवरी, 2008 पृष्ठ संख्या : 83

शाक-सब्जी उत्पादित होता है तो मंडियों में उसकी मांग न के बराबर हो जाती है। इन सब का दाम इतना कम हो जाता है कि किसान का किराया भाड़ा भी नहीं निकल पाता है। कभी-कभी तो स्थिति यह आ जाती है कि आलू या टमाटर को मंडियों के बाहर सड़कों के किनारे या किसी गड्ढे में फेक कर जाना पड़ता है। ऐसे स्थिति में किसान को फसलों की लागत तक नहीं निकलती है।

जिसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार किया गया है-“नहीं लड़ेगा तो मरेगा, मर तो रहा ही है और जल्दी मरेगा। देश-दुनिया के नक्शे से गायब हो जायेगा। कोई रोक नहीं सकता। बहुत सारे मुद्दे हैं जिस पर लड़ना जरूरी है। जैसे सरकार की नीतियाँ। गेहूँ पैदा करने में लागत बारह रुपये किलो आती है लेकिन गेहूँ बिकता है सात रुपये किलो, आलू और प्याज किसान के घर पैदा होता है तो दो रुपये किलो बिकने लगता है। दो महीने बाद जैसे किसान के घर से बाहर निकला, दस रुपये किलो हो जाता है। पिछले पैंतीस साल में जमीन सौ गुनी महँगी हो गयी। सोना पचहत्तर गुना, डीजल पचास गुना, जबकि गेहूँ सिर्फ सात गुना। सारी मन्दी किसानों के लिए ही है। पिछले दिनों बजट की खबर अखबार में छपी थी। उसमें थीं कार, कम्प्यूटर, कालीन और कोकोकोला और जो चीजे महँगी की गई थीं उसमें बीड़ी, माचिस, चाय-बिस्कुट, पोस्टकार्ड। बड़े पूँजीपतियों के कारखाने में बनने वाली और अमीर लोगों के उपयोग में आने वाली चीजें सस्ती हो गयीं और कुटीर उद्योग में बनने वाली या गरीब के काम में आने वाली चीजें महँगी। जिस सरकार की नियति ऐसे गरीब विरोधी, किसान विरोधी हो, उसके खिलाफ गरीब नहीं खड़ा होगा, किसान नहीं खड़ा होगा तो कौन खड़ा होगा ?”⁷²

⁷²आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय (पत्रिका) जनवरी 2008 पृष्ठ संख्या : 90

घाटे की खेती से किसानों का खेती के प्रति लगाव धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। एक किसान खेती करने की अपेक्षा मजदूरी करना अच्छा समझता है। अगर इसी तरह लोग खेती छोड़ते रहे तो आने वाले दिनों में किसान नाम की नस्ल ही गायब हो जाएगी। जिसका संकेत शिवमूर्ति इस प्रकार करते हैं-“जगना तो पड़ेगा। लड़ना तो पड़ेगा। जिन्दा रहना है तो अपने मारने वालों के सामने डटना तो पड़ेगा। वरना जैसे हजारों जातियाँ, जन-जातियाँ, पशु-पक्षियों की प्रजातियाँ इस दुनिया से उच्छिन्न हो गईं वैसे ही किसान नाम की प्रजाति भी विलुप्त हो जाएगी।”⁷³ कथाकार शिवमूर्ति किसानों को संगठित होकर समस्याओं से लड़ने की ओर इशारा करते हैं। उनका मनाना है कि जब तक सभी किसान संगठित नहीं होंगे तब तक किसी-न-किसी रूप में किसानों का शोषण होता रहेगा।

3.7 ‘अधबुनी रस्सी: एक परिकथा’: चकबंदी अधिकारीयों का षडयंत्र

सच्चिदानंद चतुर्वेदी द्वारा लिखित उपन्यास ‘अधबुनी रस्सी एक परिकथा’ आँचलिक उपन्यास की एक ऐसी कड़ी है जिसमें ग्रामीण परिवेश, ग्राम कथाओं तथा किसान-जीवन का चित्रण बखूबी किया गया है। वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इसमें नयेपन को निखारा गया है। उपन्यास की कथावस्तु का ताना-बाना ‘डमरुआ’ नामक गाँव को लेकर बुना गया है। इस उपन्यास की कथावस्तु दो खण्डों में चलती है। जहाँ एक तरफ ब्राह्मणों का टोला है तो वहीं दूसरी तरफ मजदूर और किसानों का। जिसमें किसान की जमीन से संबंधित ‘चकबंदी’ व्यवस्था को लेकर चित्रांकन किया गया है। चकबंदी व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सरकार द्वारा किसानों को लाभ मिल सके। जिसमें यह माना जाता है कि एक किसान के पास गाँव के चारों दिशाओं में थोड़ी-थोड़ी जमीनें हैं तो उसे आने-जाने में काफी समय लगता है जिसकी वजह से

⁷³आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय (पत्रिका) जनवरी 2008 पृष्ठ संख्या : 91

सही समय में खेती नहीं होती और इसके अलावा आने-जाने में किसानों का श्रम बेकार चला जाता है। इस विचार के साथ कि किसानों का श्रम बेकार न जाय। सरकार ने चकबंदी जैसी व्यवस्था को डमरुआ गाँव में लागू करने का आदेश देती है। यानी इस उद्देश्य से की किसानों के श्रम की बचत हो। इस व्यवस्था का फायदा कोई और ही उठाता है।

सरकार के भ्रष्ट शासन तंत्र से चकबंदी जैसी व्यवस्था से छोटे और गरीब किसानों को नुकसान होता है। बड़े और दबंग किसान चकबंदी अधिकारियों से मिलकर जमीन के बदली का खेल खेलने लगते हैं। आज भी अधिकतर गाँवों में दो तरह की जमीनें होती हैं। एक वह जिसमें फसल या अन्न ठीक-ठाक होती है यानी जमीनें काफी ऊपजाऊ होती हैं और दूसरी तरफ कम ऊपजाऊ या फिर थोड़ा बहुत अन्न हो जाता है इसलिए इस जमीन को ऊसर कहते हैं। चकबंदी अधिकारी से मिलकर बड़े किसान छोटे और गरीब किसानों की जमीनों को अपने चक में करवा लेते हैं या फिर उनकी जमीनें छीन ली जाती हैं। डमरुआ गाँव में चकबंदी होने से समाज में एक नई तरह की कडुवाहट का जन्म होता है।

जमींदारों का दबदबा या रौब किस प्रकार गरीब किसानों पर रहता है। ऊँचे ओहदे के किसान छोटे किसानों की जमीन को चकबंदी का हवाला देकर हड़पना चाहते हैं और कामयाब भी हो रहे हैं। लेखक ने ‘चकबंदी व्यवस्था’ के माध्यम से भ्रष्ट शासन तंत्र को बड़े सीधे और सपाट शब्दों से उजागर किया है। किस प्रकार अपने मन मर्जी का अधिकारी न मिलने के कारण पूरा बामन टोला चिंतित है “सी० ओ० बामन नहीं है चकबंदी में बामनों की लुटिया डूबी समझो।”⁷⁴ फिर भी लेखक हाशियाकृत समाज के प्रति चिंता व्यक्त की है।

⁷⁴अधबुनी रस्सी एक परिकथा, सच्चिदानंद चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या : 79

लेखक ने इस उपन्यास में बेगार (गरीबों पर किया गया शोषण का एक प्रकार) का यथार्थ चित्रण किया है। जमींदारी प्रथा से परेशान और कमरतोड़ मेहनत करता मजदूर किसान गरीबी से इतना तंग है कि वह न तो अपने परिवार को सही तरह से खाना-पानी दे पा रहा है और न ही समाज में सम्मान का जीवन जी रहा है। फिर भी किसान अपने अन्दर परिवर्तन की उम्मीद से इस तंग भरी जिंदगी से लड़ रहा है। खेतों में काम करते-करते कभी-कभी अपने आप को इन्सान नहीं बल्कि बैल जैसे जानवरों की जिंदगी जीना चाहता है। इस उपन्यास की मूल समस्या जमीन को लेकर है क्योंकि किसानों के अर्थोपार्जन और जीविकोपार्जन का मूल साधन खेती ही है।

‘अधबुनी रस्सी एक परिकथा’ उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण जीवन के साथ-साथ गाँवों में घटित होने वाले राजनीतिक घटनाओं को भी बहुत ही गहनता से अभिव्यक्त किया है। शंकर चौबे के माध्यम से लेखक ने वर्तमान राजनीति का दृश्य दिखाने की कोशिश की है। जिसमें दलबदलू नेताओं का भरपूर जिक्र किया है। इसके साथ ही कांग्रेस के शासनकाल में हुए इमरजेंसी का भी जिक्र व्यंग्यात्मक लहजे में किया गया है। स्त्रियाँ हो या दलित उपेक्षित गाँव हो या पर्यावरण सबके प्रति लेखक की गहरी संवेदना इस उपन्यास में अभिव्यंजित हुई है।

3.8 ‘नरक मसीहा’: खेती से पलायन को विवश मजदूर बनता किसान

‘नरक मसीहा’ उपन्यास भगवानदास मोरवाल द्वारा लिखित 2014 में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास भारत में तेजी से पनपती एन० जी० ओ० संस्कृति की गाथा है। गैर-सरकारी संगठन आज हमारे समाज में अपनी मजबूती पैठ बनाए हुए है जो दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों तथा उपेक्षित समुदायों के हितैषी बनते हैं। पर सच्चाई कुछ और ही है इसी सच्चाई को भगवानदास मोरवाल का उपन्यास ‘नरक मसीहा’ कई तहों को उजागर करता है तथा उसकी हकीकत कई परत-दर-परत उकेरता है। इनके घेरे में लोक संस्कृति भी खतरे में है।

यह उपन्यास एन०जी०ओ० की उस संस्कृति को उजागर करता है जो बाहरी तौर-तरीकों से तो जनता का हितकारी समझा जाता है पर अन्दर से बहुत ही भयावह और ट्रेजिक है। गैर-सरकारी संस्थाएँ वर्तमान समय में अपनी खास पहचान और समाज को मूर्ख बना कर उसके दुःख-दर्द के नाम पर व्यापार कर रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पिछड़ों के विकास और उत्थान की तीरंदाजी में अपने स्वार्थ व बैंक बैलेंस को बढ़ाने में बड़ी-बड़ी कलाबाजियाँ दिखाती हैं। देखते-देखते एक चतुर व्यक्ति कैसे करोड़ों का मालिक बन जाता है। इसकी आंतरिक सच्चाई को यह उपन्यास बयां करता है। पिछड़ों, गरीबों, आदिवासियों और किसानों को आधार बनाकर ये संस्थाएँ मसीहा बनने का ड्रामा करते हैं।

उपन्यास का एक पात्र कबीर जो एक एन०जी०ओ० चलाता है वह किसानों को कर्ज देने के बहाने उनकी जमीनें अपने नाम करवाता रहता है। माइक्रो फाइनेंस कम्पनी के मालिक कबीर का गरीब किसानों के प्रति जो भयावह मंशा है वह यह चाहता है कि ज्यादा से ज्यादा गरीब किसानों की जमीनों पर अपना अधिकार जमाया जा सके जो कभी पहले जमीन का मालिक था वही आज उसी जमीन में नौकर बन जाता है। उपन्यास में इस प्रकार देखा जा सकता है-“साब ना, हम तो बिना कर्जई ठीक हैं। हाथ जोड़ते हुए जवाब दिया हिम्मत सिंह ने। अरे भई आपका अपना काम शुरू होगा तो इसमें आपका और आपके बच्चों का जीवन स्तर सुधरेगा। साब या करज ने ही तो हम बरबाद करे है। अरे भई हम कर्ज लेते हैं। हम तो नहीं हुए बरबाद। बल्कि इससे आप लोगों में बचत करने की आदत पड़ेगी। कह तो आप सही रहे हो साब। आप जैसे बड़े आदमी नहीं होते होंगे बरबाद, पर हम तो हो गए। टैम पर नहीं दोगे तो ऐसा ही होगा। टैम ही क्या करे साब, खेती भी तो पैदा देय कुछ। खली करज से कब तलक काम चलतो।”⁷⁵

⁷⁵नरक मसीहा, भगवानदास मोरवाल, पृष्ठ संख्या : 131

इस उपन्यास को दो पक्षों से देखा जा सकता है एक तरफ एन०जी०ओ० संस्कृति से जुड़े एक-एक पक्ष की पहचान की है तो दूसरी तरफ जो उपन्यास की मुख्य कथा है में किसानों की कर्ज जैसी समस्या, किसानों की आत्महत्याएं तथा आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन जैसी समस्याओं का उल्लेख किया गया है। पूनम सिन्हा अपने एक लेख में लिखती हैं कि- “किसानों की कर्ज समस्या और आत्महत्याओं की समस्या संक्षिप्त पर बेधक है। मोरवाल जी इस उपन्यास में गाँव और शहर के जीवन के अपने अनुभवों और भाषा का दोहरे संसाधन के रूप में उपयोग किया है। उन्होंने गाँव के मिट्टी सने शब्दों को झाड़ पोछ कर इस प्रकार प्रयोग किया है कि ताजगी भरी चमक आ गई।”⁷⁶

3.9 ‘जहाँ एक जंगल था’: जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण

‘जहाँ एक जंगल था’ उपन्यास मदन मोहन द्वारा लिखित है जो अंतिका प्रकाशन गाज़ियाबाद से वर्ष 2012 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल जिले के बीरगंज गाँव के जमींदारों द्वारा किसानों पर किए गए शोषण को दिखाता है जो नेपाल देश के सीमांत क्षेत्र में पड़ता है। यह इलाका नक्सली क्षेत्र माना जाता रहा है। पूर्वांचल जिले के इस क्षेत्र में राजनीतिक उथल-पुथल के साथ ही साथ नक्सलवादी आन्दोलन का भी जिक्र किया गया है। उपन्यास उन तमाम गरीब, मजदूर, दलित आदिवासी और भूमिहीन किसानों के दुःख दर्द की आप बीती कहानी को परत-दर-परत उकेरता है जिसमें गरीब, मजदूर किसान अनेक सरकारी योजनाओं के बावजूद भी असुविधाओं भरा जीवन जीने पर विवश हो रहा है। भूमिहीन किसानों के हालात दिन-ब-दिन बदतर होते जा रहे हैं। यह उपन्यास आदिवासियों से छिनती जमीन के

⁷⁶ जनसत्ता, सं. मुकेश भारद्वाज 4 जनवरी 2015, पृष्ठ संख्या : 6

दुखों को बयां करता है। आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल किया जा रहा है। जिसके कारण आदिवासियों को तथाकथित नक्सलवादी बनते हुए दिखाया गया है।

विकास रूपी महापरिवर्तन ने किसानों की जमीनों को सरकार पूँजीपतियों के हवाले कर रही है। इसी विकास बरक्स विनाश की करुण गाथा है यह उपन्यास। आदिवासियों को उनकी जमीन से तो विस्थापित कर दिया जाता है पर इन्हें रहने के लिए दूसरी जमीन मुहैया नहीं कराई जाती। वहाँ के किसान मजदूरों को बिना मुआवजा दिए ही भगा दिया जाता है। इसी बात को लेकर ये आदिवासी सरकार के विरुद्ध संगठन बनाकर अपने हक की लड़ाई शुरू करते हैं जिसे सरकार तथाकथित नक्सली कहती है। राकेश पाण्डेय इस दल का नेतृत्व करता है जो गाँव में ही एक पुस्तकालय खोला हुआ है। जिसे गाँव के लोग राकेश बाबा के नाम से बुलाते हैं। कागजी कोटा पूरा करने के लिए सरकार कुछ लोगों को जमीन दे देती है ताकि वह भविष्य में आने वाले संकट से दूर रहे।

आदिवासी पुनर्वास की समस्या को उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है-“अइसन बा चाचा, कि बाबा वनगंवन के खुलि के साथ देते बाटें। ऊ सबन के माँग है कि बीरगंज से बिसुनपुर तक जंगल के जौन जमीन खाली है, वह में ऊ सबन के सरकार बसावे, सरकारी काजग में वोनके नाम दर्ज होवे, रासन-पानी, रोजी-रोजगार जइसे सब गाँव के मजूरन के मिलत बा, वइसे वोनहूँ के मिले। यही सब बात के लेके परसों जिला शहर में जुलूस जाई, सभा होई।”⁷⁷

नवउदारवाद और बाजारवाद के इस दौड़ में ग्रामीण-जीवन में बहुत तेजी से बदलाव आया है। अभी तक जो भी कुछ सामूहिक एकता बची थी वह भी गाँव की राजनीति में इस कदर बदरंगी हुई कि मानवता को तार-तार कर दिया। यह उपन्यास एक जमींदार से दूसरे जमींदार के

⁷⁷जहाँ एक जंगल था, मदन मोहन, पृष्ठ संख्या : 155

प्रति कुचक्रों की कहानी है। जिसका शिकार वहां का दलित और मजदूर-वर्ग होता है। उपन्यास का मुख्य पात्र गोरखनंदन हैं जो सरकारी दफ्तर में बाबू के पद से रिटायर्ड हो चुके हैं। उनके दो संतानें हैं एक बेटा और एक बेटी। बेटा अमेरिका में डॉक्टर है। वह एक ऐसी दवा की खोज कर रहा है जिसे नाइकी बीमारी यानी टी०बी० का इलाज कम पैसों में हो सके इसके लिए अपने पिता से गाँव की जमीन को बेचने के लिए बार-बार दबाव बनता है। गोरखनंदन जमीन तो बेचना चाहते हैं पर उनकी जमीनों पर गाँव के ही कुछ दबंग लोगों ने कब्ज़ा कर रखा है।

3.10 ‘गाँव भीतर गाँव’: ग्रामीण राजनीति का शिकार होता दलित समाज और भूमिहीन किसान

सत्यनारायण पटेल का ‘गाँव भीतर गाँव’ उपन्यास आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा) से वर्ष 2015 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और किसान जैसे कई विमर्शों को अपने में समाहित किए है। इसका कथानक एक दलित विधवा स्त्री झब्बू के इर्द-गिर्द राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं को आधार बनाकर गढ़ा गया है। गाँव भीतर गाँव उपन्यास के सन्दर्भ में विजय शर्मा लिखते हैं-“भूमंडलीकरण, बाजारवादी आँधी, महिला सशक्तिकरण, पंचायती राज, सर्वशिक्षा अभियान के बावजूद हमारे जकड़न भरे विचारों में रस्ती भर भी फ़र्क नहीं आया है। हाँ, राजनीति, अर्थनीति का चेहरा और अधिक शातिर हो गया है। समाज दो कदम आगे बढ़ता है तो तीन कदम पीछे सरक जाता है। झब्बू जैसे लोग तालाब में कंकड़ की तरह हैं जो तनिक सी लहर उठाते हैं और फिर सब शांत हो जाता है, जल पर फिर से काई जम जाती है। पटेल की सफलता है कि उन्होंने पानी में हलचल पैदा की है।”⁷⁸

⁷⁸http://www.lachanakar.org/2015/12/blog-post_66.html

यह उपन्यास गाँव के राजनीतिक कुचक्रों को पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। गंवई राजनीति के अतिरिक्त ग्रामीण-जीवन पर बाजारवाद का तेजी से बढ़ते प्रभाव को भी इस उपन्यास में दिखाया गया है। विदेशी बीज और दिनोंदिन बढ़ती महँगाई ने किसानों को जीना दूभर कर दिया है। अमीर व्यक्ति दिनोंदिन अमीर होता जा रहा है और गरीब, गरीब होता जा रहा है। **‘किसान मजूरों के लिए’** नामक लेख में **राहुल सांकृत्यायन** लिखने हैं –“गरीबी और अपमान को मैं भारी अभिशाप समझता हूँ।”⁷⁹

‘गाँव भीतर गाँव’ उपन्यास में किसानों की कर्ज जैसी समस्याओं के अतिरिक्त जमीन आवंटन से उत्पन्न समस्या को भी दिखाया गया है। जो छोटे जमींदार थे उनकी जमीन तो अमीन, लेखपाल और तहसीलदार के द्वारा आसानी से किसानों में बाँट दी गई, लेकिन जामसिंह जैसे बड़े और दबंग जमींदारों की जमीनों को सरकार नहीं ले रही है। एक तरफ सरकार भूमंडलीकरण की नीतियों के तहत सरकार किसानों की जमीनों को औने-पौने भाव से पूँजीपतियों को दे रही है और दूसरी तरफ जमीन आवंटन का नाटक कर रही है। उदारीकरण और निजीकरण से किसानों के जीवन में जो प्रभाव पड़ा उसे भी इस उपन्यास में दिखाया गया है जो इस प्रकार है-“जमीन का अधिग्रहण बढ़ा। औने-पौने दामों पर सरकारी जमीन भू-माफियाओं को दी जाने लगी। प्रदेश के बड़े शहरों- महानगरों में बनाने वाले मॉलों और तमाम इंडस्ट्रियों में राजा साहब और उनके बन्दों की हिस्सेदारियाँ बढ़ने लगी। जाम सिंह, माखन शुक्ला जैसे प्रदेश भर में चाँदी सोरने लगे।”⁸⁰

बाजारीकरण और कॉरपोरेट कंपनियों का भारत में उदय से एक ग्लोबल बाजार की कल्पना की जाने लगी। किसानों की जमीनों को अपार्टमेन्ट में बदला जाने लगा। एक चुनावी संगठन के माध्यम से **‘गाँव भीतर गाँव’** उपन्यास में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

⁷⁹अभिनव कदम, सं. चंद्रदेव राय, अंक-26 पृष्ठ संख्या : 163

⁸⁰गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, पृष्ठ संख्या : 156

“ग्लोबल इन्वेस्टर मीट भी हो रही है। किसानों से जमीन ली जा रही है। देशी-विदेशी पूँजीपति कंपनियों को दी जा रही है। शुक्ला ने कुछ जोड़ते हुए कहा और कुछ सोचता हुआ बोला- कभी पार्टी पॉलिटिक्स से अलग सोचता हूँ तो लगता है कि देशहित में न अपनी पार्टी सोच री और न उनकी। सबके सब साले दैत्य हैं और देश जैसे केक या फिर माँस का टुकड़ा.. भकोसे जा रहे हैं। उसमें अपन भी शामिल हैं।”⁸¹ पूँजीवादी ताकतें किस प्रकार हमारे समाज में हावी हो रहे हैं। इसे सत्यनारायण पटेल बखूबी दिखाते हैं।

इस उपन्यास में रोशनी पात्र के प्रगतिशील सोच और विचारधारा के माध्यम से किसान आत्महत्या जैसी गंभीर समस्या का भी जिक्र किया गया है। वह कहती है कि-“आज मरते लोगों को कैसे समझाऊँ ! जिंदगी यूँ ही खत्म करने वाली चीज नहीं ! आत्महत्या करना समस्या का हल नहीं ! खत्म ही करना है तो दुश्मन के नापाक इरादे, जिंदगी को खत्म करने वाली नीतियों को खत्म करो। भगत सिंह और आजाद की तरह संघर्ष करो। अपने देश और आने वाली पीढ़ी के भविष्य के लिए शहीद हों। शहीदों को आतंकवादी लिखने वाली कलम और हाथ खत्म करो।”⁸²

3.11 ‘फाँस’ : आत्महत्या के फाँस में फँसता भारतीय किसान

‘फाँस’ उपन्यास कथाकार संजीव द्वारा लिखित है जो महाराष्ट्र राज्य के विदर्भ क्षेत्र में निवास करने वाले किसानों के जीवन तथा उनके जीवन में आने वाली तमाम विनाशकारी समस्याओं पर आधारित है। यह उपन्यास सबका पेट भरने वाले और तन ढकने वाले देश के लाखों किसानों द्वारा किए जा रहे आत्महत्या पर केन्द्रित है। देश के लाखों किसानों और उनके

⁸¹गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, पृष्ठ संख्या : 235-36

⁸²गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, पृष्ठ संख्या : 288

परिवारों जिनकी हत्या या आत्महत्या को हम रोक नहीं पा रहे हैं। ‘फाँस’ उपन्यास खतरे की घंटी भी है और आत्महत्या के विरुद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और जमीनी संजीवनी का संकल्प भी। दरअसल यह उपन्यास कथाकार संजीव द्वारा किसान आत्महत्या पर उनके द्वारा किए गए अनेक वर्षों के शोध का परिणाम है।

अक्सर यह कहा जाता रहा है कि भारत किसानों का देश है और भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। यहाँ आधे से अधिक जनता कृषि पर निर्भर रहती है। विगत कुछ दशकों से इस देश में किसान आत्महत्या तेजी से हो रही है। परिस्थितिवश किसान लगातार आत्महत्या कर रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कथाकार संजीव का यह उपन्यास भारतीय कृषक समस्या की दारुण दशा पर केन्द्रित है। ‘फाँस’ उपन्यास के माध्यम से संजीव ने उन सभी पहलुओं को दिखाने की कोशिश करते हैं जिन पहलुओं से केवल विदर्भ का किसान ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय किसानों को गुजरना पड़ रहा है।

संजीव के इस उपन्यास में एक किसान की बुनियादी समस्याओं जैसे- बीज बोने से लेकर खाद-पानी तथा घर-परिवार की आर्थिक समस्या या फिर उत्पादित की गई फसलों को बेचने की जैसी समस्याओं को देखते हुए सहज ही प्रेमचन्द का उपन्यास ‘गोदान’ के केन्द्रीय पात्र ‘होरी’ की याद आ जाती है। संजीव को प्रेमचन्द की परंपरा में रखा जाता है। जिस प्रकार ‘गोदान’ में प्रेमचन्द ने ‘होरी’ के माध्यम से भारतीय किसानों की दयनीय स्थिति को दिखाया है उसी तरह ‘फाँस’ उपन्यास में संजीव ने ‘शिबू’ के माध्यम से किसानों की बदहाली को दिखाया है। फर्क इतना है कि होरी खेतों में काम करते-करते अपना प्राण त्याग देता है अर्थात् प्रेमचन्द के यहाँ संघर्ष दिखाई देता है।

‘फाँस’ उपन्यास में किसान आर्थिक समस्याओं का सामना करते-करते अंत में हताश और निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। संजीव का यह उपन्यास सामाजिक संरचना के तमाम जटिलताओं के बीच खेती किसानों की त्रासदी के हकीकतों को परत-दर-परत भेदते हुए समस्या और विकास के नाम पर जारी उपक्रमों की समीक्षा करता है। यह किसान जो कभी ‘भारत की आत्मा’ के नाम से जाना जाता रहा है वही आज अपनी गरीबी भरी जिंदगी से टूटकर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है।

उपन्यास में एक पात्र ‘शिवू’ जब समस्याओं का सामना नहीं कर पाता और आत्महत्या कर लेता है तब उसके आत्महत्या को पात्र ठहराने के लिए घरवालों को काफी मशक्कत करनी पड़ती है जिसका उल्लेख संजीव इस प्रकार करते हैं- “पोस्टमार्टम, पंचनामा। घूस की डिमांड-पैसे दो तो इसे पात्र बना दे वरना। पात्र नहीं बनाया जा सकता इस आत्महत्या को।”⁸³ यदि सरकारी कर्मचारी, बिचौलियों, दलालों को कुछ नहीं मिलता तो आत्महत्या, आत्महत्या नहीं ठहराते जो उपन्यास में इस प्रकार दृष्टव्य है- “उसकी मौत आत्महत्या नहीं मानी गई। वह क्या है ? बाप के नाम जमीन, मरा बेटा ! आत्महत्या अपात्र ! कारण जमीन तो उसके नाम थी ही नहीं। यहाँ शिवू काका की आत्महत्या को आत्महत्या नहीं माना गया। कारण जमीन पर तो कर्ज था ही नहीं। सरकारी कर्ज उतारने के लिए ही रोज-रोज मरते रहे।”⁸⁴

लेखक ने इस उपन्यास में यह भी दिखाया है कि किसान कर्ज की मर्ज से इतना परेशान है कि जहर खाने तक के लिए भी पैसे नहीं है। तो वह कर्ज कहाँ से चुकाएगा। उपन्यास में एक पात्र कहता है –“एक पस्त सी आवाज आई –अपुन के पास तो विष खाने भर का भी पइसे नहीं

⁸³फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 110

⁸⁴फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 116

सेठ ।”⁸⁵ कर्ज के जाल में फँस कर किसान आत्महत्या कर रहे हैं। बहुचर्चित उपन्यास फाँस को पढ़ते हुए ऐसा लग रहा है कि यह व्यवस्था किसानों के साथ छल कर रही है।

विदेशी बीजों के प्रयोग से कर्ज तो बढ़ता ही था साथ ही साथ जमीन की उर्वरा शक्ति भी नष्ट होती रही। बी०टी० काटन और सोयाबीन की खेती करने वाले किसानों ने सबसे ज्यादा इस त्रासदी के शिकार हुए। कापूस की खेती से परेशान होकर किसान इस प्रकार फसलों को बदलने की बात करते हैं- “कापूस में क्या है? आत्महत्या! हमने तो ताई कापूस छोड़कर ऊस(ईख) की शेती(खेती) करने का निर्णय ले लिया है। आप बताओ सबको, सबका भला हो जाए। सिर्फ बताया ही नहीं, उत्साह में उसे सरपंच के घर तक लाकर ही दम लिया। सरपंच के यहाँ तीन धोतीधारी, दो पैट वाले चाय-पानी कर रहे थे। बीस-एक शेतकरी पहले से हाजिर थे।”⁸⁶ उपन्यास में वर्णित किसान आत्महत्या के साथ-साथ स्त्री पात्रों खासकर ‘शकुन’ और ‘छोटी’ की सकारात्मक और जिजीविषा पर भी बात की गई है। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी शकुन और छोटी उम्मीद और बदलाव का संघर्ष जारी रखती हैं जो कि काबिले तारीफ है।

3.12 ‘अकाल में उत्सव’ : किसान क्रेडिट कार्ड योजना का खोखलापन

उपन्यासों में किसान-जीवन की अभिव्यक्ति की अगली कड़ी में पंकज सुबीर का ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास है जो गाँव और किसान-संस्कृति का एक बहुत ही बेहतरीन उपन्यास है। किस प्रकार किसान महाजनी, सामंती व्यवस्था सूदखोरी और कर्ज के दलदल में फँसकर आत्महत्या करने पर विवश हो रहा है। पंकज सुबीर के इस उपन्यास को पढ़ते समय प्रेमचन्द के उपन्यास ‘गोदान’ और ‘गबन’ की याद दिलाती है। दरअसल प्रेमचन्द के समय में

⁸⁵फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 154

⁸⁶फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 153

किसान के समक्ष जो समस्याएं थीं चाहे वह ऋण संबंधी समस्याएँ हों या किसानों की बदहाली संबंधी अन्य समस्याएँ हों उसी कड़ी या परंपरा को उपन्यास जगत में आगे बढ़ाने का काम पंकज सुबीर ने किया है।

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास की कथावस्तु ‘सूखापानी’ नामक गाँव से प्रारम्भ होती है जो मध्यप्रदेश का एक आदिवासी गाँव है। इसकी कहानी दो एकड़ जमीन के जोत वाले छोटे किसान रामप्रसाद के इर्द-गिर्द घूमती है। किसान खेतों में रात दिन जीतोड़ मेहनत करता है तभी तो फसलें भी अच्छी होती हैं परन्तु महाजन खलिहान पर ही फसल को उठवा लेता है। रामप्रसाद को इतना मिलता है कि वह शायद ही सालभर अपने परिवार वालों का खिला सके। खेत में जोतने-बोने तथा अन्य खर्चों के लिए रुपयों की जरूरत के लिए अपनी पत्नी कमला का गहना महाजन के यहाँ गिरवी रखकर पूरा करता है।

धीरे-धीरे एक एक करके सारे गहने महाजन के यहाँ बिक जाते हैं और अंत में गहनों के नाम पर मात्र एक गहना ‘तोड़ी’ ही बची है। जिसे रामप्रसाद बेचना नहीं चाहता फिर भी ऐसी विपत्ति आन पड़ती है कि उसे तोड़ी हमेशा के लिए बेचना पड़ता है। अंत में रामप्रसाद बैंक द्वारा लिया गया कर्ज के फर्जीवाड़े का शिकार होता है। ऊपर से प्रकृति की मार से उसकी सारी फसल बर्बाद हो जाती है। बैंक के कर्जे को सुनकर उसे ऐसा सदमा लगता है कि इस जीवन से उसका हृदय तार-तार हो जाता है और वह आत्महत्या कर लेता है। अंत में भ्रष्ट शासन तंत्र के चलते उसे पागल सिद्ध कर दिया जाता है।

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास का शीर्षक अनोखा है। पढ़ने के बाद मालूम होता है कि एक तरफ सरकारी फंड को सही समय में उपयोग करने के लिए सरकारी प्यादों द्वारा उत्सव मनाया जा रहा है और वहीं दूसरी तरफ ‘सूखापानी’ नामक गाँव के किसान आत्महत्या कर रहा है। इस

उपन्यास में चित्रित गाँव 'सूखापानी' का एक अजीब नाम है। यानी किसान की फसल को अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही स्थिति में नुकसान है। किसान-जीवनसंबंधी समस्याओं का केन्द्रीय बिंदु बनाकर यद्यपि कई उपन्यास लिखे गए। किसी उपन्यास में जमीन बेदखली की समस्या तो किसी में काश्तकारों द्वारा किया जा रहा बेरहमी से शोषण। इन उपन्यासों में कर्ज जैसी समस्या को किसान परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी ट्रांसफर होता दिखाया गया है। किसान की आत्महत्या के कारणों को बखूबी कलात्मक और भावनात्मक स्तर पर अद्भुत तरीके से व्यक्त किया गया है। यह उपन्यास प्रेमचन्द के गाँव को एक नई भाषा शैली के रूप में फिर से जिन्दा हो उठा है। एक साधारण किसान होरी की ही तरह वही बेबसी, वही लाचारी और वही विवशता आज राम प्रसाद में है। यानी देश के इतनी तरक्की करने के बाद भी किसानों की स्थिति वहीं की वहीं है।

इस उपन्यास में प्रशासन की कथित चालाकियों को बेपर्दा किया गया है। शासन तंत्र इतना भ्रष्ट है कि किसानों के हित में सरकार द्वारा चलाई गई योजना जिसके अंतर्गत किसान अपना 'क्रेडिट कार्ड' दिखाकर कृषि कार्य हेतु बैंक से लोन के रूप में रुपया ले सकता है। समाज में फर्जीवाड़ा इतना हो रहा है कि बैंक अधिकारी और दलाल की मिली भगत से गरीब और भोले-भाले किसानों के नाम पर लोन ले लिया करते हैं। जब किसान को पैसा जमा करने की बैंकों द्वारा नोटिस मिलने के बाद किसान को मालूम होता है कि उसके नाम से बैंक से लोन लिया गया है। साधारण और गरीब किसानों को सरकारी कागज से इतना डर रहता है कि जैसे ही रामप्रसाद को नोटिस मिलती है वह खाना-पीना छोड़कर सरकारी दफ्तरों का चक्कर लगाने लगता है। जिसे उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है –“किसान क्रेडिट कार्ड ? उसने कब

बनवाया ? और कब बैंक से पैसे निकलवाए ? वह भी तीस हजार ? कब ? उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय ?”⁸⁷

भारतीय किसानों का हृदय इतना सरल और निष्कपट होता है कि वह मनुष्य तथा मानवेतर प्राणियों से भी भावनात्मक लगाव रखता है। ‘तोड़ी’ नामक आभूषण जिसे स्त्रियाँ पैरों में पहनती हैं को आधार बनाकर लेखक ने किसानों का जो गहनों के प्रति परंपरागत लगाव होता है उसे बड़े ही हृदयविदारक लहजे में अभिव्यक्त किया है। रामप्रसाद जब तोड़ी बेचने महाजन के पास जाता है वहाँ का दृश्य उसे अपने पुरखों की बनी बनाई ईमारत को ढहते दिखाई देता है। तोड़ी पिघल रही है ऐसा लग रहा है कि कोई पदार्थ नहीं बल्कि रामप्रसाद का हृदय पिघल रहा है। “कारीगर के लिए एक पुराना जेवर टूट रहा है पर रामप्रसाद के लिए यह एक पुरानी परंपरा टूट रही है।”⁸⁸

इस उपन्यास को आलोचकों ने अपने अपने तरीके से व्याख्यायित किया है। नासिरा शर्मा ने इसे ‘प्रेमचन्द का गाँव एक नई भाषा शैली में फिर से जिन्दा हो उठा’ कहा है, महेश कटारे ने ‘भारतीय किसान के जीवन का शोकगीत’, डॉ० पुष्पा दुबे ने ‘कंपकंपाती लौ और थरथराते धुँएँ की दुःख भरी कहानी’ कहा, ब्रजेश राजपूत ने ‘किसानों के दुःख दर्द का बेचैन करने वाला किस्सा’ कहा, ओम शर्मा ने ‘आज के किसान की जिंदगी का सच्चा दस्तावेज़’ कहा। मेरे हिसाब से यह उपन्यास ‘किसान की बदकिस्मती का जीता जागता आईना’ है। ऐसा आईना जिसमें किसानों की दयनीयता को देखा जा सकता है। एक बार फिर से पंकज सुबीर ने गंवई जीवन शैली और किसान आत्महत्या जैसे विषय को कथा साहित्य में पाठकों, आलोचकों और समीक्षकों को सोचने पर मजबूर कर दिया है।

⁸⁷ अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 136

⁸⁸ अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 110

3.13 ‘यह जमीन हमारी है’ : कॉरपोरेट कंपनियों का बढ़ता प्रभाव

‘यह जमीन हमारी है’ उपन्यास विश्वंभर मिश्रा द्वारा लिखित है जो 2017 में अनन्य प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। यह लघु उपन्यास झारखण्ड के आदिवासी समाज और वहाँ के किसानों और कॉरपोरेट कंपनियों के मध्य प्रत्यक्ष द्वंद्व की उन बारीकियों को उजागर करता है जिससे किसानों की जमीनों को औने-पौने भाव से कंपनी अपने नाम करवा लेती है। जिसमें सरकार पूरी तरह से पूँजीपतियों का साथ देती है। किसान कल्याण समिति जैसे सरकारी संगठन और गैर सरकारी संगठनों का गरीब किसान और कंपनियों की मध्यस्थता को बखूबी उजागर करता है। जमीन बचाओ आन्दोलन से जुड़े नेता भी निजी स्वार्थवश कॉरपोरेट कंपनियों से मिलकर आदिवासियों की जमीन को बेचने को मजबूर करने लगते हैं। जिसका उल्लेख उपन्यास में इस प्रकार है –“इस वाक्ये से सबक लेते हुए जमीन बेचने की सोच रहे लोगों के घर-घर जाकर उन्हें समझाने का अभियान शुरू किया है। कई घरों में उनका स्वागत हुआ तो कई घरों में कड़वी बातें भी सुननी पड़ी।”⁸⁹

‘जमीन बचाओ’ और कंपनी विरोधी दिखावटी नेताओं के दोहरे चरित्र को यह उपन्यास बहुत ही संजीदगी से अभिव्यक्त करता है। सम्पूर्ण उपन्यास राजनीतिक टकराहट को दिखाकर लेखक ने नेताओं के भ्रष्ट चरित्र को जनता के सामने लाने का प्रयास किया है। बड़े जद्दोजहद, नाराजगी या रजामंदी के बाद कंपनी खुल जाने पर वहाँ के स्थानीय किसानों को जिस बात का डर था वही होना शुरू हुआ। इस उपन्यास में प्रकृति के दोहन का जिक्र किया गया है।

3.14 ‘ताकि बची रहे हरियाली’: जैविक खेती और कॉरपोरेट जगत

⁸⁹ यह जमीन हमारी है, विश्वंभर मिश्रा, पृष्ठ संख्या : 34

नवउदारवाद के समय से भारत का किसान अत्याधुनिक कृषि उपकरणों के प्रयोग के साथ विदेशी बीजों और रासायनिक खादों को अंधाधुंध प्रयोग को विवश हुआ है। भारत देश में इसकी शुरुआत हरित क्रांति से होती है और यह हमारी जरूरत भी थी। बेशक फसलों के उत्पादनों में खूब वृद्धि हुई परन्तु आने वाले कुछ वर्षों में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग से खेतों की उर्वरा शक्ति समाप्त होने लगी और खेती का खर्च भी बढ़ता गया। जिससे किसानों की स्थिति बिगड़ती गई। वर्तमान समय में किसानों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कृषि शोधकर्ताओं और कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा जैविक खेती करने के लिए बढ़ावा दिया जा रहा है। कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि जैविक खेती करने से किसानों के ऊपर खर्च बहुत कम आएगा क्योंकि इस खेती में देशी खाद और कीटनाशक दवाओं का निर्माण किसान स्वयं अपने घरों में आसानी से कर सकता है। जैविक खेती करते किसानों और ईमानदार कृषि वैज्ञानिकों के समक्ष आने वाली तमाम समस्याओं को अनंत कुमार सिंह ने उपन्यास ‘ताकि बची रहे हरियाली’ में दिखाया है। यह उपन्यास ‘रीवर पब्लिशिंग हाउस’ प्रकाशन गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश द्वारा वर्ष 2015 में प्रकाशित हुआ है।

यदि पृथ्वी पर हरियाली रहेगी तो पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा और पर्यावरण है तो मानव जीवन सुचारु रूप से चलता रहेगा। पिछले कई दशकों से पर्यावरण दूषित होता जा रहा है जिससे धरती पर रहने वाले सम्पूर्ण जीव-जंतु, पशु-पक्षी और मनुष्यों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। जिससे मानव जीवन पर संकट गहराता जा रहा है। भारत में औद्योगिक क्रांति और हरित क्रांति के आने से किसानों को तात्कालिक फायदा खूब हुआ। परन्तु इसका दूरगामी परिणाम घातक साबित हुआ।

पंजाब और हरियाणा राज्यों का नाम शीर्ष पर रहा। इसी समय से इस देश में उत्पादन को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के रासायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग होने लगा। हाइब्रिड जैसे बीजों के प्रयोग से फसलों के उत्पादन में बेतहाशा बढ़ोत्तरी होती रही। 1990 तक आते-आते सभी राज्य के किसानों ने इन रासायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग धड़ल्ले से करते रहे। वर्तमान समय में रासायनिक खेती करना किसानों के लिए खतरनाक साबित हो रहा है। रासायनिक खेती करने से भूमि की उर्वरा शक्ति तो नष्ट होती ही है साथ ही अनेक प्रकार की नई-नई बीमारी भी हो रही है। महँगे बीज और खादों से आज रासायनिक खेती किसानों के लिए घाटे की खेती हो गई है।

किसान दिनोंदिन कर्ज में डूबते जा रहे हैं। महँगाई की मार और कर्ज से छुटकारा पाने के लिए तथा खेतों की उर्वरा शक्ति बनी रहे और पर्यावरण भी सुरक्षित रहे इसी को ध्यान में रखकर कृषि विशेषज्ञों ने प्राकृतिक और जैविक विधि से किसानों को खेती करने के लिए जोर दे रही है। ‘ताकि बची रहे हरियाली’ उपन्यास में वर्मी कम्पोस्ट विधि से खेती करते किसानों को दिखाया गया है। जैविक खेती का जिक्र उपन्यास में इस प्रकार किया गया है-“कीटनाशक दवाएं मुख्यतः भट्ठा, अकवन का पत्ता, नीम के पत्ते या जलकुम्भी से बनती थीं। वर्मीकम्पोस्ट एवं कीटनाशक दवाएं उन छोटे किसानों को मुफ्त में देता था जो बहुत गरीब थे और जो भूमिहीन होने के चलते बटाई पर खेती करते थे। आस-पास के किसानों को बुलाता और खाद तथा कीटनाशक दवाएं बनाने की तकनीकी से वाकिफ कराता।”⁹⁰

⁹⁰ ताकि बची रहे हरियाली, अनंत कुमार सिंह, पृष्ठ संख्या : 9

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नवें दशक के बाद किसानों के जीवन, उनकी संस्कृति तथा सभ्यता में जो परिवर्तन आया है उपर्युक्त लेखकों के उपन्यासों में देखा जा सकता है। भारत में नई अर्थनीति लागू होने से भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य कड़ी किसानों के जीवन में होने वाले उन तमाम बदलावों को लेखकों ने बड़ी गंभीरता से उल्लेख किया है। जिसकी वजह से किसान आज अपनी मांगों को पूरी करवाने के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। भूमंडलीकरण, बाजारवाद और विज्ञान युग के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को इन लेखकों ने दिखाने का प्रयास किया है। किसानों के जीवन में आने वाली समस्याओं जैसे-जल, जंगल का जमीन का संरक्षण, काश्तकारों, साहूकारों, जमींदारों तथा सरकारी बैंकों द्वारा लिए गए कर्ज से उत्पन्न किसान आत्महत्या जैसी कई समस्याओं को दिखाया गया है। प्रेमचन्द के समय के किसानों की स्थिति और आज के किसानों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं दिखाई देता। किसान के जीवन में वही बेरुखीपन जो होरी में दिखाई देता है आज वही 'अकाल में उत्सव' के रामप्रसाद में दिखाई देता है। आर्थिक तंगी से परेशान होरी भी आत्महत्या ही करता है और प्रशासन की लापरवाही से आत्महत्या करता है। इतना ही नहीं 'फाँस' उपन्यास का शिबू भी इसी आर्थिक तंगी से तंग होकर आत्महत्या करता है।

जहाँ एक तरफ 'बेदखल' उपन्यास में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय की घटनाओं का उल्लेख करते हुए किसानों का जमींदारों द्वारा शोषण का चित्रण किया गया है वहीं दूसरी तरफ 'फाँस', 'हलफनामे' और 'अकाल में उत्सव' जैसे उपन्यासों में किसानों द्वारा सरकारी बैंकों से लिए गए कर्ज की अदायगी न करने के कारण आत्महत्या जैसी उत्पन्न

समस्याओं को बहुत बारीकी से दिखाया गया है। इतना ही नहीं संजीव जैसे कुछ लेखकों ने किसानों की इन गंभीर समस्याओं से निजात पाने के लिए उपाय भी बताने की कोशिश की है।

इस अध्याय के अंतर्गत किसान-जीवन पर केन्द्रित उन उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है जिसका प्रकाशन नवउदारवाद दौर के समय और उसके बाद में हुआ। बाजारवाद और निजीकरण से किसानों और मजदूरों के जीवन में आने वाले अभूतपूर्व बदलाव को उपर्युक्त उपन्यासकारों ने दिखाया है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से भारतीय गाँवों को शहरों में किस प्रकार तब्दील होता जा रहा है उसे विवेकी राय और काशीनाथ सिंह जैसे उपन्यासकारों ने दिखाया है। ठेके पर खेती के होने से भारतीय किसान अपने ही खेतों में किसान से मजदूर में तब्दील होता जा रहा है जिसे भगवानदास मोरवाल जैसे उपन्यासकारों ने 'नरक मसीहा' उपन्यास में दिखाया है। ताल्लुकेदार प्रथा से किसानों के जीवन में आने वाले समस्याओं और बेदखल होते किसान की स्थिति तथा किसान आन्दोलन को कमलाकांत त्रिपाठी ने 'बेदखल' उपन्यास में दिखाया है।

दलित मजदूर और भूमिहीन भारतीय किसान की वेदना तथा उनकी दशा और दिशा को जगदीश चन्द्र ने 'जमीन तो अपनी थी' उपन्यास में उल्लेख किया है। कृषि क्षेत्र में कॉर्पोरेट कंपनियों के उदय होने से किसानों के समक्ष अपनी जमीन को बचाए रखने की जो जद्दोजहद है और जो अन्य समस्याएँ उत्पन्न हुईं उसे एस०आर० हरनोट ने 'हिडिम्ब' उपन्यास में दिखाया है। दिनोंदिन बढ़ती महँगाई और खेती पर बढ़ते खर्च की वजह से परेशान होकर किसान कर्जदार होता जा रहा है और आत्महत्या जैसे घातक कदम उठा रहा है। आत्महत्या करते किसान और उनके मुआवजे को लेकर बिचौलिए और सरकार का जो किसानों के प्रति बेरुखीपन है इन सभी समस्याओं को 'हलफनामे' उपन्यास में राजू शर्मा ने दिखाया है।

रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग से मिट्टी पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को और संकर बीजों के इस्तेमाल से किसान-जीवन में उत्पन्न समस्याओं को 'फाँस' उपन्यास में संजीव ने शोध पूर्ण तरीके से दिखाया है तथा किसानों द्वारा की गई आत्महत्या को बहुत ही सर्वेक्षणात्मक तरीके से अभिव्यक्त किया है। सरकारी योजनाओं का किसान-जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों और बिचौलियों द्वारा किसानों के शोषण को पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' में दिखाया है। किसान क्रेडिट कार्ड द्वारा किसानों को जो सरकार द्वारा ऋण दिया जाता है बैंक के अधिकारी और बिचौलिए द्वारा मिलकर सीधे-साधे किसानों को किस प्रकार परेशान किया जाता है। पंकज सुबीर ने सरकारी तंत्र के खोखलेपन को उजागर किया है। किसानों के सुल्तानी, आसमानी और जिस्मानी शोषण का चित्रण पंकज सुबीर ने व्यंग्यात्मक लहजे और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हुए किया है।

चतुर्थ अध्याय

नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन

- 4.1 पारंपरिक कृषि में परिवर्तन
- 4.2 गायब होते बैल और गाँव
- 4.3 बाजारवाद का प्रभाव और विदेशी बीजों का प्रयोग
- 4.4 सामूहिक श्रम का हास
- 4.5 पलायन और विस्थापन की समस्या
- 4.6 रासायनिक उर्वरकों का कृषि पर दुष्प्रभाव
- 4.7 बी० टी० बीजों का कृषि पर प्रभाव
- 4.8 कॉरपोरेट जगत और कृषि
- 4.9 किसान आत्महत्या
- 4.10 भ्रष्ट शासन तंत्र और किसान
- 4.11 कृषक से मजदूर तक
- 4.12 महिला किसान
- 4.13 सरकारी योजनाओं का किसान-जीवन पर प्रभाव

प्रस्तावना

भारत विविध संस्कृतियों और सभ्यताओं वाला देश है। यहाँ समय-समय पर राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उथल-पुथल होता रहा है। किसी भी देश की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था तभी सुदृढ़ या मजबूत रहती है जब उस देश की आर्थिक-व्यवस्था सुदृढ़ या मजबूत होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है। कृषि का कार्य भारत की आधी आबादी से ज्यादा ग्रामीण जनता करती है। जिसकी वजह से प्रधानतः भारत गाँवों का देश कहलाता है। कृषि उत्पादन का कार्य करने वाली ग्रामीण जनता को सामान्यतः किसान कहा जाता है। किसान कौन है ? कैसा है ? कहाँ रहता है ?

इस सन्दर्भ में किसान आन्दोलन के पुरोधा स्वामी सहजानंद सरस्वती ने भारतीय किसान को ही अपना सब कुछ माना है, इसका उनके द्वारा एक सभा में दिए गए वक्तव्य से मिलता है- “मैं ईश्वर को ढूँढने चला था। मैंने उसे जंगलों और पहाड़ों में ढूँढा। ग्रंथों और पुस्तकों में भी कम नहीं ढूँढा। मगर मैं उसे नहीं पा सका। अगर वह कहीं मुझे मिला तो किसानों में। किसान ही मेरे भगवान हैं और उन्हीं की पूजा किया करता हूँ। और यह तो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई मेरे भगवान का अपमान करे।”⁹¹ किसान तमाम चिंताओं को लिए दिन-रात कड़ी मेहनत करता रहता है। भारतीय किसान अत्यंत परिश्रमी और संघर्षशील है। आज देश किसान आन्दोलन और कर्ज माफी की मांग के दौर से गुजर रहा है। कहीं-न-कहीं किसान अपनी समस्याओं को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं।

किसान श्रमशील समाज की केवल आर्थिक इकाई ही नहीं है बल्कि वह सांस्कृतिक एवं वैचारिक इकाई भी है। वर्तमान समय में भारतीय किसानों की हालत चिंताजनक है। किसान किसे कहते हैं ? तथा इनकी कितनी श्रेणियाँ हैं ? इस सन्दर्भ में इतिहासकार इरफान हबीब लिखते

⁹¹अभिनव कदम अंक-26, (दिसम्बर-2011 मई-2012), पृष्ठ संख्या : 60

हैं -“किसान की एक तथ्य परक परिभाषा वांछनीय है। हालांकि सामाजिक रूप से यह कठिन कार्य है। मेरे मत से किसान का अभिप्राय है - एक ऐसा व्यक्ति जो स्वेच्छा से खेती को अपनी जीविका के साधन के रूप में अपनाता हो तथा कृषि कर्म में अपने औजारों के साथ अपने परिश्रम के श्रम का इस्तेमाल करता हो। जहाँ तक इस परिभाषा का सम्बन्ध है, वह मार्क्सवादी तथा चयानोव दोनों को ही स्वीकार्य होगी किन्तु उक्त परिभाषा के अंतर्गत भाड़े के श्रम की सीमा भूमि पर नियंत्रण पर विचार नहीं किया गया है। ज्यों ही इन पर विचार किया जाएगा किसान विभिन्न श्रेणियों में विभक्त हो जाएंगे। उदाहरण के लिए मार्क्सवादी विचारक किसानों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करेंगे -

1. धनी किसान - जो भाड़े के श्रम का बहुत अधिक इस्तेमाल करता हो।
2. मध्यवर्ती किसान - जो मुख्यतः अपने परिवार के श्रम का इस्तेमाल करता हो।
3. गरीब किसान - जिसके पास इतनी भूमि नहीं होती है कि वह अपने परिवार के समूचे श्रम को खपा सके।”⁹²

भारत देश में विशेष रूप से उत्तर भारत में किसानों को चार श्रेणियों में बाँटकर देखा जा सकता है।

1. उच्चवर्गीय किसान
2. मध्यवर्गीय किसान
3. निम्नवर्गीय किसान
4. भूमिहीन किसान या गरीब मजदूर किसान

उच्चवर्ग के किसानों के पास जमीनें काफी मात्रा में होती हैं जो स्वयं खेती नहीं करते बल्कि दूसरे लोगों से खेती करवाते हैं। मध्यवर्ग के किसानों के पास 10 से 20 एकड़ जमीनें होती

⁹²भारतीय इतिहास में मध्यवर्ग, इरफ़ान हबीब, पृष्ठ संख्या : 69

हैं। इस वर्ग का किसान स्वयं खेती करता है और जरूरत पड़ने पर मजदूरों से खेती करवाता है तथा निम्नवर्ग के किसानों के पास जमीनें बहुत कम होती हैं या तो जमीनें होती ही नहीं हैं। जमीन ही इनके लिए सबकुछ है। इनका सारा का सारा परिवार खेती पर ही निर्भर रहता है। गरीब मजदूर किसान के पास जमीन की एक भी धूर नहीं रहती वह दूसरों के ही खेतों में काम करता है या समय मिलने पर शहरों और कस्बों में जाकर मजदूरी का काम करता है जिससे उसके परिवार को खाने की व्यवस्था हो सके।

गरीब मजदूर किसान एक निश्चित समय के लिए जमींदारों से जमीन लेकर खेती करता है। उत्तर भारत में अक्सर यह देखा गया है कि भूमिहीन किसान $\frac{1}{2}$ खेती करते हैं। जिसे उनकी भाषा के 'अधिया' की खेती कहते हैं। गरीब मजदूर किसान सबसे ज्यादा मेहनती होता है। उसके अन्दर चाह बनी रहती है कि ज्यादा से ज्यादा फसलों का उत्पादन करे क्योंकि उस उत्पादित फसलों में से उसे आधा भाग मिलेगा। औद्योगिक क्रांति और भूमंडलीकरण के प्रभाव से आज खेतों में काम करने वाले श्रमिकों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। श्रम का स्थान कृषि कार्य के नवीन उपकरणों ने ले लिया। जिसकी वजह से यह वर्ग पूरी तरफ खेती से दूर होता जा रहा है।

भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। भारत का वास्तविक रूप गाँवों में ही देखने को मिलता है। भारतीय कला, संस्कृति और सभ्यता का यथार्थ रूप गाँवों में ही दिखाई देता है। गाँवों में रहने वाले अधिकतर व्यक्ति खेती का कार्य करते हैं। इनकी मुख्य जीवन शैली खेती पर ही निर्भर रहती है। गाँवों की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के निर्माण में किसानों की बहुत बड़ी भूमिका रहती है। किसान-जीवन के अंतर्गत किसानों के केवल आर्थिक पक्ष को ही विश्लेषण करना नहीं है बल्कि उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पक्षों को भी दिखाया जाता है। स्वतंत्रता पूर्व से ही हिंदी कथा साहित्य में किसान-जीवन पर केन्द्रित साहित्य लिखने का सिलसिला जारी रहा है। हाँ यह बात दूसरी है कि किसान-जीवन पर आधारित लेखन कार्य

छिट-पुट ही होता था। गिने-चुने लोगों का ही ध्यान इस तरफ गया है। उन्होंने गाँव जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियों पर लेखन कार्य किया है। इन लेखकों के लेखन में ग्रामीण-जीवन, ग्रामीण-प्रकृति और ग्रामीण-संस्कारों को समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती हैं।

हिंदी उपन्यासों में किसान-जीवन को लेकर आलोचक मैनेजर पाण्डेय 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' में लिखते हैं-“भारतीय उपन्यास का स्वतन्त्र रूप तब विकसित हुआ जब उपन्यास रचना के केंद्र में भारतीय किसान-जीवन आया, तभी वह यथार्थवाद विकसित हुआ जो राष्ट्रीय जागरण का अभिन्न अंग था। किसान-जीवन से जुड़कर ही भारतीय उपन्यास की सच्ची भारतीयता विकसित हुई और उपन्यास राष्ट्रीय जीवन की महागाथा का प्रतिनिध साहित्य रूप बना। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किसान भारतीय समाज का मेरुदंड पहले भी था और आज भी है। किसान भारतीय चेतना का मूर्तरूप और औपनिवेशिक व्यवस्था का सर्वाधिक शोषित और उत्पीड़ित वर्ग भी था। उस समय भारतीय किसान एक ओर साम्राज्यवादी शोषण का शिकार था और दूसरी ओर सामंती लूट का। किसान-जीवन के उपन्यास जुड़ने का अर्थ का भारतीय समाज की समग्रता के केंद्र से जुड़कर उसकी इतिहास प्रक्रिया में सक्रिय विभिन्न शक्तियों को पहचानना।”⁹³ नवउदारवादी दौर के ग्रामीण जीवन की विशेषताओं को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है -:

4.1 पारंपरिक कृषि में परिवर्तन

पृथ्वी की संरचना के बाद से ही कृषि का विकास समयानुसार होता रहा है। ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रंथों में इसके पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं कि वैदिक काल से ही मनुष्य खेती करता रहा है। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्यों की जीवन-शैली आज के मनुष्यों के समान नहीं थी।

⁹³साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या : 286

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य यायावर जीवन व्यतीत करता था और भोजन के लिए पशुओं का मांस या यदा-कदा पृथ्वी से स्वतः उत्पन्न अन्न का उपभोग करता था। मानव जीवन के बौद्धिक विकास के साथ-साथ कृषि का भी विकास हुआ होगा। परंपरागत खेती से तात्पर्य यह है कि वह खेती जो भारतीय समाज में प्राचीन काल से होती आ रही है। परंपरागत खेती या कृषि में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया जाता था बल्कि जैविक खादों का प्रयोग किया जाता था। परंपरागत कृषि में फसलों की वृद्धि के लिए जैविक खेती पर अधिक जोर दिया जाता है। परन्तु निजीकरण, बाजारवाद तथा अनेक कृषि क्रांतियों के प्रभाव से कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से फसल उत्पादन में बेशक काफी वृद्धि हुई है परन्तु कृषि वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं के अनुसार रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग से धीरे-धीरे भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही है और कृषि लागत भी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

भारत में जैविक खेती की परंपरा का महत्त्व आरम्भ से ही रहा है। पूर्णरूप से जैविक खादों पर आधारित फसल पैदा करना ‘जैविक खेती’ कहलाता है। इसे ‘जीरो बजट खेती’, ‘कुदरती खेती’, प्राकृतिक खेती और वैकल्पिक खेती के नामों से भी जाना जाता है। कुदरती खेती बिना कर्ज और बिना जहर की खेती होती है। भारत में लगभग एक हजार ई० पूर्व तक पौधे उगाने, पशु पालने और कृषि करने का काम प्रारंभ हो गया था। दोहरा मानसून होने की वजह से एक ही वर्ष में दो बार फसल उगाई जाती थी। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वैसे तो भारत में कृषि प्राचीन काल के दौर से की जा रही है। आजादी के बाद किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कृषि में बहुत बदलाव हुए। परंपरागत कृषि के अंतर्गत वह किसान जो आजादी से पूर्व या उससे भी पहले खेतों में उत्पादन का कार्य करते थे। खेतों में बीज बोने से लेकर जैविक खादों का प्रयोग तथा फसलों को कीट-पतंगों से बचाने के लिए देशी

दवाओं का प्रयोग करते थे। रसायनयुक्त खेती भूमि को बंजर तो बना ही रही है साथ ही खेती में लागत भी बहुत होती जा रही है इसीलिए इसके विकल्प के रूप में प्राकृतिक खेती ही है जो काफी हद तक किसानों की समस्याओं को दूर कर सकती है।

कुदरती खेती के सन्दर्भ में प्रो० राजेन्द्र चौधरी लिखते हैं-“कुदरती खेती अपनाने का अर्थ केवल हरित क्रांति से पहले के तरीकों, अपने बाप-दादा के तरीकों पर वापिस जाना नहीं है। इन पारम्परिक तरीकों को अपनाने के साथ-साथ पिछले 40-50 वर्षों में हासिल किए गए ज्ञान और अनुभव का भी प्रयोग किया गया है। कुदरती खेती अपनाने का उद्देश्य यह है कि किसान को सम्मानजनक और सुनिश्चित आमदनी मिले, छोटी जोत की खेती भी सम्मानजनक रोजगार और जीवन दे, हर इंसान को स्वास्थ्यवर्धक और पर्याप्त भोजन मिले। इसके अलावा पर्यावरण संतुलन में भी कुदरती खेती का महत्वपूर्ण योगदान है।”⁹⁴

वर्तमान समय में केंद्र और राज्य सरकारों ने भी प्राकृतिक खेती या जैविक खेती करने को प्रोत्साहित कर रही है। कृषि चिंतकों और कृषि वैज्ञानिकों ने भी जैविक खेती को अपनाने के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से इसे लाभदायक बता रहे हैं। हिंदी उपन्यास जगत में किसानों को जैविक खेती अपनाने, इस खेती से नफा और नुकसान तथा कृषि वैज्ञानिकों के समक्ष आने वाली समस्याओं को आधार बनाकर अनंत कुमार सिंह ने ‘ताकि बची रहे हरियाली’ उपन्यास लिखा है जो वर्मीकम्पोस्ट के सहारे कृषि को बढ़ावा देने की ओर संकेत है। जैविक खेती वास्तविकता यह है कि जैविक खेती होने से रासायनिक खादों और कीटनाशकों का बाजार बंद हो जाएगा।

⁹⁴कुदरती खेती, राजेन्द्र चौधरी, पृष्ठ संख्या : 8

4.2 गायब होते बैल और गाँव

नवउदारवाद के दौर में गाँव बहुत तेजी से बदल रहे हैं। गाँव और कस्बों के गली-मुहल्ले, सभी का शहरीकरण हो रहा है। जिसकी वजह से ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति में भी अभूतपूर्व बदलाव आया है। किसी समय किसान वर्ग कृषि कार्यों के साथ ही साथ अधिकाधिक मात्रा में पशु पालन किया करता था। पशु हमेशा से किसान का सहयोगी रहे हैं। वर्तमान समय में किसानों में पशु पालने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है। पशु पालने से किसानों के अनेक लाभ होता था। पहली बात यह है कि ये पशु या जानवर किसानों के कार्यों में बहुत सहायता करते थे। खेत जोतने के अतिरिक्त फसल कटने के बाद खलिहान से अन्न और भूषा लाये जाने में आसानी होती थी। इसके अलावा ये पशु किसानों के खाने पीने में भी सहायक हुआ करते थे। गाँवों में दूध, दही और घी पशुओं से प्राप्त किया जाता था।

आधुनिकीकरण और कृषि-क्रांति होने से किसानों की संस्कृति में जो बदलाव आ रहा है उसे आलोचक चौथीराम यादव काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'रेहन पर रघू' का हवाला देते हुए लिखते हैं कि- "किसानों के हल-बैल को अप्रासंगिक बनाते हुए उनके स्थान पर ट्रैक्टर का आ जाना ऐसा बदलाव था जिसने किसानों की कमर ही तोड़ दी। जब वे किसान से खेतिहर बनते जाने को लाचार थे। कृषि-कर्म, कृषि उद्योग में तब्दील होने लगा और खेती ठेके पर चली गई। कृषि उद्योगों के अवसर तो सभी के लिए थे पर अवसर का लाभ वही उठा सकता था जिसके पास संसाधन थे पहाड़पुर के ठाकुर इस अवसर का लाभ उठाने में चूक गए और इस सुनहले अवसर को लपक लिया दसरथ राउत के बेटे जसवंत ने जो गाँव में लुच्चा, लफंगा और लतखोर

समझा जाता था । लिहाजा एक घरघराता हुआ ट्रैक्टर गाँव में आता हुआ दिखाई दिया और दशरथ राउत के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया ।”⁹⁵

जैविक खादों के प्रयोग से रासायनिक खादों की अपेक्षा फसलों का उत्पादन तो कम होता था परन्तु जमीन की उर्वरा शक्ति कभी नष्ट नहीं होती थी । हालांकि एक ही जगह पर एक ही किस्म की खेती बार-बार करने से भूमि की उर्वरा शक्ति कम होने की संभावना रहती थी जिसके लिए किसान उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए कुछ दिन के लिए परती छोड़ देते थे । जिसकी वजह से उस जगह पर पुनः औसतानुसार फसलों का उत्पादन होने लगता था ।

गाँव अब गाँव नहीं रह गया है । नवउदारवाद और बाजारवाद का इतना ज्यादा प्रभाव पड़ा है कि छोटा से छोटा गाँव भी शहरी रंगों में रंगा जा रहा है । पूँजीपतियों के द्वारा गाँव के किसानों की जमीनों को हथियाया जा रहा है । गाँव के बदलते स्वरूप का एक चित्र काशीनाथ सिंह ने ‘रेहन पर रघू’ उपन्यास में इस प्रकार खींचते हैं- “काफी समय लग गया रघुनाथ को घर पर रहने की आदत डालने में । वे रहे तो गाँव में ही, लेकिन गाँव के नहीं रहे । गाँव ही वह नहीं रहा तो वह गाँव के क्या रहते ? पहाड़पुर जाना जाता था अपने बगीचों, बँसवार और पोखर के कारण —जहाँ चिड़ियों की चहचहाहट और गाय भैसों के रंभाने और बैलों की घंटियों की टनटनाहत से बस्तियाँ गूँजती रहती थी लेकिन अब पेड़ कट गए हैं, बँसवार साफ हो गई थी और पोखर धान के खंधों में बँट गई थी । बगीचे के बीच से एक नहर गई थी जिसके किनारे एक प्राइमरी स्कूल खुल गया था उसी के बगल में दवाखाना के लिए जमीन भी घेर ली गई थी ।”⁹⁶

गाँव के इस बदलाव से भारतीय ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन भी में बहुत परिवर्तन दिखाई पड़ता है । ग्रामीण संस्कृति और नगरीय संस्कृति के बीच एक टकराहट सी दिखाई पड़ती है ।

⁹⁵चौपाल, अर्धवार्षिकी, सं. कामेश्वर प्रसाद सिंह, अंक-1, 2013 पृष्ठ संख्या : 32

⁹⁶रेहन पर रघू, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ संख्या : 61

‘रेहन पर रघू’ उपन्यास के नायक रघुनाथ को शहर में कुछ दिन जीवन व्यतीत करने के बाद वापस गाँव आना कृषि जीवन से जुड़ाव की चेतना की उपलब्धि है। ‘भूमंडलीकरण के दौर में गाँव घर’ शीर्षक लेख में ऋषिकेश राय लिखते हैं-“भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की त्रयी ने आर्थिक जीवन का अधिग्रहण करने के बाद संस्कृति को भी अतिक्रमित करना शुरू कर दिया है। ‘काशी का अस्सी’ में जहाँ नगरीय जीवन पर उसके दुष्प्रभावों की कथा है तो ‘रेहन पर रघू’ में इसका ग्रामीण वृत्तांत। भूमंडलीकरण की उत्तर आधुनिक संस्कृति की छाड़न ने ग्रामीण सामुदायिकता को विखंडित कर उसकी संस्कृति का गंभीर विरूपण कर दिया है। सामंती अवशेषों को ढोनेवाला ग्रामीण समाज, उपनिवेशवाद की चमक में बुरी तरह चौधियाया हुआ है। तुच्छ लोभ-लाभ के विकट आकर्षण में फँसा वह निकटतम को भी तबहा करने में तनिक भी नहीं हिचकता है। सामंती और पूँजीवादी मूल्यों की टकराहट ने कृषि संस्कृति की चूलें हिला दी हैं। परिदृश्य में छल, हिंसा, अपराध और किसानों की आत्महत्याएं हैं।”⁹⁷

4.3 बाजारवाद का प्रभाव और विदेशी बीजों का प्रयोग

भारतीय किसानों द्वारा धीरे-धीरे पारंपरिक बीजों का प्रयोग बंद होता जा रहा है। बाजारवाद के प्रभाव ने किसानों को बाजार पर निर्भर बना दिया। गेहूँ, बाजरा, चना, मटर, आलू और टमाटर जैसे सभी फसलों के बीज बाजार में आसानी से मिलने लगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन बीजों के प्रयोग से फसलों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी नहीं हुई, बेशक हुई। परन्तु इसका एक बड़ा नुकसान यह दिखाई दिया कि इन बीजों को खेतों में एक बार बुआई करने के बाद उसे दुबारा यानी अगले सीजन में प्रयोग नहीं कर सकते। वर्तमान समय में किसान खेतों में बीज बोने के लिए नए-नए हाइब्रिड बीजों को बाजार से खरीद कर लाते हैं जो काफी महँगे होते हैं।

⁹⁷चौपाल, अर्धवार्षिकी, सं. कामेश्वर प्रसाद सिंह, अंक-1, 2013, पृष्ठ संख्या : 156

सबसे खास बात यह है कि इन बीजों को हम पुनः बीज के रूप में नहीं प्रयोग कर सकते हैं। फसलों की सिंचाई से लेकर कीटनाशक दवाओं तथा आधुनिक कृषि उपकरणों के प्रयोग से किसानों को अत्यधिक खर्चों का सामना करना पड़ता है। प्राचीन काल और मध्यकाल का किसान उत्पादित फसलों में से ही बीज के रूप में अपने घरों में सुरक्षित रखता था और समय आने पर खेतों में बुआई करता था। किसान गेहूँ, धान और अनाज की फसल तैयार होने के बाद उसमें से मोटे और अच्छे अनाज अलग रख लिया करते थे। इन बीजों को सुरक्षित रखने के लिए आज की तरह कोल्डस्टोर की सुविधा नहीं थी फिर भी इन बीजों को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक किसान के घर में जमीन के अन्दर गोलानुमा आकार बनाकर रखा जाता था। कीड़े मकोड़ों से बचाने के लिए नीम की पत्तियों का प्रयोग किया करता था।

किसान जिस जगह पर अन्न को सुरक्षित रखते थे उस स्थान को 'बखारी' कहा जाता था। आज 'बखारी' का स्थान अत्याधुनिक निर्मित प्लास्टिक या स्टील के बरतनों ने ले लिया। किसानों को घर में ही बीज मिल जाता था इसलिए इनको बाजार से दूर-दूर का नाता नहीं होता था। भूमंडलीकरण की जालसाजी दौड़ में आज हालत यह हो गई है कि किसान को सबकुछ बाजार से ही लाना पड़ता है। मॉन्सैंटो और कारगिल जैसे विदेशी बीजों पर किसान की निर्भरता बढ़ती जा रही है। किसान को कृषि के खर्चों के अतिरिक्त और भी खर्च होते हैं। बच्चों की पढ़ाई, लिखाई, शादी-ब्याह, नेकी-बदी के समय होने वाले खर्चों के लिए मजबूरन महाजनों या सूदखोरों से कर्ज लेना पड़ता था। दिन प्रति दिन बढ़ती महँगाई और कर्ज की मार से किसानों की स्थिति दिन-ब-दिन खराब होती जा रही है।

दरअसल भारतीय किसान ज्यादा से ज्यादा मानसून पर निर्भर रहा है। अगर सामान्य वर्षा हुई तो फसल की पैदावार अच्छी होगी अन्यथा घर में जो भी था वह भी चला गया। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से पृथ्वी का हो रहा लगातार दोहन और जंगलों की कटाई से

पर्यावरण असंतुलित हो रहा है। यही वजह है कि आज बिन मौसम बरसात हो रही है। औसत से ज्यादा गर्मी या सर्दी पड़ना इसके दुष्परिणाम हैं। प्रकृति की इन परिवर्तनकारी घटनाओं का चित्रण हिंदी कथा साहित्य में होता रहा है। इस सबके के कारण किसानों का जीना मुश्किल हो गया है।

उपन्यासकार राजू शर्मा अपने उपन्यास ‘हलफनामे’ में लिखते हैं- “यह कैसे हो सकता है, यह मन बहलाने की बात है, जब सूखा और अकाल पड़ता है तो पोखर, तालाब सब सूख जाते हैं एक बूँद पानी नहीं रहता। रहेगा, कम रहे पर रहेगा। पानी की अधिकता भी अच्छी नहीं, किसान के लिए मार एक सी है, अकाल हो या पनकाल। मुझे पता है गाँव में सात तलैया हैं। एक छोटा और एक बड़ा तालाब। इस तरह नौ हुए, और कितने नए, पुराने कुँए, पता है ?”⁹⁸ प्रायः यह देखने को मिलता है कि कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि होती रहती है। इस अतिवृष्टि और अनावृष्टि का दुष्प्रभाव सबसे ज्यादा किसानों को झेलना पड़ रहा है। स्थिति यह होती है कि कहीं बिना पानी के फसल सूख रही है तो कहीं बाढ़ से फसलें बर्बाद हो रही है। मध्यकाल में किसान सिंचाई के साधन के रूप में वर्षा के अतिरिक्त झरना, कुआँ और तालाबों का प्रयोग किया करता था। गरीब किसानों को तो वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता था क्योंकि वह साधन विहीन था।

4.4 सामूहिक श्रम का हास

किसान श्रमशील और परिश्रमी होता है। वह अपने श्रम का भरपूर प्रयोग खेतों की जुताई-बुआई तथा खेतों के काम-काज में ही लगाया करता है। एक अच्छी बात यह है कि कभी किसान श्रम का सामूहिक योगदान किया करते थे। आवश्यकता पड़ने पर गाँव के सभी किसान मिलकर कार्य किया करते थे जैसे- कुआँ तैयार करना, खेतों में बीजों का रोपण करना, नेकी और बदी के समय एक दूसरे के कामों में सहायता करना आदि। भारत में कृषि उत्पादन बढ़ाने और किसानों की स्थिति में सुधार के लिए ‘हरित क्रांति’ जैसी कई क्रांतियाँ हुईं। जिससे उत्पादन में

⁹⁸हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 124

तो वृद्धि हुई पर कृषकों की आर्थिक स्थिति में कोई खास सुधार नहीं दिखाई दिया। भारत में उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के आने के बाद नए-नए उपकरणों के प्रयोग से खेती होने लगी। इस समय किसानों में एक बहुत बड़ा परिवर्तन यह दिखाई दिया कि वे पशु पालना धीरे-धीरे बंद कर दिए। जिसका जिक्र ‘बेदखल’ उपन्यास में कमलाकांत त्रिपाठी इस प्रकार करते हैं- “बारिश ठीक से हो गई तो दूसरों के हल-बैल के सहारे एक फसल हो जाती थी नहीं तो वही आकाश-वृत्ति। पिता महीने दो महीने में घूम फिरकर लौटते तो उनके झोले में आटा-दाल की छोटी-छोटी पुटकियाँ होती थीं। कभी-कभी वह भी नहीं। बीच-बीच में उपवास की नौबत आ जाती थी। ऊपर से लगान की चिंता सिर पर सवार रहती थी।”⁹⁹

कृषि क्रांतियाँ होने से कृषि संबंधी सभी कार्य यंत्रों द्वारा होने लगा। जिसमें पशुओं की कोई जगह नहीं रह गई। लेकिन छोटे जोत के किसान अभी भी पशु पालते हैं। मशीनी कृषि का फायदा उच्चवर्गीय किसानों को ही हुआ। छोटे जोत के किसान या गरीब किसानों के लिए यह नहीं मिल पाई क्योंकि इनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि इन मशीनों को वे खरीद सकें। यदि कभी उन्हें इन उपकरणों की ज्यादा जरूरत पड़ती थी तो वह किराये पर लाता था। इसके लिए किसान को कीमत चुकानी पड़ती थी। किसान को गन्ना बोने के लिए ज्यादा से ज्यादा आदमियों की जरूरत पड़ती है एक एकड़ खेत में कम से कम दो हल चलाये जाते थे। इसके लिए जितने आदमी रहे उतनी ही सहूलियत रहती है ऐसे समय में उत्तर भारत के किसानों में परस्पर सहयोग देखने को मिलता है। लेकिन आज तकनीकी यंत्रों से एक या दो आदमी ही 10 आदमियों का काम कर रहा है। अब सामूहिकता की जगह ही नहीं रही।

नवउदारवाद के समय किसान एक मशीन बनता जा रहा है। यह सब विज्ञान की देन है। विज्ञान ने हमें एक तरफ बहुत कुछ दिया है तो दूसरी तरफ मनुष्य से उसकी मनुष्यता को छीन

⁹⁹बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 7

लिया है। मानवता का पूरी तरह से हनन हो गया है। भारत में कॉरपोरेट खेती होने से किसानों के श्रम के योगदान की सामूहिकता धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। किसानों के अन्दर मानवीयता का बहुत तेजी से हास होना आरंभ हुआ है। कृषि क्षेत्र में नई-नई तकनीकी का प्रयोग होने से मजदूर किसान या गरीब किसान पूरी तरह बेकार हो गए हैं।

“सन 2015 में सरकार द्वारा देश में जैविक खेती को बढ़ावा देने की पहल परंपरागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई) की शुरूआत की गई थी। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने 2016 के अपने बजट के भाषण में इस योजना के कार्यान्वयन करने के पक्ष में जोरदार समर्थन किया। इस योजना के अनुसार, किसानों को समूहों बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा और देश के जिन बड़े-बड़े क्षेत्रों में जैविक खेती की जाती है, उन तरीकों को समझने के लिए, उन्हें वहाँ पर जाना पड़ेगा। इस योजना का लाभ उठाने के लिए पी के वी वाई के तहत प्रत्येक समूह में 50 किसान होने चाहिए और उनके पास जैविक खेती करने के लिए कम से कम 50 एकड़ जमीन का कुल क्षेत्रफल तैयार होना चाहिए। इस योजना में नामांकित प्रत्येक किसान को सरकार द्वारा तीन साल तक 20,000 रुपये प्रति एकड़ प्रदान किए जाएंगे। इस रकम का उपयोग जैविक बीज प्राप्त करने, फसलों की कटाई और स्थानीय बाजारों में उपज ले जाने वाले परिवहन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।”¹⁰⁰ सरकार द्वारा किसानों की स्थिति सुधारने के लिए कई योजनाएँ बनाई जा रही हैं फिर भी किसान आत्महत्या और पलायन जैसी समस्याएँ कम नहीं हुई इसका मुख्य कारण किसानों की आर्थिक स्थिति में हो रही गिरावट है।

4.5 पलायन और विस्थापन की समस्या

वर्तमान समय में खेती करना चुनौतीपूर्ण और चिंताजनक हो गया है क्योंकि किसानों का कृषि से पलायन बहुत तीव्र गति से हो रहा है। पलायन के कारण कई हैं जैसे-अकाल-सूखा, महँगे

¹⁰⁰<https://hindi.mapsofindia.com/my-india/india/paramparagat-krishi-vikas-yojana> 2 Nov 2017

होते जा रहे खाद्य-बीज, बदहाल सिंचाई व्यवस्था आदि। इन तमाम समस्याओं से तंग आकार किसान खेती-बाड़ी करना छोड़ रहे हैं, जिसके कारण देश के किसानों की संख्या लगातार घटती जा रही है, जो चिंता का विषय है। हाल ही एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश में मूल किसानों की संख्या में रोजाना 2000 से अधिक की कमी हो रही है। कृषि विशेषज्ञों के अनुसार पलायन ऐसे ही चलता रहा तो देश गंभीर खाद्यान्न संकट में फँस सकता है।

आमतौर पर भारत को एक कृषि प्रधान देश मानते हुए कहा जाता रहा है कि भारत की 53 फीसदी जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, लेकिन बदले परिदृश्य में इससे यह अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए कि ये सभी मूल किसान हैं। एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार बड़ी संख्या में किसान कृषि से विमुख होते हुए **खेतिहर मजदूर** बन कर रह गए हैं या जीविकोपार्जन के लिए उद्योग धंधों या सेवा क्षेत्रों की तरफ मुड़ गए हैं। **‘पलायन के पथ पर किसान’** नामक लेख में अभिषेक शर्मा लिखते हैं-“2001 से अब तक किसान संख्या में 77 लाख की कमी यदि किसानों की वर्तमान स्थिति पर नजर डाली जाए तो 1991 की तुलना में आज लगभग 1.5 करोड़ किसान कम हुए हैं। वहीं नवीनतम जनगणना आंकड़ों में कहा गया है कि किसानों की संख्या में 2001 से अब तक लगभग 77 लाख से अधिक की कमी हुई है। ऐसे में औसतन रोजाना लगभग 2035 किसान जो कि मूल किसान श्रेणी के हैं कम होते जा रहे हैं और यह स्थिति पिछले 20 वर्षों से लगातार बनी हुई है।¹⁰¹

गाँव से पलायन करने के बाद किसानों और खेतिहर मजदूरों की स्थिति यह है कि कोई हुनर न होने के कारण उनमें से ज्यादातर को निर्माण क्षेत्र में मजदूरी या दिहाड़ी करनी पड़ती है। 2011 की जनगणना के अनुसार हर रोज ढाई हजार किसान खेती छोड़ रहे हैं। भारी संख्या में गाँव से लोगों का पलायन हो रहा है जिसमें से ज्यादातर किसान हैं। सरकार के लाख कोशिशों के

¹⁰¹ http://arganikbhagyoday.blogspot.com/2013/05/blog-post_4982.html 12 may 2013

बाद भी कर्ज के बोझ तले दबे किसानों की आत्महत्या का सिलसिला नहीं रुक रहा है। देश में हर महीने लगभग 70 से अधिक किसान आत्महत्या कर रहे हैं।

उत्तराखण्ड राज्य के बाद जनता ने आस लगाई थी कि अब तो यहां के पानी का उपयोग पहाड़ों के हित में होगा। राज्य सरकार जरूर कोई न कोई ऐसी नीति अमल में लाएगी जिससे यहां के बच्चों को गुणवत्तापरक शिक्षा, जीवन-यापन करने लायक रोजगार और बीमारियों का इलाज करने के लिए समुचित स्वास्थ्य सुविधाएं मिलेंगी। राज्य गठन के 20 वर्ष बीत चुके हैं और पलायन पहले से कहीं अधिक होने लगा है। राज्य अलग होने से पहले लोगों को जो उम्मीद थी वह दम तोड़ती नजर आने लगी। इसके लिए कौन जिम्मेदार हैं वे लोग जो पलायन कर रहे हैं ? या हमारे नीति नियंता, सरकार या सरकार के आईएएस अधिकारी ? निश्चित तौर पर कोई भी इन्हें ही जिम्मेदार मानेगा। लेकिन क्या ये मानेंगे ? यह सारी जिम्मेदारी सरकार पर है कि वह किसानों को सिंचाई जैसी तमाम सुविधाएँ उपलब्ध कराए।

पूँजीवाद, निजीकरण और बाजारवाद का वर्चस्व भारतीय समाज पर स्थापित होने के बाद समाज दो भागों में बंट गया। एक शोषक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग। इन्हीं शोषित वर्ग में गरीब जनता और किसान आती है। किसान जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वह रीढ़ आज खेती-बाड़ी छोड़कर शहरों की ओर रोजी-रोटी के लिए पलायन को विवश हैं। दिन-ब-दिन बढ़ती महँगाई से खेती करने में इतनी लागत बढ़ गयी है कि फायदे की तो बात छोड़िए किसान जितना खेती में अपने घर से लगाता है उसे उतना ही मिल जाए तो बहुत है। बीज बोने से लेकर फसलों की सुरक्षा के लिए कीटनाशकों का छिड़काव का खर्च और सिंचाई का खर्च इतना बढ़ गया है कि वह अपने परिवार को सही से परवरिश नहीं कर पा रहा है।

इन सब समस्याओं को देखते किसान खेती छोड़ना ही अच्छा समझता है। वैश्वीकरण के इस भयावह युग में गाँव की संस्कृति और नैतिक मूल्यों में बदलाव दिखाई दे रहा है। पारंपरिक

शाश्वत मूल्यों को हाशिए पर रखते हुए पाश्चात्य संस्कृति को गाँवों तक पहुँचाया जा रहा है। एक तरफ भारतीय जनता पाश्चात्य संस्कृति को धड़ल्ले से अपना रही है रहना, खाना-पीना सबकुछ उन्हीं के स्टाइल में हो रहा है और दूसरी तरफ गाँव की आत्मा कहे जाने वाले किसान अपनी मूल संस्कृति से पलायन और विस्थापन को विवश हो रहे हैं।

श्रम का महत्त्व अपनी जगह उचित ही होता है वह चाहे शारीरिक हो या मानसिक। किसानों का कृषि के प्रति मोहभंग या पलायन और अन्य व्यापारिक पेशा अपनाने का एक कारण यह भी हो सकता है कि किसानों के जीवन को सम्मान पूर्वक नहीं देखा जाता है। सरकारी नौकरी पेशे वाले व्यक्तियों के मन में खेती का कार्य करना अत्यंत निम्न काम हो सकता है पर वे शायद यह भूल जाते हैं कि जिस दिन से किसान सब्जी और अनाज उगाना बंद कर देंगे तो नौकरी पेशे वाले बाबू जी खायेंगे क्या ?

वास्तव में किसान इस देश का मूल आधार है जिसके आधार पर गाँवों और शहरियों का जीवन चल रहा है। सामाजिक व्यवस्था की इतनी महत्त्वपूर्ण कड़ी होने के बावजूद भी किसान के श्रम के महत्त्व को सम्मानित नहीं समझा जा रहा है। “श्रम से जुड़ा काम सम्मान जनक नहीं है। ना जाने कैसे यह बात प्रचारित हुई और कॉलर को सफेद रखकर किए जाने वाले कामों के प्रति लोगों का रुझान बढ़ा। गांव से होने वाले पलायन के पीछे की एक वजह यह रही होगी कि गांव में रहने वाले लोगों ने विचार किया होगा कि उनके श्रम को सम्मान नहीं मिल रहा। कुल मिलाकर सारी बात श्रम को बेचकर पैसा कमाने तक सीमित है तो जो अधिक पैसे दे रहा है, उसे ही श्रम बेचा जाए। यदि कोई शोध छात्र गंभीरता से पलायन पर पूंजी के महत्त्व को केन्द्र में रखकर अध्ययन करे तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि पलायन भी बढ़ा है।”¹⁰²

102<https://hindi.indiawaterportal.org/node/36432> 11-02-2011, 13: 44

खेती करना जो कभी प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ काम था उसे वर्तमान समय में मजदूरी का नाम बना दिया गया है। राष्ट्रीय सर्वेक्षण विभाग की रिपोर्ट यह बताती है कि देश के लगभग आधे किसान खेती छोड़ देना चाहते हैं। इसी ऊहापोह का चित्रण ‘फाँस’ उपन्यास में संजीव इस प्रकार करते हैं – “तुम ही नहीं, इस देश के सौ में से चालीस शेतकारी आज ही खेती छोड़ दें अगर उनके पास कोई दूसरा चारा हो, 80 लाख ने तो किसानी छोड़ भी दी।”¹⁰³ किसानों के खेती-किसानी के अलावा कोई दूसरा विकल्प नजर नहीं आ रहा है।

पिछले दो दशकों से किसानों के खेती छोड़ने का पहला कारण यह है कि सरकारी योजनाओं का सही तरीके से क्रियान्वयन न होना। चुनाव के समय किसानों के हित में योजनाओं की घोषणा तो बहुत होती है परन्तु वह सिर्फ बातूनी ही होती है। किसानों के पलायन का दूसरा कारण है - कर्ज की अदायगी न कर पाना। वह कर्ज चाहे जमींदार से, साहूकार से या फिर सरकारी बैंकों से ही क्यों न लिया गया हो।

15 फरवरी 2016 में ‘जनसत्ता’ समाचार पत्र में प्रकाशित एक आंकड़े के अनुसार रोजाना ढाई हजार किसान खेती छोड़ रहे हैं। आंकड़े इस प्रकार हैं- “एन.सी.आर.बी. के पिछले पांच सालों के आंकड़ों के मुताबित 2009 में 17 हजार, 2010 में 15 हजार, 2011 में 14 हजार, 2012 में 13 हजार, 2013 में 11 हजार से ज्यादा खेती से जुड़ी तमाम परेशानियों समेत अन्य कारणों से किसानों ने आत्महत्या कर ली है। खेती में लगातार हो रहे घाटे से रोजाना ढाई हजार किसान खेती छोड़ रहे हैं और तो और देश में अभी किसानों की कोई एक परिभाषा भी नहीं है। सवाल यह उठता है कि आने वाले आम बजट में सरकार गाँव खेती और किसानों को इस आर्थिक संकट से उबारने के लिए क्या पहल करेगी ?

¹⁰³फाँस, संजीव पृष्ठ, संख्या : 17

सामाजिक कार्यकर्ता किशन पटनायक ने कहा कि खेती और किसान की वर्तमान दशा के बीच सवाल उठता है कि हकीकत में किसान कौन है ? किसान की परिभाषा क्या है ? क्योंकि वित्तीय योजना के सन्दर्भ में किसान की एक परिभाषा है तो राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो का कोई दूसरा मानदंड है। पुलिस के नजर में किसान की परिभाषा अलग है। उतार चढ़ाव के बीच कृषि विकास दर रफ्तार नहीं पकड़ रही है। कृषि मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक 2012-2013 में कृषि विकास दर 1.2 फीसदी थी जो 2013-14 में बढ़कर 3.7 फीसदी हुई और 2014-15 में घटकर 1.1 फीसदी पर आ गई। पिछले कई सालों में बुआई के रकबे में 18 फीसदी की कमी आई है। उपरोक्त आंकड़े यह बताते हैं कि दिन ब दिन खेती से किसानों का मोहभंग होता जा रहा है।¹⁰⁴

कुल मिलाकर देश एक बड़े सामाजिक और आर्थिक संकट की ओर बढ़ रहा है। जहां कोई खेती नहीं करना चाहता लेकिन भोजन सभी को चाहिए। इस गंभीर मुद्दे पर समय रहते केंद्र और राज्य सरकारों को सजग होने की जरूरत है। नदियाँ प्रारंभ से ही किसानों की सहायक रही हैं, भारत में उद्योग धंधों और मल्टीनेशनल कंपनियों के स्थापित होने से जल, जंगल और जमीन पर बहुत दुष्प्रभाव पड़ा है। पृथ्वी का लगातार हो रहा दोहन और जंगलों की कटाई से पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ा है। धरती का तापमान दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। नदियाँ सूख रही हैं। बड़ी संख्या में नदियों के सूखने से किसानों को सिंचाई की असुविधा होने के कारण खेती से पलायन करना पड़ रहा है। हाल ही में कर्नाटक राज्य में कृष्णा और तुंगभद्रा जैसी नदियों के सूख जाने के कारण अधिकांश किसान खेती से दूर जा रहे हैं।

बुंदेलखंड जैसे क्षेत्र के किसान भी सिंचाई की असुविधा के कारण काफी संख्या में खेती छोड़ रहे हैं। “किसानों के पास अब रोजी-रोटी के लिए कहीं किसी उद्योग में नौकरी हासिल करने

¹⁰⁴जनसत्ता, 15 फरवरी, 2016 पृष्ठ संख्या : 6

के अलावा कोई विकल्प नजर नहीं आ रहा है। पिछले तीन सालों से बुंदेलखंड इलाके में सूखा पड़ने के कारण शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। अब तो कुदरत भी मानों बुंदेलखंड से रूठ गई। और उम्मीदों में सूख गए बुंदेलखंड के आंसू। सूखे के कारण खेती नहीं होती, मजदूरी के लिए उद्योग नहीं हैं, ऐसे में भूख को मात देने का एक ही रास्ता है और वह है- पलायन।”¹⁰⁵

बुंदेलखंड लगातार तीन वर्ष से सूखे की चपेट में है इसका एक बड़ा कारण है कुएँ, बावड़ी, चौपरा और तालाबों पर भू-माफियाओं का अवैध कब्जा है। हालात यह हो गई है कि हर वर्ष लगभग पांच हजार लोग पलायन कर रहे हैं। कई गाँव तो ऐसे हैं जहाँ 25 से 30 फीसदी लोग पलायन कर चुके हैं।

किसानों का पलायन और विस्थापन जैसी समस्याओं का जिक्र राजू शर्मा ने ‘हलफनामे’ उपन्यास में किया है। उपन्यास का पात्र ‘मकई रामप्रसाद’ एक ऐसा साधारण किसान है जो अपने पिता के आत्महत्या किए जाने के बाद खेती बाड़ी छोड़कर शहर चला जाता है। गाँव में सिंचाई की व्यवस्था न होने के कारण वह खेती नहीं करना चाहता है बल्कि शहर जाकर कोई भी छोटा-मोटा काम करना चाहता है। मकई उस गाँव में नहीं जाना चाहता जिस गाँव ने उसके पिता को छीन लिया।

धीरेन्द्र झा ‘खेत मजदूर : हाशिए का बढ़ता हस्तक्षेप’ शीर्षक नामक लेख में लिखते हैं -“ग्रामांचलों के इसी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य के बीच गाँव के गरीबों-खेत मजदूरों पर वैश्वीकरण, उदारीकरण के हमले तेज हुए हैं। विश्व व्यापार नियंत्रित भारतीय कृषि नीति ने जिस कृषि संकट को पैदा किया है। उसकी सबसे ज्यादा मार गाँव के खेत-मजदूरों पर पड़ रही है। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में बेतहाशा कमी आई है। रोजगार के लिए मजदूरों का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है। विकसित कृषि इलाकों तथा गैर कृषि क्षेत्रों में अमानवीय

¹⁰⁵<https://hindi.indiawaterportal.org/node/36432>, 11-02-2011, 13: 44

जीवन स्थितियों में उन्हें रोजगार तो मिल रहा है, लेकिन मजदूरी के दर में लगातार गिरावट आ रही है। आलम यह है कि कृषि के क्षेत्र में पिछड़ा इलाका, बाढ़-सुखाढ़ प्रभावित क्षेत्र सस्ते श्रम के सप्लाई जोन के रूप में विकसित हो रहे हैं।”¹⁰⁶

4.6 रासायनिक उर्वरकों का कृषि पर दुष्प्रभाव

पर्यावरण के बदलते मिजाज और बिन मौसम हो रही बरसात इन सबके कई मूल कारण हैं जिसमें से एक यह है फसलों की बढ़ोत्तरी के लिए किसानों द्वारा रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग करना। रासायनिक उर्वरक क्या है? इसका प्रयोग क्यों किया जाता है? कृषि पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है? भारतीय किसान रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग क्यों करता है? इसकी जाँच-पड़ताल करना आवश्यक है।

भारत में किसानों द्वारा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के सन्दर्भ में विनोद कुमार राय लिखते हैं- “रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध उपयोग से जमीन की उर्वरा शक्ति क्षीण हो रही है। वहीं यह पर्यावरण असंतुलन बढ़ाने की भी वजह बन रही है। 60 के दशक में हुई हरित क्रांति की शुरुआत के साथ ही देश में रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक व संकर बीजों के इस्तेमाल में इजाफा हुआ। केंद्रीय रासायनिक और उर्वरक मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार 1950-51 में भारतीय किसान मात्र सात लाख टन रासायनिक उर्वरक का प्रयोग करते थे। जो अब कई गुणा बढ़कर 310 लाख टन हो गया है। इसमें 70 लाख टन विदेशों से आयात किया जाता है। निश्चित ही बढ़ रहे रासायनिक उर्वरक के प्रयोग से पैदावार भी बढ़ी है, पर खेत, खेती और पर्यावरण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।”¹⁰⁷

¹⁰⁶हंस पत्रिका, अगस्त 2006 पृष्ठ संख्या : 124

¹⁰⁷<https://www.jagran.com/bihar/katihar-13225960.html>, 28Nov 2015, 07:15PM

खाद्यान्न सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए 'हरित क्रांति' के दौरान रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध इस्तेमाल किया गया। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के साथ-साथ रासायनिक कीटनाशकों का भी भारी मात्रा में प्रयोग किया गया। अत्यधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के प्रयोग से खाद्यान्नों की पैदावार में तो बढ़ोत्तरी हुई परंतु भूमि की उर्वरा शक्ति पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। मृदा संरचना में भी अनेक ऋणात्मक दुष्प्रभाव दिखाई दे रहा है। जाहिर है कि इसकी उर्वरता और संरचना को लम्बे समय तक बचाये रखना आज हमारे लिए एक चुनौती है।

आधुनिक खेती के नाम पर रासायनिक खाद्य का उपयोग पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ रहा है। किसान अधिक उत्पादन की चाह में बेधड़क रासायनिक खाद का इस्तेमाल न केवल धान, मक्का बल्कि सब्जियों के लिए भी कर रहे हैं। रासायनिक खाद के उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति तो प्रभावित हो ही रही है साथ ही मानव शरीर पर भी इसका हानिकारक प्रभाव पड़ रहा है। विभिन्न कंपनियों ने किसानों को रासायनिक खाद की ओर आकर्षित करने के लिए इसकी उपयोगिता बताते मुफ्त में इसका वितरण किया।

जब एक बार उपयोग किया तो इसकी जरूरत हमेशा किसान महसूस करने लगा और अब तो रासायनिक खाद्य के लिए किसानों में ही आपस में मारामारी बनी हुई है। रासायनिक खाद्य के इस्तेमाल का दुष्प्रभाव अब गाँव में दिखने लगा है। गाँव में चारागाह की कमी के कारण मवेशियों की संख्या में भी कमी हुई है, जिसके कारण गोबर नहीं मिल पाता। किसानों को रासायनिक खाद से होने वाले नुकसान की जानकारी है, लेकिन फिर भी लालचवश इसका उपयोग करते आ रहे हैं।

भारत दुनिया में कृषि रसायनों का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यहां रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से जमीन की गुणवत्ता और उर्वरता घट रही है। इनके दुष्प्रभावों से

मनुष्य, पशु-पक्षी, पानी और पर्यावरणीय जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है। इन कीटनाशकों से खेती के लिए फायदेमंद पर जीव-जंतु समाप्त हो रहे हैं। किसानों का मित्र कहे जाने वाला जन्तु केंचुआ खेतों में बहुत कम दिखाई देते हैं और मानव स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ रहा है। आए दिन तरह-तरह की नई बीमारियाँ का इजाफा हो रहा है। पौधे और शाक-सब्जियों में इन कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से खाने योग्य नहीं रहीं। फिर भी लोग इन खाद्य सामग्री के रूप में जहर खा रहा है। इन दवाओं के छिड़काव से खरपतवार और पशुओं के खाने योग्य घास भी जहरीली हो रही है। जिसे खाने से जानवरों को बहुत नुकसान हो रहा है। जिससे जानवरों में भी अनेक प्रकार की बीमारी उत्पन्न हो रही है। पिछले कुछ वर्षों से पक्षियों पर इसका बहुत दुष्प्रभाव दिखाई दे रहा है।

बहुत सारी पक्षियों की प्रजाति ही समाप्त हो गई है। मृत जानवरों के मांस खाने वाले पक्षी अब यदा-कदा ही दिखाई देते हैं। उनकी भी प्रजातियाँ अब विलुप्त हो गई हैं। महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे राज्यों में बीटी बीजों के प्रयोग से किसानों की स्थिति भयावह हो गई है। नगदी फसल जैसे – गन्ना और कपास के उत्पादन करने से महाराष्ट्र राज्य के किसानों को उचित मूल्य न मिलना, मौसम के मार और कर्ज की अदायगी न कर पाने के कारण अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर रहे हैं। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से कृषि और किसानों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को हिंदी लेखकों ने बहुत ही बारीकी से चित्रित किया है।

कथाकार **संजीव** ने ‘**फाँस**’ उपन्यास में महाराष्ट्र राज्य के यवतमाल जिले को आधार बनाकर भारत के किसानों की जमीनी सच्चाईयों को बयां किया है। संजीव ने इस उपन्यास में कपास की खेती करने वाले किसानों के दुःख-दर्द को अभिव्यक्त किया है। सूखा या बाढ़ से फसलों का बर्बाद होना तथा तैयार हुई फसलों का रद्दी के भाव बिकने से और सरकारी या गैर-

सरकारी बैंकों द्वारा लिया गया कर्ज को समय रहते न चुका पाना इन तमाम समस्याओं से तंग आ कर किसान आत्महत्या कर रहा है।

आजादी से पहले कर्ज को प्रेमचन्द ऐसा मेहमान बताते हैं जो एक बार आने के बाद जाने का नाम ही नहीं लेता वहीं इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में संजीव ने ‘फाँस’ उपन्यास के स्त्री पात्र शकुन के माध्यम से कहते हैं- “इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है।”¹⁰⁸

सभ्यता विकास के आरंभिक प्रस्थानों में से एक कृषि समय के साथ कैसे सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संरचना का एक हिस्सा बन जाता है। संजीव का यह उपन्यास ‘फाँस’ सामाजिक संरचना के तमाम जटिलताओं के बीच खेती-किसानी की त्रासद हकीकतों को दिखाता है। नव-उपनिवेशवाद और आधुनिकता की दौड़ में शामिल राष्ट्र-राज्य की भावी कार्य योजना की निर्मिति इस सभ्यता समीक्षा की बड़ी भूमिका हो सकती है।

संजीव को न सिर्फ अपने समकालीनों में बल्कि हिंदी कथा लेखकों में पूरी परंपरा में अलग से ला खड़ा करता है। कपास के महँगे बीटी बीजों के प्रयोग से दिनोंदिन जमीन की उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। खेतों में एक बार बीजों की बुआई के बाद तरह-तरह के कीटनाशक दवाओं का छिड़काव करना पड़ता है। संजीव लिखते हैं- “धुएँ के कहर के अलावा खेती के प्रयोग में आने वाले कीटनाशक, मोबाईल टावर के रेडिएशन भी मधुमक्खियों और मित्र पक्षियों के संहारक हैं।”¹⁰⁹

किसान ऐसी खेती करके वैश्वीकरण के फाँस में फँसता जा रहा है। जिसका वर्णन संजीव ने इस प्रकार किया है- “शेतकरी की एकता तोड़ने के लिए या उसके उद्धार के नाम पर भगवान जाने

¹⁰⁸फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 15

¹⁰⁹फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 187

सन 2002 में आया था कापूस का महाबीज बीटी कॉटन बीज, क्या, तो बिलायत से कि अमेरिका से ! बिलायती बीज है, नाजुक बीज, खाद चाहिए ? लो ! कीटनाशक भी चाहिए ? लो ! पैसा नहीं है, सरकार कर्ज दे रही है न ! लो ! और पानी ? ऊपर वाला देगा न ! उस साल ऊपर वाले ने दिया भी । उफ़...क्या रेशे थे ! क्या फलन ! पूरा खेत कापूस से बूढ़े संन्यासी की तरह उजला हो गया । वही उजास किसानों के मुँह पर-हिंदी फिल्म ‘मदर इण्डिया’ के गीत की तरह... दुख भरे दिन बीते रे भैया, अब सुख लायो रे, रंग जीवन में नया लायो रे ! लेकिन अगले ही साल झटका लगा ।”¹¹⁰

यदि किसान रासायनिक खेती करना नहीं बंद करेगा तो आने वाले दिनों में बहुत भयावह परिणाम होगा । हालांकि सरकार अब ‘ग्रीन अर्थ’ जैसी योजनाओं के माध्यम से जैविक खेती पर जोर दे रही है । किसान अब रासायनिक खेती की बजाय जैविक खेती अपनाने लगे हैं । पश्चिमी राजस्थान की चार उच्च मूल्य की फसलों तिल, ग्वार, ईसबगोल, जीरे का प्रतिवर्ष करीबन 2 हजार करोड़ का निर्यात होता है । इसमें जैविक खेती भी शामिल है । काजरी ने निरंतर शोध के बाद किसानों को समूह रूप में इसकी जानकारी दी। अब किसान जैविक खाद तैयार कर फसल लेने लगे हैं ।

4.7 बी०टी० बीजों का कृषि पर प्रभाव

बी.टी. बीज यानि ‘बेसिलस थिरुन्जिनेसिस/थ्युरेनजिनेसिस’ मतलब वैज्ञानिक तकनीक द्वारा शोध किया गया ऐसा बीज जिसे बोने के बाद किसी भी प्रकार की दवा की छिड़काव की जरूरत नहीं है । अधिक उत्पादन और फसलों पर कीटों का प्रभाव न पड़ने के उद्देश्य से किसान ने इन बीजों का प्रयोग करना शुरू किया । बी.टी. बीज बनाने वाली कंपनी का कहना है कि बैंगन, आलू या कपास की फसल को कीटों से बचाने के लिए ऊपर से कीटनाशकों

¹¹⁰फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 37-38

का छिड़काव करना पड़ता है इसलिये समस्याओं से बचने के लिये कंपनी ने बीज में ही कीटनाशक प्रवेश करा दिये हैं। प्रचार के ठीक विपरीत हुआ ये फसलें कीटों को आकर्षित करने वाली, किसानों को कर्ज के संकट में डालने वाली और बदहाली की प्रतीक बन चुकी है।

बी.टी. के नाम पर मॉन्सैंटो जैसी बड़ी कंपनियाँ कीटनाशक और रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से किसानों को लूटकर अपनी तिजोरियाँ भरने का कार्य कर रही हैं। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मकसद केवल और केवल अपने बीजों को बेचकर पैसा कमाना है। भारत में बी.टी. बीजों का प्रयोग 2002 से प्रारंभ हुआ है। बैंगन और कपास के इन बीजों से किसानों ने अपनी किस्मत आजमाना शुरू किया। पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों के किसानों ने इन बीजों की बुआई की। **मॉन्सैंटो** कंपनियों के वादे खोखले निकले। विगत दिनों में पंजाब में सफेद मक्खी के कारण कपास की दो-तिहाई फसल बर्बाद हो गई। इस उपजाऊ क्षेत्र में इससे पूर्व सफेद मक्खी द्वारा ऐसा भयंकर प्रकोप देखने को न मिला।

आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र के किसानों पर बीटी कॉटन का बहुत बड़ा दुष्प्रभाव पड़ा। महाराष्ट्र के विदर्भ में कॉटन की खेती करने किसान कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के दौरान कुछ किसानों की मौत हो गई। तब सरकार का ध्यान विदर्भ में हुई मौतों की ओर गया और बाद सरकार ने एसआईटी का गठन किया, कुछ अधिकारी सस्पेंड किए गये, कीटनाशक बेचने वालों के लाइसेंस रद्द किए गए और प्रतिबंधित कीटनाशक बेचने वालों को जेल भेजा गया। सोचनीय बात यह है कि आखिर किसानों को इतना कीटनाशक का प्रयोग ही क्यों करना पड़ रहा है? जो कीटनाशक इस्तेमाल नहीं किए जाने थे वो भी इस्तेमाल किए गये। उन कीटनाशकों के इस्तेमाल के लिए किसान मजबूर क्यों हुए? और क्या इसकी बड़ी वजह 'बीटी कॉटन' है?

यह बात तो तय है कि 'बीटी कॉटन' यहाँ के किसानों के प्रतिकूल साबित हुई है। इन्हीं कपास की खेती करने वाले किसानों और उन तमाम समस्याओं को बहुत ही बारीकी से कथाकार

संजीव ने 'फाँस' उपन्यास में करते हैं। बीज की समस्या के साथ ही साथ किसानों के ऊपर आने वाली प्राकृतिक आपदाओं का भी जिक्र इन्होंने किया है। फसल तैयार होने के बाद उन समस्याओं को भी उजागर करते हैं जिसकी वजह से किसान दर-दर की ठोकरें खा रहा है। 'बीटी कॉटन' के प्रयोग से भूमि की उर्वरता धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है जिसका चित्रण संजीव इस प्रकार करते हैं- “ट्रांसजेनिक 'बीटी कॉटन' धरती की कुल उर्वरता को सोख लेता है। 15 प्रतिशत से ज्यादा खाद देनी पड़ती है— महँगी खाद। ज्यादा सिंचाई, ज्यादा कीटनाशक, अधिक बारिश वाले क्षेत्रों में यह परेशानी और भी ज्यादा। पत्तियाँ लाल रोग से ग्रस्त सर्वाधिक सिंचाई की जरूरत पड़ती है अक्टूबर महीने में। अब झाल्लियाँ नहीं मरतीं।”¹¹¹ समुचित सिंचाई व्यवस्था न होने के कारण किसान सही समय पर फसलों का उत्पादन करने में असमर्थ रहता है।

4.8 कॉरपोरेट जगत और कृषि

“एक आदमी रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ,
यह तीसरा आदमी कौन है ?
मेरे देश की संसद मौन है। (धूमिल)”¹¹²

¹¹¹फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 187

¹¹² <https://www.kafaltree.com/poem-of-sudama-pandey-dhumil/> 18 march 2019

धूमिल इस कविता के माध्यम से संकेत करते हैं कि तीसरा आदमी कोई और नहीं बल्कि वह पूँजीपति है जो मल्टीनेशनल कंपनियों के सहारे सिर्फ और सिर्फ मुनाफा कमाना चाहता है। पूँजीपतियों का अर्थ जगत पर कब्जा और किसानों के हाथ से निकलती खेती के सन्दर्भ में प्रेमचन्द आजादी के पहले लिखते हैं कि- “पूँजीपतियों के हाथों में किसानों और मजदूरों की किस्मत रहेगी और सरकार ऊपरी मन से नियंत्रण का स्वांग रचकर कोई उपकार नहीं कर सकती, इस व्यवसाय युग की यही महिमा है। यहाँ व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है, यहाँ जो कुछ है धन और मशीन है। वही देहातों की तबाही, वही घरेलू व्यवसायों का सर्वनाश।” (शक्कर सम्मलेन 1933)। प्रेमचन्द द्वारा कही गई बात इक्कीसवीं सदी में यथार्थ रूप से सामने दिखाई दे रही है।

भारत में उदारवाद के दौर से ही पूँजीपतियों का सभी क्षेत्रों में वर्चस्व दिखाई दे रहा है। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आने से यहाँ की छोटी-छोटी कंपनियों बंद हो गईं। करोड़ों श्रमिक बेरोजगार हो गए। अब स्थिति यह हो गई है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने जल, जंगल और जमीन पर कब्जा कर लिया है।

देश में आजादी के बाद इस प्रश्न ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आने की पनाह दी कि कैसे भारतीय लोगों की उदर पूर्ति की जाय ? इस समस्या के समाधान के लिए भारत ने ‘विश्व व्यापार संगठन’ से समझौता किया। डॉ.कृष्णस्वरूप आनन्दी अपने लेख में बताते हैं- “विश्व व्यापार संगठन ने जो ‘कृषि पर समझौता’ तैयार किया है उसके पीछे अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनी ‘कारगिल’ का शातिर दिकाग है। उसके पूर्व उपाध्यक्ष डॉन एम्सटुज ने समझौते का प्रारूप लिखा था। बहुराष्ट्रीय देशी-विदेशी औद्योगिक या कारोबारी घरानों व समूहों का सपना है- ‘किसानों द्वारा खेती’ के स्थान पर ‘कोर्पोरेट फार्मिंग’ हो वे यह तय करना चाहते हैं कि कहाँ- कहाँ किन-किन खाद्यान्नों और भोज्य पदार्थों का उत्पादन हो और इसके साथ ही खाद्य पदार्थों के

उत्पादन, वितरण, कारोबार या व्यापार पर कॉर्पोरेट माफिया का पूर्ण नियंत्रण हो। आखिर अमेरिका में यही तो हुआ।”¹¹³

भारत में साठ के दशक से ही ‘ठेके पर खेती’ का चलन रहा है और पिछले दशक में राज्यों के स्तरों पर एपीएमसी अधिनियम में किए गए संशोधन ने इसे कानूनी स्वरूप प्रदान कर दिया है। इसे विभिन्न फसलों, क्षेत्रों और कंपनियों में व्यापक रूप से अपनाया गया था। वर्ष 2003 में बाजार सुधारों को लागू करने के उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा एक मॉडल कृषि उत्पाद विपणन (नियमन) अधिनियम को राज्यों के बीच प्रसारित किया गया था। इसमें एपीएमसी के यहां अनुबंध खेती के प्रायोजकों के पंजीकरण के साथ-साथ ठेके पर खेती से जुड़े समझौतों को दर्ज किए जाने, इस तरह के अनुबंधों के तहत भूमि पर किसानों के हक या अधिकारों की रक्षा करने, विवाद निपटान की व्यवस्था करने और विभिन्न नियमों एवं शर्तों के बारे में सुझाव देने वाले एक मॉडल मसौदा समझौते के लिए प्रावधान हैं।

कई राज्य सरकारों ने ठेके पर खेती को कानूनी स्वरूप प्रदान करने के लिए अपने एपीएमसी अधिनियमों में प्रावधान किए हैं। “नीति आयोग का यह मानना है कि ठेके पर खेती की प्रणाली को सुव्यवस्थित करने तथा इसे समस्त राज्यों में और ज्यादा एक समान बनाने के लिए एक मॉडल कानून की सख्त आवश्यकता है। वर्तमान में, 22 राज्यों ने ठेके पर खेती को सह-विकल्प के रूप में अपनाया है।”¹¹⁴

सरकार किस प्रकार किसानों को ‘ठेके पर खेती’ करने के लिए बाध्य कर रही है इसका यथार्थ चित्रण ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में पंकज सुबीर इस प्रकार करते हैं- “ऐसा लग रहा है कि सरकार खुद ही किसानों को खेती करने से रोकना चाह रही है, मल्टीनेशनल के इशारों पर।

¹¹³ अभिनव कदम, 27 अंक, संपादक, चंद्रदेव राय, पृष्ठ संख्या : 242

¹¹⁴ <https://www.orfonline.org/hindi/research/ ठेके-खेती-किसान>, 30 नवंबर 2017 समय- 7:13pm

कभी यूरिया का संकट, कभी बिजली का संकट, कभी बीज का संकट, सारे संकट किसान के सामने ही क्यों पैदा किए जा रहे हैं ? ताकि वह घबराकर अपने खेत बेच दे मल्टीनेशनल्स को । यह बहुत बड़ा षड्यंत्र है , बड़ी कांसपिरेसी है । यह सारी परेशानियाँ प्राकृतिक नहीं हैं, यह तो पैदा की जा रही हैं किसान के सामने ।”¹¹⁵

देश में ‘ठेके पर खेती’ जैसी व्यवस्था होने से किसानों के वजूद, उनकी संस्कृति और सभ्यता को धीरे-धीरे खत्म किया जा रहा है । मल्टीनेशनल कंपनियाँ अपने फायदे के अनुकूल किसान को फसल उगाने के लिए बाध्य कर सकती हैं । ठेके पर खेती में ठेकेदार को यह कभी भी चिंता नहीं रहेगी कि आने वाले दिनों में भूमि की उर्वरा शक्ति का क्या परिणाम होगा ? परंपरागत बीजों को किसानों से छीनने और डंकल बीजों पर निर्भर बनाया जा रहा है यह किसानों को गुलाम बनाने की नीति है । एक दिन कॉरपोरेट फार्मिंग के बहाने किसानों की जमीनें ले ली जाएंगी और उन्हें अपने ही खेतों में मजदूर बन जाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं दिया जाएगा ।

बीजों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बहुत तीव्र गति से हावी हो रही हैं । जिसका उल्लेख **कृष्णस्वरूप आनन्दी** ने इस प्रकार किया है –“बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बीजों पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहती हैं । सैकड़ों साल से पारंपरिक रूप में उगाये जा रहे और हमारे खेतों की प्राकृतिक व देशज प्रयोगशालाओं में किसान की कड़ी मेहनत व साधना के सुलभ से सहज से सहज रूप में विकसित हो रहे देशी बीजों की चोरी करना और उसे अपनी मौलिक खोज या निजी बौद्धिक सम्पदा घोषित करना बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का पुराना गन्दा खेल है । भारत बासमती चावल का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक देश रहा है । लेकिन टेक्सास-स्थित अमेरिकी कंपनी राइसटेक ने बासमती और जसमती नाम के कई ब्रांड पेटेंट करा रखे हैं । चीन के बाद भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक देश है, लेकिन अमेरिकी कंपनी मोन्सैंटो ने गेहूँ की

¹¹⁵अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 175

हमारी स्थानीय प्रजाति 'नाप हल' को पेटेंट करने की जुर्रत की थी। सिजेंटा पूरे चावल पर ही अपना दावा ठोक रहा है। देशज या परंपरागत जैव पदार्थों पर डाका डालने में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कोई सानी नहीं।”¹¹⁶

कॉरपोरेट नीतियाँ ही खेती की लागत बढ़ा रही हैं। अब किसानों के सामने सपने बेचते हुए उन्हें आत्महत्या करने को मजबूर किया गया है। ठेके पर कृषि में सारी जिम्मेदारी और जवाब किसान की होती है कि वह निश्चित समय और गुणवत्ता के साथ संबंधित उत्पाद एक पूर्व निश्चित कीमत पर उपलब्ध कराएगा लेकिन खराब मौसम, कीड़ों की मार या किसी अन्य कारण से फसल खराब हो गयी या उसकी गुणवत्ता पर असर पड़ा तो कंपनी वह मॉल खरीदने से इंकार कर सकती है। उस स्थिति में सारा घाटा किसान का होगा। जैसे पंजाब से लेकर आंध्र प्रदेश तक में टमाटर, मटर से लेकर कपास की ठेका खेती करने वाले हजारों किसानों में देखा जा सकता है। ऐसे कई मामले सामने आए हैं जिसमें पेप्सिको से लेकर छोटी-बड़ी दर्जनों देशी-विदेशी कंपनियों ने इस या उस बहाने किसानों के साथ किए गए करार को मानने से इंकार कर दिया है। कॉरपोरेट खेती में श्रम के बजाय पूँजी पर अधिक महत्त्व दिया जाता है। साधारण किसान के पास पूँजी नहीं बल्कि श्रम ही सर्वेसर्वा होता है।

कॉरपोरेट खेती होने से श्रमहीनता जैसी संस्कृति पैदा हो रही है। सीमांत किसानों पर किस प्रकार कॉरपोरेट खेती का प्रभाव पड़ता है इस सन्दर्भ में **सत्य नारायण पटेल** ने ‘गाँव भीतर गाँव’ उपन्यास में लिखा है- “थार माखन कभी- कभी सोचता हूँ बड़ा-सा एक कृषि फार्म बनवाऊँ। आजकल कंपनियाँ बना रही न वैसा। हालाँकि कंपनियाँ तो पाँच-पाँच और छः-छः

¹¹⁶अभिनव कदम-27 पृष्ठ संख्या : 244

हजार एकड़ का बना रही, उतना बड़ा तो अपने बस का नहीं, पर दो ढाई सौ एकड़ का तो बनाया जा सकता है। उसमें आलू, टमाटर के प्लांट लगवाऊँ खेती को भी लाभ का धंधा बनाऊँ।”¹¹⁷

भूमिअधिग्रहण और एन.जी.ओ. के प्रभाव से भारतीय किसानों में एक प्रकार की संस्कृति का उदय हो रहा है। किस प्रकार सरकार की सहमति से देशी और विदेश पूँजीपति किसानों की जमीनों को अपार्टमेंट में बदला जा रहा है। गैर-सरकारी संगठन किस प्रकार किसान के जमीन का ओने-पौने भाव से उस पर शानदार बंगला बनाते हैं। इतना ही नहीं एन.जी.ओ. के अवसरवादी कार्यकर्ता विकास के नाम पर किसानों की जमीन खरीद कर व्यवसाय शुरू करना चाहते हैं।

किसान इतना ज्यादा कर्जदार हो जाता है कि उसे जमीन बेचनी ही पड़ती है। किसान अपने ही खेत में मजदूर के रूप में तब्दील होता जा रहा है। इसकी अभिव्यक्ति **भगवानदास मोरवाल ‘नरक मसीहा’** उपन्यास में इस प्रकार करते हैं- “ना साब, हमें तो या करज से दूर ही रखो। या ने हमें मालिक ते नौकर बना दिए। बिना करज के सुखी थे। ना हम या करज के चक्कर में पड़ते, ना या जमीन हमारी कुड़की होती।”¹¹⁸ पूँजीवाद का उदय और विकास के साथ ही मेहनतकश अवाम जैसे- शिल्पकार, दस्तकार, कामगार, बेरोजगार की बदहाली और नेस्तनाबूत की कहानी शुरू हो जाती है।

भारत में उदारीकरण के प्रभाव से छोटे-मोटे शिल्पकार ही नहीं लघु व कुटीर उद्योगों का सफाया ही लगभग हो ही गया था तथा सार्वजनिक संपत्तियों का निजीकरण हो गया था। **गौरीनाथ** ‘हम किस दिन के इंतजार में हैं’ लेख में लिखते हैं कि- “इस हाल में भी पूरी तरह उसकी गिरफ्त में आने से अगर कोई थोड़ा बचा हुआ था, तो वह किसान ही था। इसलिए अब जो नेस्तनाबूत करने का अभियान चल रहा है, उसकी जड़ में किसान और कृषि-क्षेत्र से जुड़े लोग

¹¹⁷गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, पृष्ठ संख्या : 239

¹¹⁸नरक मसीहा, भगवानदास मोरवाल, पृष्ठ संख्या : 132

हैं। फलतः आज कोई भी किसान साबुत नहीं बचा है, उसे बीज विहीन करने का खेल चरम पर है। रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से जमीन को बंजर बनाने के साथ ही जल स्रोतों पर भी आक्रमण तेज है। कृषि क्षेत्र में मजदूरों का पलायन उन्हें जड़ विहीन करने में बाजारवादी हमले का अंग है।¹¹⁹ वर्तमान समय ऐसा है की मेहनत कश वर्ग का अस्तित्व भारी संकट के दौर से गुजर रहा है एक तरफ बड़ी-बड़ी कंपनियाँ से मजदूरों को हटाया जा रहा है तो दूसरी तरफ किसान जगह-जगह पर कर्ज से परेशान होकर आत्महत्या कर रहा है।

4.9 किसान आत्महत्या

समय-समय पर और आवश्यकतानुसार किसान अपनी समस्याओं को विभिन्न आंदोलनों के माध्यम से सत्ता को अवगत कराता रहा है जरूरत पड़ने पर वह अपने हक-ओ-हुकूक की माँग के लिए आन्दोलन भी करता रहा है। यदि प्रेमचन्द युगीन किसान सेठ, साहूकारों, सूदखोरों और महाजनों द्वारा शोषण का शिकार होता था। आज का भारतीय समाज पूरी तरह से पूँजीवाद के गिरफ्त में है। वर्तमान समय में दिनोंदिन बढ़ती महँगाई, खेती में बढ़ता खर्च, फसलों का वाजिब दाम न मिलना इत्यादि से उत्पन्न कठिनाईयों से आज का किसान जूझ रहा है। दिन-प्रतिदिन अधिकांश किसानों की स्थिति दयनीय होती जा रही है जो सभी के लिए चिंता का विषय है।

यह मेहनतकश-वर्ग खेतों में दिन-रात जीतोड़ मेहनत करते के बावजूद भी दो वक्त की रोटी सुकून से नहीं खा पा रहा है। भारतीय कृषि कई क्षेत्रों में आज भी वर्षा पर निर्भर है। फसलों के उचित दाम न मिलने से किसान लाइलाज बीमारी 'कर्ज' से ग्रसित होता जा रहा है। यही कर्ज बड़ी संख्या में आत्महत्याओं में परिणित हो रहा है। सरकार की तमाम योजनाओं और प्रयासों के बावजूद किसान आत्महत्या नहीं रुक रही है जो केवल सरकार के लिए ही नहीं नीति निर्माताओं

¹¹⁹हंस पत्रिका, अगस्त 2006 पृष्ठ संख्या : 3

के लिए भी सबसे बड़ी चुनौती है। संक्षिप्तता में देखा जाए तो आज का किसान **आसमानी, सुल्तानी और जिस्मानी** इन्हीं तीनों समस्याओं से इनका जीवन बदतर होता जा रहा है।

आत्महत्या के संदर्भ में समाजशास्त्री **इमाईल दुर्खीम** लिखते हैं कि “आत्महत्या वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जानता है कि वह अपना शरीर नष्ट करने जा रहा है।” किसान नाम सुनते ही लोगों के जेहन में यह छवि बनती है कि- वह इंसान जो खेतों में काम करता है और देखने में एकदम देहाती लगता हो। तथाकथित सभ्य लोगों से इनका जीवन अलग होता है जो शहरों की अपेक्षा गाँवों में रहना ज्यादा पसंद करता है। वस्तुतः जिन व्यक्तियों का जीवन-यापन की निर्भरता खेती-किसानी पर रहती है वही किसान कहलाता है। स्थानीयता के आधार पर किसानों की श्रेणियाँ अलग-अलग है।

नवउदारवाद के दौर में भारतीय किसानों के समक्ष कई समस्याएँ, कारण और चुनौतियाँ हैं जिसकी वजह से किसानों की आत्महत्या की घटनाएँ लगातार सामने आ रही हैं उनमें से दो प्रमुख कारण हैं – **एक प्राकृतिक आपदाएँ** जैसे- सूखा, बाढ़ तथा तूफान और **दूसरा-कर्ज**। सरकारी कर्ज और निजी कर्ज या सेठ और साहूकारों से लिया गया कर्ज। कृषि आधारित भारत आज विकट परिस्थितियों से जूझ रहा है। ऐसा एक भी दिन नहीं बीतता होगा जिस दिन अखबारों में किसानों की आत्महत्या की घटनाएँ न छपी हों।

नवउदारवाद के दौर में स्थिति यह हो गई है कि किसान फसलों के उत्पादन में जितना रुपया पैसा लगाता है इसे उतना भी नहीं मिल पाता है अर्थात् उसे फसलों का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। भारतीय किसानों की स्थितियों में कैसे सुधार हो? सरकार के सामने यह सबसे बड़ी चुनौती है। आश्चर्य की बात यह है कि किसानों के जीवन स्तर को सुधारने हेतु ‘आत्मा’(Agricultural Technology Management Agency (ATMA) जैसी कई योजनाएँ चलाई जा रही है फिर भी किसान आत्महत्या को रोकना तो दूर की बात है, कम नहीं हो

रही है। इसके साथ ही साथ इस देश में सरकार के सामने दो सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं— ‘बढ़ाना और बचाना’। बेरोजगार युवाओं को आगे बढ़ाना और भारत की आत्मा कहे जाने वाले किसानों को बचाना। किसान को भारत में अन्नदाता कहा जाता है। भारत की आधी से ज्यादा आबादी गाँवों में निवास करती है। यही आबादी खेती का काम करती है। अन्न उगाती है, जो लोगों को खुशहाल बनाती है। वही आज खुदकुशी कर रही है।

भारत में जब से बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन हुआ और खेती फॉर्म हाउसों में होने लगी तभी से किसानों की बदहाली का खेल शुरू होता है। किसानों का शोषण आजादी से पहले भी होता था और आज भी हो रहा है बशर्ते इनके शोषण का स्वरूप बदल गया है। आजादी से पहले किसान जमींदार, सामंत, सूदखोर और अंग्रेज शासकों से परेशान था। वहीं आज सरकारी बैंकों द्वारा लिया गया कर्ज से, साथ में प्राकृतिक आपदाओं से भी। देश को आजाद हुए 73 साल हो गए हैं। जिस उम्मीद के साथ किसानों और मजदूरों ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी। आज भी वैसा कुछ नजर नहीं आ रहा है। दिन-ब-दिन किसानों की स्थिति दूभर होती जा रही है। खेती से जुड़ा मेहनतकश पहले से ज्यादा दयनीय अवस्था में जी रहा है।

देश में मल्टीनेशनल कंपनियों के आने तथा नई अर्थनीति लागू होने से किसानों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। आत्महत्या जैसी किसानों की घातक समस्या का सबसे पहले जिक्र 1990 ई० में प्रसिद्ध अंग्रेजी अखबार ‘द हिन्दू’ के ग्रामीण मामलों के संवाददाता पी० साईनाथ ने किया। किसान आत्महत्या के आंकड़ों को एकत्र करने की बात की जाए तो इन दो व्यक्तियों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। पहले व्यक्ति हैं- पी० साईनाथ और दूसरे- प्रो० नागराव जो मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज में प्रोफेसर हैं। आरंभ में ये रपटें महाराष्ट्र से आईं। जल्द ही आंध्रप्रदेश से भी आत्महत्याओं की खबरें आने लगीं। शुरुआत में लगा की अधिकांश आत्महत्याएँ महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र के कपास उत्पादक किसानों ने की है लेकिन महाराष्ट्र के

‘राज्य अपराध लेखा कार्यालय’ से प्राप्त आँकड़ों को देखने से स्पष्ट हो गया कि पूरे महाराष्ट्र में कपास सहित अन्य नकदी फसलों के किसानों की आत्महत्याओं की दर बहुत अधिक रही है। आत्महत्या करने वाले केवल छोटी जोत वाले किसान नहीं थे बल्कि मध्यम और बड़े जोतों वाले किसान भी थे। राज्य सरकार ने इस समस्या पर विचार करने के लिए कई जाँच समितियाँ बनाईं।

भारत में किसान आत्महत्या 1990 के बाद पैदा हुई स्थिति है जिसमें प्रतिवर्ष दस हजार से अधिक किसानों के द्वारा आत्महत्या करने की रिपोर्ट दर्ज की गई है। ‘राष्ट्रीय अपराध लेखा कार्यालय’ के मिली जानकारी के अनुसार –“1995 से 2011 के बीच 17 वर्ष में 7 लाख, 50 हजार, 760 किसानों ने आत्महत्या की है। सबसे ज्यादा आत्महत्याएँ महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में हुई थी। किसान आत्महत्या किन कारणों से होती है इन कारणों को विद्वान अपने अलग-अलग मत देते हैं।”¹²⁰

किसान आत्महत्या के सन्दर्भ में पी०साईनाथ का कहना है कि- “अच्छे मानसून के दौरान भी किसानों के आत्महत्या के ज्यादा मामले सामने आए हैं और सूखे के दौरान भी। कपास, गन्ना, मूंगफली, वनिला, काफी और काली मिर्च जैसी नगदी फसलें उगाने वाले किसान भी आत्महत्या करते हैं। वहीं धान और गेहूँ उपजाने वाले किसानों में आत्महत्या की दर कम है। तो क्या तर्क देना सही होगा कि सूखे से नगदी फसल वाले किसान आत्महत्या करते हैं, खाद्यान्न उत्पादन करने वाले नहीं। भारतीय खेती पर दक्षिण-पश्चिम मानसून का अहम प्रभाव पड़ता है, लेकिन मानसून की कमी किसानों की आत्महत्या का मुख्य कारण नहीं है। नकदी फसल के किसानों की आत्महत्या के ज्यादातर मामलों में कर्ज लागत का बढ़ना, सिंचाई का तरीका और फसल का उचित दाम नहीं मिलने की भूमिका ज्यादा होती है।”¹²¹

¹²⁰ /www.indianfarmer.org/2019/09/kisano-ki-aatmhatya-ke-karan.html 25 Sep 2020

¹²¹ किसान आत्महत्या का गड़बड़ झाला, पी० साईनाथ, बीबीसी न्यूज 14 जुलाई 2014

नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में किसानों की आत्महत्या जैसी भयावह समस्या को मुख्यतः जिन उपन्यासों में दिखाया गया है वे इस प्रकार हैं- संजीव का ‘फाँस’ राजू शर्मा का ‘हलफनामे’, शिवमूर्ति का ‘आखिरी छलाँग’ और पंकज सुबीर का ‘अकाल में उत्सव’। इन उपन्यासों में लेखकों ने महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और आंध्रप्रदेश जैसे इलाके के किसानों द्वारा की गई आत्महत्या का उल्लेख किया है। भारत के ज्यादातर छोटे किसान कर्ज लेकर खेती करते हैं। कर्ज वापस करने के लिए यह जरूरी है कि फसल अच्छी हो। हमारे देश में सिंचाई की सुविधा बहुत कम किसानों को उपलब्ध है। कई राज्यों के किसान खेती के लिए वर्षा पर निर्भर रहते हैं।

अब ऐसे समय में यदि मानसून ठीक से न रहे तो फसल पूरी तरह बरबाद हो जाती है। किसान की सारी मेहनत और फसल बरबाद हो जाती है। वर्ष भर खाने के लिए भी कुछ नहीं रहता, साथ में कर्ज चुकाने का बोझ अलग। मानसून का समय पर न आना, सूखा, कीमतों में वृद्धि, ऋण का अत्यधिक बोझ आदि परिस्थितियाँ किसानों के लिए समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में वे बैंकों, महाजनों, बिचौलियों आदि के चक्र में फँस जाते हैं। कई किसान कर्ज के दबाव को सहन नहीं पाते और आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाते हैं। भारतीय किसानों के आत्महत्या की मुख्य समस्या कर्ज की है। हिंदी कथा साहित्य में कथाकारों ने किसान-जीवनकी उन तमाम समस्याओं को अभिव्यक्त किया है जिनकी वजह से आज किसानों का जीना दूभर हो गया है।

किसान आत्महत्या के कई कारणों को उल्लेख करते हुए पी०साईनाथ अपने एक वक्तव्य में कहते हैं – “हरेक आत्महत्या के एक नहीं कई कारण हैं। लेकिन जब आपके सामने ऐसे करीब दो लाख कारण मौजूद हों, तो उनमें से कुछ अहम लेकिन समान कारणों को सूचीबद्ध करना बुद्धिमानी होगी। जैसा कि डॉ. नागराज बार-बार बताते हैं कि आत्महत्याएँ ऐसे क्षेत्रों में केन्द्रित

दिखाई देती है जहाँ कृषि का बड़े पैमाने पर व्यवसायीकरण हुआ है और जहाँ किसान कर्ज के बोझ तले बहुत अधिक दबे हैं। नकदी फसल उगाने वाले किसान खाद्य फसल उगाने वाले किसानों की तुलना में कहीं अधिक संख्या में आत्महत्या कर रहे हैं।”¹²²

संजीव ने अपने उपन्यास ‘फाँस’ में किसानों के दुःख-दर्द और आत्महत्या जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया है। इस उपन्यास में महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगाँव का चित्रण किया गया है। लेकिन इसमें आंध्रप्रदेश और कर्नाटक के किसानों सहित भारत के उन सभी किसानों की कहानियाँ भी शामिल हैं जिन्होंने जी०एम० बीजों का इस्तेमाल करने के लिए फुसलाया गया और फिर कर्ज दिया गया। प्राकृतिक आपदाओं की मार के कारण भोले-भाले किसानों की जिंदगी कर्ज और सूखे के बोझ तले इस तरह दबती गई और किसान आत्महत्या करने पर विवश होता गया। किसान आत्महत्या के आंकड़ों को लेकर एकरूपता नहीं है। सरकारी आंकड़े कुछ दूसरा बता रहा है और कुछ निजी आंकड़े एकत्र करने वाले कुछ और ही कह रहे हैं। इन आंकड़ों की भिन्नता को देखते हुए अदम गोंडवी की एक गजल यहाँ बहुत सटीक बैठती है जो इस प्रकार है-

“तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है,

मगर ये आंकड़े झूठे हैं, ये दावा किताबी है।”¹²³ (अदम गोंडवी)

किसानों के द्वारा की गई आत्महत्या को पात्र और अपात्र को लेकर शासन तंत्र किस प्रकार परेशान करता है। आत्महत्या को पात्र बनाने के लिए रिश्तत की डिमांड की जाती है। किसानों की आत्महत्या जैसी गंभीर समस्याओं को संजीव इस प्रकार दिखाते हैं-“ऐसे ही अकेले पड़ते-पड़ते लोग इतने अकेले हो जाते हैं कि जीवन ही व्यर्थ लगने लगता है, सोचते हैं मेरे जीने में क्या है और मरने में क्या। बल्कि मरना एक मुक्ति है और जीना एक बंधन। आये दिन तो

¹²²अभिनव कदम-27 पृष्ठ संख्या : 280

¹²³https://kavitakosh.org/kk/तुम्हारी_फाइलों_में_गाँव_का_मौसम_गुलाबी_है/_अदम_गोंडवी, 4 नवम्बर-2019, 0 : 11बजे

आत्महत्या की खबरें सुनते रहते हैं। जिधर देखो उधर, कोई पेड़ की डाल पर लटका पड़ा है, कोई कुएँ में गिरा पड़ा है तो कोई कीटनाशक खाकर मुँह से झाग फेंक रहा है।”¹²⁴

इस उपन्यास में विदेशी बीजों जैसे कपास की खेती करने वाले किसानों की आत्महत्या को दिखाया गया है। महाराष्ट्र की कृषि समस्या का एक छोर कपास से जुड़ा है तो दूसरा छोर गन्ने की खेती से। कपास की खेती करने वाले किसान जहाँ अनुचित मूल्य निर्धारण, महँगे और धरती की उर्वरा शक्ति का दोहन करने वाले बीज, महाजनों और साहूकारों के रक्तचूसक ब्याज दर और बिगड़ते मौसम चक्र के प्रतिकूल आघातों के बीच पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक प्रतिष्ठा के निर्वहन में नाकामयाब होकर आत्महत्या करने को किसान मजबूर है।

‘फाँस’ उपन्यास न सिर्फ हमारी संवेदना को झकझोरता ही नहीं बल्कि वह उपन्यासकार इसे कलात्मक ऊँचाई भी प्रदान करता है। पात्रों का सुख-दुःख, उत्साह-हताशा एक सीमा से आगे बढ़ने के बाद पात्रों की काया से निकल कर पाठकों की संवेदना का हिस्सा बन जाते हैं। इसी का यह परिणाम है कि उपन्यास के पात्र छोटी, सिन्धुताई शकुन्तला, अशोक, विजयेन्द्र और सुनील आदि अपने पाठ के दौरान और उसके बाद देर तक हमारे भीतर साँस लेते हुए मालूम पड़ते हैं। फसलों की बर्बादी और कर्ज का बोझ किसानों को आत्महत्या के दहलीज पर पहुँचा देता है। रिपोर्ट के अनुसार किसान आत्महत्या के मामले में महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, बुंदेलखंड और पंजाब आदि राज्यों के नाम आते हैं।

राजू शर्मा ‘हलफनामे’ उपन्यास में आंध्रप्रदेश के एक किसान स्वामीराम प्रसाद के जीवन की कारुणिक कहानी है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या पानी की है। दिन-ब-दिन घटते जंगल और कटते पेड़ ने सम्पूर्ण पृथ्वी के तापमान को बढ़ा दिया है। जिसकी वजह से पानी दिन

¹²⁴फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 43

प्रतिदिन पृथ्वी की निचली सतह पर पहुँचता जा रहा है। जिससे केवल किसान ही नहीं बल्कि पृथ्वी के सभी सजीव प्राणियों को समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

पानी जैसी समस्या को ‘हलफनामे’ उपन्यास में दिखाया गया है। जिसकी वजह से किसान आत्महत्या कर रहा है। स्वामीराम दो बार बेहतरीन काश्तकार का इनाम भी पा चुका था। लेकिन सूखे की वजह से बोरबेल लगाने के लिए स्वामीराम को वहां के लाला से कर्ज लेना पड़ता है। लाला से कर्ज इसलिए लेना पड़ा कि सरकार द्वारा इस एरिया को डार्क एरिया घोषित कर दिया गया है। इसी अवसर का लाभ उठाकर लाला महकमे से मिली भगत करके बोरिंग का धंधा शुरू कर किया। इस तरह वहां के छोटे किसान कर्ज में पूरी तरह डूब जाते हैं। जिसका जिक्र लेखक ने इस प्रकार किया है – “स्वामी की बस इतनी इच्छा थी कि अकाल का समाधान हो, खेत को जानवर को, आदमी को गुजारे लायक पानी मिले। इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार और तत्पर था। उसका धीरज अब घटता जा रहा था। लाला की सौदेबाजी के किए उसमें गुस्सा पैदा हो रहा था। पानी गाड़ने की बात से आँखों के सामने लाला की मूर्त नाचने लगी।”¹²⁵

किसानों की जिंदगी को और नरक में पहुँचाने वाले कपास की खेती के बारे में ‘हलफनामे’ उपन्यास में जिक्र किया गया है। मल्टीनेशनल कंपनियों के आने के बाद की कीमतों में हो रही वृद्धि बीजों और कीटनाशकों के दामों से देश के किसान को सही समय पर न तो बीज मिल पाता है और न ही सिंचाई की सुविधा हो पाती है। शिवमूर्ति ने ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में इसका जीवंत उदहारण इस प्रकार दिया है – “सोचा था इस साल वरुणा सरसों बोयेंगे। कहते हैं बड़ी अच्छी पैदावार होती है। लेकिन मौके से हाथ में पैसा न आ पाने के चलते नहीं बो सके। आलू का बीज खरीदने के लिए पैसा जुटाना पहाड़ हो गया। दस रुपये

¹²⁵हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 128

किलो का बीज खरीद कर बोये थे। डर है कि तैयार होने तक आलू का रेट गिरकर दो रुपये किलो से भी नीचे न चला जाय। अषाढ़ बीतते-बीतते जैसे ही किसान के घर से निकल कर बाजार में पहुँची, फिर दस रुपये किलो बिकने लगती है। सारे हालात तो मर जाने के हैं। जिन्दा कैसे रहा जाय।”¹²⁶

किसानी जीवन का दुःख-दर्द, खेती-बाड़ी सीमित और छोटी जोतों के खेतों से अधिक उपज देने के लिए महँगे खाद-बीज, कीटनाशक, बिजली, डीजल, ट्र्यूबवेल, जुताई-बुआई, मजदूरी, उपज को बाजार तक ले जाने का किराया भाड़ा आदि के लिए, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों से लिए गए कर्ज के मकड़जाल में फँस कर टूटते बिखरते, अपनी जमीने गंवाते, छोटे बड़े किसान निराश और हताश के दलदल में फँसकर आत्महत्या कर रहे हैं। इसी मकड़जाल में फँसे पहलवान नामक एक किसान के माध्यम से कथाकार शिवमूर्ति ने ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में आत्महत्या करते किसान को दिखाया है।

जिसका चित्रण इस प्रकार करते हैं- “ठीक सामने वाले गाँव में घर है पाँड़े बाबा का। उत्तरी निकास पर उसका साढ़े तीन एकड़ का चक था। खाते-पीते किसान माने जाते थे। पास-पड़ोस में सम्मानित थे। पचपन साठ की उम्र। सफेद मूँछें, चौड़ा ललाट, हँसमुख चेहरा। एकमात्र के बेटे को दलाल ने ट्रैक्टर का लोन लेने के लिए ललकारा। जमीनी समझ के आदमी थे पाँड़े जी। फूँक-फूँक कर कदम रखने वाले। उनका मानना था कि खेती किसानी से इतनी कमाई नहीं की जा सकती कि ट्रैक्टर के लोन की किस्त अदा की जा सके। बस फँस गए.... दो साल तक जब तक ट्रैक्टर की मरम्मत में खर्च नहीं आ रहा था, किस्त की रकम निकलती रही। बाद में नहीं हो सका। एक बार ट्राली पलट है। पंद्रह-बीस दिन तक बेटा बीमार पड़ गया। ब्याज सुरसा की मुँह की तरह बढ़ने लगा। जमीन बंधक थी। अचानक बैंक वालों ने पीछे की तारीख में कागजी

¹²⁶नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008 पृष्ठ संख्या : 79

खानापूर्ति करके नीलामी पर चढ़ा दी। सारी जमीन असल की एक चौथाई कीमत में नीलम हो गई। अब क्या होगा ! न कोई दूसरा रोजी-रोजगार न कोई दूसरा धंधा। छटपटाकर रह गए सदमा इतना तेज था कि अर्द्धविक्षिप्त हो गए। आँखों में सूनापन भर गया और एक दिन...।”¹²⁷

किसान की आत्महत्या के बाद सम्पूर्ण परिवार उसके प्रभाव में आ जाता है। बच्चे स्कूल छोड़कर खेती-बाड़ी के कामों में हाथ बँटाने लगते हैं। परिवार को कर्ज विरासत के रूप में मिलता है और इस बात की आशंका बढ़ जाती है कि बढ़े हुए पारिवारिक दबाव के बीच परिवार के कुछ अन्य सदस्य कहीं आत्महत्या ना कर बैठें। बैंको से जो ऋण किसान की भलाई के लिए लिया जाता है। वही उसके गले का फंदा बन जाता है। ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास का पात्र ‘पहलवान’ कर्ज और परिवार की तमाम परेशानियों, बेटी की ब्याह की चिंता, बेटे की फीस की चिंता और ट्यूबवेल की बिल की चिंता सबको भाड में झोंककर जीवन की आखिरी छलाँग लगा लेते हैं। अर्थात् आत्महत्या कर लेता है।

पंकज सुबीर का उपन्यास ‘अकाल में उत्सव’ कहावतें और मुहावरे से लवरेज एक ऐसे किसान की दुःख भरी कहानी है जिसमें अत्यधिक वर्षा और ओले पड़ने से रामप्रसाद जैसे छोटे जोत के किसान की सारी फसल बर्बाद हो जाती है और मुआवजा भी नहीं मिलता। अब सवाल यह है कि दुबारा वह अपने खेतों में बीज कैसे बोए और अपने परिवार को दो वक्त की खाने की व्यवस्था कैसे करे ? रात-दिन यही सोचता रहता था और अंत में जिंदगी से हार जाता है और आत्महत्या करने पर विवश हो जाता है। जिसका जिक्र उपन्यास में इस प्रकार है-“म्यारे घर में तो भूँजी-भाँग खाने का भी पइसा नी है साब। जो था सब खेती में लगइ दिया था। फसल की आस

¹²⁷नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008 पृष्ठ संख्या : 99

पे बट्या था कि सब सत्यानाश हुइ गयो। अबे तो छोरा-छोरी के खिलाने का भी पइसा नी है म्यारे पास। रिपोर्ट का सारू पइसा कहाँ से आएगा साब। रामप्रसाद ने दयनीय स्वर में उत्तर दिया।”¹²⁸

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास की कथावस्तु ‘सूखापनी’ नामक गाँव से प्रारम्भ होती है जो मध्यप्रदेश का एक आदिवासी गाँव है। इसकी कहानी दो एकड़ जमीन के जोत वाले छोटे किसान रामप्रसाद के इर्द-गिर्द घूमती है। किसान खेतों में रात-दिन जीतोड़ मेहनत करता है तभी तो फसलें भी अच्छी होती हैं परन्तु महाजन खलिहान पर ही फसल को उठवा लेता है। रामप्रसाद को इतना मिलता है कि वह शायद ही सालभर अपने परिवार वालों को खिला सके। खेत में जोतने बोने तथा अन्य खर्चों के लिए रुपयों की जरूरत के लिए अपनी पत्नी कमला का गहना महाजन के यहाँ गिरवी रखकर पूरा करता है। धीरे-धीरे एक एक करके सारे गहने महाजन के यहाँ बिक जाते हैं और अंत में गहनों के नाम पर मात्र एक गहना ‘तोड़ी’ ही बची है। जिसे रामप्रसाद बेचना नहीं चाहता फिर भी ऐसी विपत्ति आन पड़ती है कि उसे तोड़ी हमेशा के लिए बेचना पड़ता है।

अंत में रामप्रसाद बैंक द्वारा लिया गया कर्ज के फर्जीवाड़े का शिकार होता है। ऊपर से प्रकृति की मार से उसकी सारी फसल बर्बाद हो जाती है। बैंक के कर्जे को सुनकर उसे ऐसा सदमा लगता है कि वह आत्महत्या कर लेता है और अंत में भ्रष्ट शासन तंत्र के चलते उसे पागल सिद्ध कर दिया जाता है। जिसे लेखक ने उपन्यास में इस प्रकार दिखाया है-“हाँ बैंक में उसके नाम से किसी ने फर्जी किसान क्रेडिट कार्ड बनवा लिया था, तब से बहुत परेशान थे वह। मेरे पास भी आये थे वह। कुछ परेशान भी थे और दिमागी हालत भी खराब हो रही थी उनकी। कुछ तो भी बोल रहे थे। सदमा लगा था उनको।”¹²⁹ किस प्रकार किसान महाजनी, सामंती व्यवस्था सूदखोरी और कर्ज के दलदल में फँसकर आत्महत्या करने पर विवश हो रहा है। दरअसल

¹²⁸ अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 203

¹²⁹ अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 223

प्रेमचन्द के समय में किसान के समक्ष जो समस्याएँ थी चाहे वह ऋण संबंधी समस्याएँ हों या किसानों की बदहाली संबंधी अन्य समस्याएँ हों उसी कड़ी या परंपरा को उपन्यास जगत में आगे बढ़ाने का काम पंकज सुबीर ने किया है।

किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए सरकार द्वारा ढेर सारी योजनाएँ चलायी गई पर इन योजनाओं का लाभ किसान बहुत कम उठा पाता है। इसका सारा फायदा बिचौलिए और दलालों को जाता है। किसानों की कर्ज देने संबंधी एक योजना है –‘किसान क्रेडिट कार्ड’ जिसका जिक्र ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में किया गया है। बैंक कर्मचारियों और दलालों की मिली भगत से किसानों के नाम से कर्ज ले लिया जाता है। रामप्रसाद के साथ हुए धोखाधड़ी के कारण वह कर्ज के बारे में दिन-रात सोचते-सोचते विक्षिप्त-सा हो जाता है और अंत में आत्महत्या कर लेता है जिसे उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है-“स्यूसाइट कब की, यह तो पता नहीं सर लेकिन, अभी घंटे भर पहले गाँव वालों को पता चला, जब किसी ने कुँए में झाँक कर देखा। कुँए की मुँडेर पर लगे लोहे के सरिए से रस्सी बँधी थी और उसी से लटक रहा था वह कुँए में। पुलिस अधीक्षक ने पास आकर सूचना दी।”¹³⁰

एक तरफ सरकारी फंड को सही समय में उपयोग करने के लिए सरकारी प्यादों द्वारा उत्सव मनाया जा रहा है और वहीं दूसरी तरफ ‘सूखापानी’ नामक गाँव के किसान आत्महत्या कर रहा है। इस उपन्यास में चित्रित गाँव ‘सूखापानी’ का एक अजीब नाम है। यानी किसान की फसल को अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही स्थिति में नुकसान है। किसान-जीवनसंबंधी समस्याओं का केन्द्रीय बिंदु बनाकर यद्यपि कई उपन्यास लिखे गए। किसी उपन्यास में जमीन बेदखली की समस्या तो किसी में काश्तकारों का बेरहमी से शोषण। इन सभी उपन्यासों में कर्ज जैसी समस्या को किसान परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी ट्रांसफर होता दिखाया गया है। किसान आत्महत्या के

¹³⁰अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 207

कारणों को बखूबी कलात्मक और भावनात्मक स्तर पर अद्भुत तरीके से लेखक द्वारा व्यक्त किया गया है।

4.10 भ्रष्ट शासन तंत्र और किसान

स्वयं संजीव गंवई क्षेत्र से जुड़े होने के कारण वहाँ के किसानों की विवशता, उनकी दिनचर्या, उनकी आर्थिक और सामाजिक पैठ बहुत गहरी है जो 'फाँस' उपन्यास में दिखाई देती है। किसान आत्महत्या के बाद मुआवजा के लिए पात्र-अपात्र को लेकर सरकारी उपक्रम किस हद तक मनुष्य विरोधी और प्रकृति का हिंसक है उसे इस उपन्यास में आसानी से देखा जा सकता है। आत्महत्या को पात्र बनाने के लिए कर्मचारियों को रिश्वत देना पड़ता है तब जाकर सरकार की तरफ से मुआवजा मिलता है वह भी दलालों से बची हुई रकम। संजीव ने शासन तंत्र के खोखलेपन को उजागर किया है।

उपन्यास में एक पात्र 'शिबू' जब समस्याओं का सामना नहीं कर पाता और आत्महत्या कर लेता है तब उसके आत्महत्या को पात्र ठहराने के लिए घरवालों को काफी मशक्कत करनी पड़ती है जिसका उल्लेख संजीव इस प्रकार करते हैं- "पोस्टमार्टम, पंचनामा। घूस की डिमांड-पैसे दो तो इसे पात्र बना दे वरना। पात्र नहीं बनाया जा सकता इस आत्महत्या को।"¹³¹ यदि सरकारी कर्मचारी, बिचौलियों, दलालों को कुछ नहीं मिलता तो आत्महत्या, आत्महत्या नहीं ठहराते जो उपन्यास में इस प्रकार दृष्टव्य है- "उसकी मौत आत्महत्या नहीं मानी गई। वह क्या है ? बाप के नाम जमीन, मरा बेटा ! आत्महत्या अपात्र ! कारण जमीन तो उसके नाम थी ही नहीं। यहाँ शिबू काका की आत्महत्या को आत्महत्या नहीं माना गया। कारण जमीन पर तो कर्ज था ही नहीं। सरकारी कर्ज उतारने के लिए ही रोज-रोज मरते रहे।"¹³²

¹³¹फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 110

¹³²फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 116

सूखा, बाढ़ से किसान परेशान होकर करे तो क्या करे ? किसान के सामने सबसे बड़ी समस्या खेतों में बीज बोने को लेकर है। बड़े मुश्किल से किसी तरह इंतजाम करके एक बार खेतों में बीज बोता है। परन्तु एक कहावत है ‘सिर मुंडाते ही ओले पड़े’ जैसे ही किसान बीज बोता है त्योंही प्रकृति की मार शुरू हो जाती है। इसके बाद किसान पुनः खेतों की बुआई के लिए कर्ज लेने के लिए बैंकों के पास या सूदखोरों के पास जाता है। इस तरह पहले के कर्ज को चुका नहीं पाता इधर दूसरा कर्ज तैयार होता रहता है। इसी तरह धीरे-धीरे यह कर्ज बढ़ता जाता है। लेखक ने इस उपन्यास में यह भी दिखाया है कि किसान कर्ज की मर्ज से इतना परेशान है कि जहर खाने तक के लिए भी पैसे नहीं है। तो वह कर्ज कहाँ से चुकाएगा। उपन्यास में एक पात्र कहता है – “एक पस्त सी आवाज आई –अपुन के पास तो विष खाने भर का भी पइसे नहीं सेठ।”¹³³

जिंदगी की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों के बीच बार-बार कर्ज बढ़ने के बाद आत्महत्या को मजबूर हुए नव-युवक किसान की आत्महत्या एक किसान की आत्महत्या नहीं मानी जाती क्योंकि सरकारी दस्तावेज़ में भू-स्वामी के नाम के सामने उस किसान पुत्र का नाम न हो कर उसके पिता का नाम अंकित होता है। सरकार द्वारा दी गई सुविधा अंततः किसान विरोधी ही साबित होती है। **पंकज सुबीर** का उपन्यास ‘अकाल में उत्सव’ जो गाँव और किसानों की संस्कृति का एक बहुत ही बेहतरीन उपन्यास है। किस प्रकार किसान महाजनी, सामंती व्यवस्था सूदखोरी और कर्ज के दलदल में फँसकर आत्महत्या करने पर विवश हो रहा है इसकी अभिव्यक्ति बहुत ही संवेदनात्मक ढंग से की गई है।

सूखा-बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के समय सरकार द्वारा दिया गया मुआवजा भी मात्रा के अनुसार बहुत कम दिया जाता है जिसका चित्रण **पंकज सुबीर** ने इस प्रकार किया है-“वैसे भी मुआवजे के नाम पर मिलता ही क्या है किसान को ? एक हेक्टेयर जमीन अगर सिंचित है तो उस

¹³³फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 154

पर नौ हजार रुपये और अगर असिंचित है तो पैतालीस सौ । और आपको पता है एक हेक्टेयर में अगर किसान का नुकसान न हो, तो कितने का गेहूँ निकलेगा ? पचास हजार का । पचास हजार के नुकसान पर आप दे रहे हैं नौ हजार और उस पर भी सरकार का एहसान है । मैं खुद किसान हूँ, मुझे पता है कि किसानों आज की तारीख में कितना मुश्किल काम हो गई है ।”¹³⁴

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में प्रशासन की कथित चालाकियों को बेपर्दा किया गया है । प्रशासन इतना भ्रष्ट है कि किसानों के हित में सरकार द्वारा चलाई गई योजना जिसके अंतर्गत किसान अपना ‘क्रेडिट कार्ड’ दिखाकर कृषिकार्य हेतु बैंक से लोन के रूप में रुपया ले सकता है । साधारण और गरीब किसानों को सरकारी कागज से इतना डर रहता है कि जैसे ही रामप्रसाद को नोटिस मिलती है वह खाना-पीना छोड़कर सरकारी दफ्तरों का चक्कर लगाने लगता है । जिसका जिक्र पंकज सुबीर ने इस प्रकार किया है –“किसान क्रेडिट कार्ड सबसे आसान तरीका है बैंकों से छः महीने के लिए नामिनल ब्याज पर पैसा लेने का । बिचौलिए और हमारे ही बैंक के लोग मिलकर सारा खेल करते हैं । 6 महीने बाद पूरा पैसा जमा कर देते हैं और फिर उसी खाते में एक बार फिर से लोन ले लेते हैं । पैसा जमा हो जाता है, तो किसी को कोई परेशानी नहीं होती । किसान तक को पता नहीं चलता कि उसके नाम से कोई किसान क्रेडिट कार्ड बना है । ब्लडी किसान क्रेडिट कार्ड ।”¹³⁵

ऊपर से प्रकृति की मार से उसकी सारी फसल बर्बाद हो जाती है । बैंक के कर्जे को सुनकर वह बहुत परेशान होता है । कोर्ट कचहरी से लेकर अमीन और पटवारी तक दिन रात यह मालूम करने की कोशिश करता है कि आखिर मेरे नाम पर लोन लिया किसने ? मालूम न होने पर अपना आपा खो देता है । उसे ऐसा सदमा लगता है कि वह आत्महत्या कर लेता है । उसके बाद वही

¹³⁴अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 174

¹³⁵अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 139

होता है- मीडिया आती है, बयानबाजी होती है। अपने अनुसार जालसाजी लोग रिपोर्ट तैयार करवाते हैं और चले जाते हैं। रह जाती हैं तो बस वही रामप्रसाद के ख्वाइशों का अधूरा मकान।

यह देश कृषि प्रधान देश होने के बावजूद भी किसानों के लिए, उसके दर्द मिटाने के लिए ईमानदार प्रयास करने की नियत नहीं दिखती। सरकार के पास सिर्फ चुनावी जुमले रह जाते हैं। जिसका उल्लेख राजू शर्मा ने 'हलफनामे' उपन्यास में बहुत ही संजीदगी से करते हैं। मानवीय रिश्ते की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि अपने पिता की मृत्यु पर मुआवजा के लिए कई हलफनामों से गुजरना पड़ता है। एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं बल्कि उसे बारी-बारी से उन्नीस हलफनामे देना पड़ता है। और उसमें भी नौकरशाही की असंवेदनशीलता ऐसी की अचानक एक दिन तहसीलदार कहता है कि उसने जो हलफनामे दिए थे वे सब गायब हो गए हैं। और यदि मुआवजा चाहिए तो सभी अफसरों की जेब गर्म करना पड़ेगा।

4.11 किसान से मजूर तक

किसान जो अन्नदाता कहलाता है वही आज परिस्थितिवश या सरकार की असचेतता के कारण मजबूर होकर किसान से मजदूर बनता जा रहा है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा वर्ग किसान रहा है और है भी। जिस देश में आधे से अधिक आबादी खेती का काम करता हो तो स्वाभाविक सी बात है कि इस वर्ग को सम्मिलित किए बगैर भारतीय संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती है। किसान के बिना भारतीय संस्कृति का विश्लेषण अधूरा रहता है क्योंकि भारतीय संस्कृति में किसान की संवेदना और इतिहास समाया हुआ है।

भारत में नई अर्थनीति लागू होने से पहले कृषि सुधार संबंधी औद्योगिक और हरित जैसी क्रांतियाँ हो चुकी थीं। इन क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य नए तरीके से खेती करवाना और फसलों के उत्पादन में तेजी लाना था। भारत में दिनोंदिन बढ़ती आबादी को देखते हुए यह आवश्यक है भी है कि कृषि क्षेत्र में नए-नए विकासात्मक प्रयास किए जाएँ। किसान दिन-रात खेतों में मेहनत

करके फसल उगाता है लेकिन सरकार की अदूरदर्शिता और प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसान मजबूरन खेती छोड़ रहा है और जीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहा है। धीरे-धीरे किसान अपनी गरिमा, पहचान और सांस्कृतिक विरासत खोता जा रहा है और किसान से मजदूर में तब्दील होता जा रहा है। खेती से पलायन का मतलब ही है दूसरों की मजदूरी करना। भारतीय किसानों को किसान से मजूर बनने के निम्नलिखित कारण हैं-

1. भारतीय समाज पर पूँजीवाद का वर्चस्व।
2. जमींदारों से किसानों को लिया गया कर्ज की अदायगी न कर पाना।
3. किसान द्वारा उत्पादित फसलों का उचित दाम न मिलना।
4. भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आना।
5. ठेके पर खेती का होना।
6. जमीन वितरण का सही तरीके से क्रियान्वयन न होना।
7. सरकार का किसानों के प्रति दुलमुल रवैया।
8. दिनोंदिन बढ़ती महँगाई।

किसान सिंचाई जैसी तमाम असुविधाएँ जैसे-फसलों का उचित मूल्य न मिलना और दिन प्रतिदिन वस्तुओं के दामों की बढ़ोत्तरी आदि समस्याओं के गिरफ्त में फँसे बहुत सारे किसान खेती करने से अच्छा कोई दूसरा काम धंधा करना ज्यादा पसंद करते हैं। 'खेतिहर समाज' शीर्षक से सम्पादित पुस्तक की भूमिका में **चैतन्य कृष्ण** लिखते हैं- "गिरती आमदनी, बढ़ता कर्ज, बर्बाद होती फसल, आबाद होने के बाद खरीददार के अभाव में बेची जाती उपज, महँगे होते बीज, उर्वरक और कीटनाशक और उनके बाजार पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बढ़ती पकड़, खेतिहर समाज पर सूदखोरों और महाजनों की कसती गिरफ्त, रोजगार के कम होते मौके, बढ़ता

पलायन यह दुष्चक्र निरंतर दोहराया जा रहा है। इन सभी कारणों की वजह से किसान, किसान से मजूर बन रहा है।”¹³⁶

खाद्यान्न उद्योग में बढ़ता एकाधिकार कृषि पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। जो कि विश्व के अधिकांश गरीबी की आमदनी का एक मात्र जरिया है। अभी तक के प्रभाव बता भी रहे हैं कि ग्रामीण गरीबी उन्मूलन में छोटी अर्थव्यवस्था अधिक कारगर सिद्ध होती है। जैसे-जैसे इसका विस्तार होता जाएगा और कृषि कॉरपोरेट की बाजार में हिस्सेदारी बढ़ती जाएगी राज्य भी कृषि सम्बन्धी कानूनों में बदलाव करेंगे और कॉरपोरेट जगत मिट्टी से लेकर भोजन की थाली तक सब पर कब्जा कर लेगा। भारत में कल-कारखाने और उद्योग धंधे खुलने से किसानों की जमीनों पर कम्पनियों का कब्जा हो रहा है। अपनी उपजाऊ जमीनों को किसान विवश होकर बेच रहा है। हालत यह हो गई है कि किसान अपनी ही जमीन पर नौकर या मजदूर बनता जा रहा है।

मल्टीनेशनल कंपनियों के उदय और ठेके की खेती ने भारतीय किसानों से उसकी किसानी छीन रहा है। किसान अपनी ही जमीन में मालिक से नौकर बनता जा रहा है। बानगी के रूप में इसे हम इस प्रकार देख सकते हैं-“यह बहुत बड़ा षड्यंत्र है। बड़ी कांसपिरेसी है। यह सारी परेशानियाँ प्राकृतिक नहीं हैं, यह तो पैदा की जा रही हैं किसान के सामने। बिजली, खाद और बीज तो दो किसानों को। लेकिन नहीं, हमें तो वह समय देखना है जब मल्टीनेशनल कंपनियाँ खेती करेंगी और किसान अपने ही उन खेतों में मजदूरी करेंगे, किसानों के बच्चे इन मल्टीनेशनल की फैक्ट्रियों में श्रमिक बनकर काम कर रहे होंगे।”¹³⁷

¹³⁶ खेतिहर समाज, प्रधान हरिशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या : 1

¹³⁷ अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 175

4.12 महिला किसान

महिला या स्त्री समाज का महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है। पुरुषों के साथ खेती-किसानी में हाथ बंटाने वाली स्त्री की स्थिति प्राचीन काल से ही दयनीय रही है इसे समाज में अबला और कमजोर बताया गया है लेकिन किसान-जीवन संबंधी उपन्यासों में स्त्री के विविध रूपों के साथ स्त्री का वह रूप भी दिखाया गया है जो बिना पति के संघर्षों के साथ जी रही है। सामान्य तौर पर किसान नाम लेते ही अधिकांशतः यह देखा जाता है कि किसान परिवारों में किसी पुरुष का ही नाम लिया जाता है। हमारे देश में आधी आबादी महिलाओं की है और कृषि के क्षेत्र में महिलाएं का योगदान अहम है जो पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही हैं और खेतों में काम कर रही हैं। जबकि एक तरह से देखा जाय तो खेती-किसानी में महिलाओं की भी बहुत बड़ी भूमिका होती है। जमींदारों और बड़े ओहदे के किसानों के घरों की महिलाएँ तो खेतों में काम करने नहीं जातीं क्योंकि उनके यहाँ पुरुषसत्ता कुछ ज्यादा ही वर्चस्ववादी है। वहीं दूसरी तरफ मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग की महिलाएँ खेतों में जीतोड़ मेहनत करतीं हैं। कामकाजी महिलाएँ अधिकतर मजदूर किसानों में ज्यादा देखने को मिलता है क्योंकि उनके पास मजदूरी के अलावा कोई और आर्थिक स्रोत नहीं होता है।

खेतों में काम करने के बाद इन महिलाओं को घर का सारा काम-काज करना पड़ता है जैसे- समय से खाना बनाना, बच्चों की देखभाल करना आदि। जिनको ये ग्रामीण महिलाएँ बखूबी निभाती रही हैं। उत्तर भारत के अधिकतर इलाकों में वर्ष में दो बार सीजनी खेती होती है परन्तु कहीं-कहीं सुविधा के अनुसार हरी सब्जियाँ और नगदी फसलों का भी उत्पादन किया जाता है। जिसमें महिलाओं की भूमिका बढ़-चढ़ कर होती है। फिर भी इन्हें किसान का दर्जा नहीं मिल रहा है।

महिला किसानों को किसान का हक मिले इसके लिए हाल ही में 30 नवम्बर 2018 को रामलीला मैदान दिल्ली में किसान मार्च निकाला गया। महिलाओं को किसान का दर्जा मिलना चाहिए। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि 70 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएँ खेती में हैं लेकिन मल्लिकयत उनके पास नहीं है। (BBC News) मल्लिकयत नहीं होने से सरकारी योजनाओं का लाभ भी इन्हें नहीं मिल पाता है। जिसके पास जमीन है उन्हीं के नाम पर 'किसान क्रेडिट कार्ड' बनता है। बाकी महिलाओं को मजदूर का दर्जा दिया जाता है जो बटाईदार किसान है, मजदूर किसान है वे साहूकार के चपेट में हैं।

कृषि नीति विशेषज्ञ **देविंदर शर्मा** विधवा महिला किसानों की वर्तमान स्थिति को दिखाते हैं। वे दिल्ली में हुए विशाल किसान आन्दोलन (4दिसम्बर 2018) के प्रत्यक्षदर्शी रहे और वहां मौजूद पंजाब जैसे सिंचित प्रदेश में जो किसानों ने आत्महत्याएँ की हैं उन्हीं की विधवाएँ अपने हक के लिए आन्दोलन में आई थीं उन्हें न तो कोई मुआवजा दिया जा रहा है और न ही कोई सब्सीडी। देविंदर शर्मा लिखते हैं कि-“जब विधवाएँ अपनी पीड़ा और कठिन संघर्ष का बयान कर रही थी परिवार के अकेले कमाऊ व्यक्ति के चले जाने के बाद उन्होंने मुश्किल हालातों का किस प्रकार सामना किया, तब मैं यह सोचकर हैरान हो रहा था कि पंजाब को खाद्यान्न का कटोरा कहा जाता है। वह किसान की आत्महत्या की क्यारी में कैसे हो गया है। और यहाँ के करीब 98 फीसदी ग्रामीण परिवार कर्ज में क्यों हैं।”¹³⁸

खेतों में गेहूँ, जौ, मक्का और धान की फसलों में अतिरिक्त रूप से उगे हुए घासों को निकालने और चाय के बगानों के कार्यों में अधिकतर महिलाएँ ही कार्य किया करती हैं। हालाँकि औद्योगीकरण तथा आधुनिकता के दौर में अधिकांशतः खेती वैज्ञानिक तरीके से की जा रही है। इस नवीनीकरण कृषि में खेतों में बीज बोने या फसलों की रोपाई के साथ ही साथ रासायनिक

¹³⁸अमर उजाला, प्रयागराज 4 दिसंबर 2018 पृष्ठ संख्या : 6

खादों या रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग भी किया जाता है जिससे फसलों के साथ खरपतवार उगने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता पर ऐसी सुविधाएँ सिर्फ बड़े किसान ही उठा रहे हैं। छोटे जोत के किसान आज भी निराई-गुड़ाई के लिए महिलाओं को मजदूर के रूप में प्रयोग करते हैं। वास्तविकता यह है कि **भारतीय किसान की असली तस्वीर एक महिला किसान ही है।**

महिला किसान के सन्दर्भ में **मैत्रेयी कृष्णराज** अपनी पुस्तक **‘भारतीय महिला किसान’** में लिखती हैं-“परंपरागत रूप से महिलाओं ने हमेशा कृषि जगत में महती और विविध भूमिकाएं निभाई हैं। चाहे वह किसान के रूप में हो या सह-किसान, पारिवारिक मजदूर, दिहाड़ी मजदूर या फिर प्रबंधक के तौर पर। यह नहीं बीजों का चुनाव, उनका रख-रखाव, भण्डारण, विकास और बीजों का आदान-प्रदान हमेशा ही महिलाओं के हाथ में रहा है। महिलाएं केवल फसल उगाने में ही नहीं बल्कि इससे संबंधित दूसरे क्षेत्रों, मसलन बागवानी पशु-पालन और मछली-पालन में भी सक्रिय भूमिका निभाती रही हैं।”¹³⁹

किसान मजदूरी करने के लिए नगरों में जा रहा है। पिछले कुछ दशकों से पुरुषों के किसानों छोड़कर जाने से खेती-बाड़ी की जिम्मेदारी महिलाओं के हाथों में आ गई है। बाजारवाद के प्रभाव से कृषि क्षेत्र में बहुत बड़ा बदलाव आया है। “कृषि क्षेत्र में ज्यादातर परिवर्तनों ने किसानों के घरों खासतौर पर महिलाओं को प्रभावित किया है और इनमें से ज्यादातर ऐसी महिलाएं हैं जो परिवार की अकेली या मुख्य कमाऊ सदस्य हैं। इसे हाल के दिनों में आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र में किसानों की बड़े पैमाने पर हो रही आत्महत्या की घटनाओं से भी जोड़ा जा सकता है। जहाँ अब ज्यादातर परिवारों में विधवाएं ही परिवार चलाने का जिम्मा उठा रही हैं।

¹³⁹भारतीय महिला किसान, पृष्ठ संख्या : 1

कृषि और उसके बदलाव को संचालित करने वाला ढांचागत और नीतिगत वातावरण हमारे समाज की पितृसत्तात्मक संरचना और उनके महिलाओं के दोगुने दर्जे से प्रभावित होता है।”¹⁴⁰

महिलाओं द्वारा किए गए आत्महत्या को सरकारी तंत्र द्वारा जायज नहीं माना जाता है। इसके पीछे सबसे बड़ी वजह यह है कि भारतीय समाज पुरुषसत्तात्मक समाज है इसमें पुरुष के नाम पर ही जमीन जायजाद हुआ करती है। पत्रकार **जयपाल सिंह सिद्धू** अपने एक लेख में लिखते हैं कि –“स्थिति यह है कि देश में प्रत्येक किसान परिवार पर जो कर्जा है। उसमें महिलाएं भी समान रूप से भागीदार हैं। लेकिन देश के विभिन्न हिस्सों में महिला किसानों ने आत्महत्या की, तो उन्हें किसानों की आत्महत्या में नहीं गिना गया, क्योंकि उनके नाम से जमीन नहीं थी। लिहाजा उन्हें मिलने वाली किसी भी सुविधा से वंचित रहना पड़ा।”¹⁴¹

जहाँ तक हिंदी कथा साहित्य में महिला किसानों की बात है (विशेष रूप से उपन्यासों के सन्दर्भ में) तो प्रेमचन्द ऐसे पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने गाँव को नजदीकी से देखा है और गाँवों में रहने वाले उन लोगों का उल्लेख किया जो अधिकांशतः खेती-किसानी का काम करते हैं। जिन्होंने ‘गोदान’ उपन्यास में होरी की पत्नी धनिया जैसी साहसी महिला किसान का उल्लेख किया है। धनिया केवल परिश्रमी किसान ही नहीं है बल्कि वह दयावान भी है। एक तरफ प्रेमचंद ने ‘धनिया’ को निर्भीक और चेतनामयी महिला के रूप में चित्रित किया है। वहीं दूसरी तरफ खेतिहर महिला किसानों का भी जिक्र करते हैं।

वास्तव में भारतीय समाज में सबसे परिश्रमी और संघर्षशील वर्ग तो यही खेतिहर महिला किसान है जिसे मजदूर भी कहा जाता है। जिनके पास जमीन का एक भी टुकड़ा नहीं रहता है

¹⁴⁰भारतीय महिला किसान, पृष्ठ संख्या : 2

¹⁴¹हंस, अगस्त 2006 पृष्ठ संख्या : 192

फिर भी यह वर्ग मेहनत मजदूरी करके अपना जीवन काट रहा है। होरी की मृत्यु के बाद धनिया ही खेती-किसानी का काम संभालती है।

प्रेमचन्द के बाद नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में **संजीव** के उपन्यास **‘फाँस’** में महिला-किसान का बहुत ही दुखदायी चित्रण हुआ है। उपन्यास में चित्रित शिबू छोटे जोत का एक सीमांत किसान है। एक छोटा-सा परिवार है जिसमें कुल चार सदस्य हैं। वह, उसकी पत्नी शकुन और दो बेटियाँ। एक नहीं दो-दो बार खेतों में बीज डाल चुके हैं। परन्तु अत्यधिक वर्षा के कारण खेतों से बीज बह गए हैं। ऐसी परिस्थितियों में फँसा शिबू कर्ज पर कर्ज लेता गया। कर्ज से परेशान शिबू रात-दिन सोच में पड़ा रहता था।

महाजनों के कर्ज के अलावा दोनों बेटियों की शादी की चिंता ने अंततः शिबू को आत्महत्या करने पर मजबूर होता है यह देश की कितनी बड़ी विडम्बना है कि जिस कुँए को किसान सिंचाई के लिए बनवाया था उसी कुँए में छलाँग लगाकर शिबू जैसे किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। यह बात यहीं नहीं खत्म होती यहीं से एक गरीब किसान के परिवार की बेहद गरीबी का आलम शुरू होता है और परिवार का सारा भार एक महिला किसान पर आ जाता है।

महिला किसान के रूप में आत्महत्या विधवाओं का उल्लेख **‘हलफनामे’** उपन्यास में **राजू शर्मा** ने **पी० साईनाथ** का हवाला देते हुए करते हैं। इन्होंने उन महिला किसानों का जिक्र किया है जिनके पतियों ने आत्महत्या कर ली है जिसे उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है- “आत्महत्या विधवाएँ? यह एक नई सामाजिक किस्म पैदा की है, हमारे देश ने-विधवाएँ जिनके किसान पतियों ने खुदकुशी कर ली। जिस तरह एकाएक उनकी दुनिया टूटती है, उसका अंदाजा हम तुम नहीं लगा सकते, कोई मर्द नहीं समझ सकता। आदमी का न रहना तो एक दुःख है, औरत पर फंदा चारो तरफ से कसता है। खाना, बच्चों की परवरिश, खेत की रखवाली एक तरफ,

लेनदार दरवाजे पर तकाजा करता है, खेत से या आबरू से वह किसे बचाए या क्या बचाए ? पता है सरकारी बीमा कंपनियाँ अनपढ़ किसान औरत का बीमा नहीं करतीं । उनके अधिकारी का कहना है ऐसी औरत इतनी असुरक्षित है कि उनका बीमा करना कंपनी के लिए खुदकुशी करने के समान है ।”¹⁴²

4.13 सरकारी योजनाओं का किसान-जीवन पर प्रभाव

भारत को आजादी मिलने के बाद स्वास्थ्य, शिक्षा और गरीबी उन्मूलन पर सरकार का ध्यान गया । संविधान का सहारा लेकर पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गईं । प्रथम पंचवर्षीय योजना का तो मुख्य उद्देश्य ही था कि कृषि को अधिक से अधिक बढ़ावा दिया जाय और इस देश के किसानों और अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जाय । समय-समय पर किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए योजनाएं बनती रही है । किसानों के आर्थिक स्तर में कैसे सुधार लाया जाय ?, कृषि उत्पादन को कैसे बढ़ाया जाय ? इसके लिए एम०एस० स्वामीनाथन जैसे कृषि वैज्ञानिक ने भारत में ‘हरित क्रांति’ को जन्म दिया है ।

‘हरित क्रांति’ का सबसे ज्यादा प्रभाव पंजाब और हरियाणा जैसे सिंचित राज्यों में ही दिखाई दिया । अन्य राज्यों के किसानों की स्थिति में कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ा । बुंदेलखंड और महाराष्ट्र जैसे इलाकों के किसान सिंचाई के संसाधन न होने के कारण आज भी पानी के लिए तरस रहे हैं । खेतों में जैविक खादों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जा रहा है । प्रथम हरित क्रांति का प्रभाव के सन्दर्भ में देवेन्द्र शर्मा जो कृषि मामलों के विशेषज्ञ हैं लिखते हैं कि-“दूसरी हरित क्रांति उस समय लाया जा रहा है जब पहली क्रांति के पूरी तरह से विफल हो जाने के चिह्न पूरी तरह से दिखाई देने लगे । पहली हरित क्रांति ने प्राकृतिक स्रोतों को समाप्त कर दिया । उन क्षेत्रों के लिए तो यह बात लागू होती है जहाँ सघन रूप से हरित क्रांति को अंजाम दिया गया, हरित क्रांति

¹⁴²हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 52

के क्षेत्र में तो यह असर किसानों की मौत के रूप में दिखाई दे रहा है।”¹⁴³ वर्तमान समय में भारत में कृषि सुधार संबंधी केंद्र सरकार द्वारा निम्नलिखित योजनाएँ चलाई जा रही हैं जो इस प्रकार हैं -

1. परंपरागत कृषि विकास योजना
2. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना
3. राष्ट्रीय कृषि विपणन योजना
4. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना
5. ब्याज रियायत योजना
6. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना
7. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन
8. राष्ट्रीय तिलहन और तेल मिशन कार्यक्रम
- 10 बागवानी के समन्वित विकास के लिए मिशन
- 11 पशुधन विपणन।”¹⁴⁴

इसके अतिरिक्त एक और योजना ‘प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना’ जो फरवरी 2019 को वर्तमान प्रधानमंत्री ने लागू करने की घोषणा की है, इन तमाम कृषि सुधार संबंधी योजनाओं के बावजूद भी लगातार हो रहे किसान आन्दोलनों को देखते हुए यही अनुमान लगाया जा रहा है कि इन योजनाओं का लाभ जमीनी स्तर पर सभी किसानों को नहीं मिल रहा है। किसानों की स्थिति दिनोंदिन बदतर होती जा रही है। एक तरफ सरकार किसानों की आय को वर्ष 2022 तक दोगुना करने की बात कर रही है यह कैसे होगा वक्त ही बताएगा, दूसरी तरफ

¹⁴³हंस, अगस्त 2006, पृष्ठ संख्या : 194

¹⁴⁴<https://hindi.lgoodreturns.in/personal-finance/2017/07/by-12-scheme-narendra-modi-farmer-can-be-increase-their-inco-002070.html>

महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, पंजाब, और हरियाणा जैसे राज्यों में किसानों की आत्महत्या को नहीं रोक पा रही है। सरकार के सारे वादे और दावे खोखले साबित हो रहे हैं।

उपर्युक्त योजनाओं का सही तरीके से क्रियान्वयन न होना तथा दलाल और बिचौलिए का सरकारी दफ्तरों और बैंकों के आस-पास छुट्टा सांड की तरह घूमना। किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने और आत्महत्या को रोकने के उद्देश्य से सरकार पशुपालन को महत्व दिया और ‘पशुधन बीमा’ जैसी योजना भी चलायी जा रही है। इस योजना के अंतर्गत सरकार किसान को विदेशी नस्ल की गाय दी जाती है ताकि दूध का व्यापार करके जीवन स्तर को सुधार सके। परन्तु होता इसके एकदम उल्टा है जिस इलाके में यह योजना चलाई जाती है वहां इतना अधिक दूध होने लगता है कि उस इलाके में दूध का खरीदार कोई व्यापारी नहीं मिलता। अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि अगर दूध नहीं बिकता तो किसान गाय को क्या खिलाएगा ? इन्हीं सब मुसीबतों को झेलते हुए किसान दिन ब दिन परेशान होता गया।

जिसका जिक्र ‘फाँस’ उपन्यास में **संजीव** इस प्रकार करते हैं-“विदर्भ की सूखी धरती पर मवेशियों को खिलायेंगे क्या और दूध बेचेंगे कहाँ। कोई इन्फ्रास्ट्रक्चर भी तो बनाना था। अखबार में आये दिन नुक्ताचीनी होने लगी कि नौ-नौ हजार जुटाकर दो-दो मनमोहनी गाय लेकर यहाँ के किसान का लाभ क्या हुआ ? लाभ कहीं हुआ तो बिचौलिए को।”¹⁴⁵

‘किसान क्रेडिट कार्ड’ (KCC) एक ऐसी योजना है जिसके अंतर्गत किसानों को खेती करने के लिए सरकार कर्ज देती है। किसान क्रेडिट कार्ड के नाम पर जो कालाबाजारी हो रही है वह किसी से छिपा नहीं है। उपन्यासकार **पंकज सुबीर** ने इस योजना के द्वारा किसानों के हो रहे शोषण को दिखाया है तथा बैंकों के कर्मचारियों की सच्चाई को पाठकों से रू-ब-रू करवाते हैं।

¹⁴⁵फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 69

बिचौलिए और बैकों की मिली भगत से किसानों के नाम पर कर्ज लिया जा रहा है जबकि किसान को इस बात का कानों कान खबर तक नहीं होती। अशिक्षित और भोले-भाले किसान को जब इस बात का पता चलता है तो वह हक्का बक्का रह जाता है। जिसका चित्रण ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में इस प्रकार किया गया है-“ऐसा कैसे हो सकता है कि तुमने लोन नहीं लिया और नोटिस आ गया। अरे तुम्हारे दस्तखत हुए होंगे, या अँगूठा लगा होगा, बही की कॉपी, खसरा-खतौनी की कॉपी, सब लगा होगा। ऐसे कैसे हो सकता है कि तुम्हें पता ही नहीं है और तुम्हारे नाम का लोन आ गया।”¹⁴⁶ इन्हीं सब समस्याओं से परेशान होकर किसान आत्महत्या जैसे कदम उठा रहा है।

निष्कर्ष

अंततः यह कहा जा सकता है कि हिंदी कथा-साहित्य में विशेष रूप से उपन्यासों में किसान-जीवन की अभिव्यक्ति की जो व्यापक और विस्तृत शुरुआत उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने की थी तथा समय एवं परिस्थिति के अनुसार किसानों के शोषण का जिक्र किया था वही किसान आज नवउदारवाद और बाजारवाद के दौर में भी नए रूपों से शोषण का शिकार है जिसका उल्लेख नवे दशक के बाद के उपन्यासकारों ने किया है।

भारत में नई अर्थनीति(1991) लागू होने के बाद निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण का दौर शुरू होता है। जिसके तहत सरकार द्वारा खुले बाजार की छूट दे दी जाती है यहाँ तक की खेती को भी कॉरपोरेट कंपनियों को ठेके पर दे कर करवाया जाना शुरू होता है जिसकी वजह से किसान अपनी ही जमीन पर मालिक से नौकर बनता जा रहा है। किसानों की इन्हीं समस्याओं का जिक्र इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों ने बहुत ही बारीकी से किया है।

¹⁴⁶अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 136

औद्योगिकीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव से पारंपरिक कृषि में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इससे पहले कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से भारत में 'हरित क्रान्ति' हो चुकी थी। खेती के अधिकतर काम-काज अत्याधुनिक निर्मित उपकरणों से होने लगी। फसलों के ज्यादा से ज्यादा उत्पादन के लिए हाइब्रिड जैसे विदेशी बीजों का प्रयोग होने लगा। इसका किसानों के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा जिसकी वजह से बाजारवाद तेजी से बढ़ने लगा। परिणाम यह हुआ कि अधिकतर किसान बाजार पर पूर्णतः निर्भर होता चला गया। किसानों को बीज संरक्षण की जरूरत ही नहीं रही क्योंकि बाजार से अच्छे बीज सुलभता से मिल जाते थे परन्तु महंगाई भी साथ-साथ बढ़ती जा रही है।

भारत में कॉरपोरेट खेती होने से किसानों के श्रम के योगदान की सामूहिकता धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। नवउदारवाद के दौर के किसानों के अन्दर मानवीयता का बहुत तेजी से हास होना आरंभ हुआ है। पूँजीपतियों और कॉरपोरेट कंपनियों के उदय होने से बड़ी संख्या में किसान विस्थापित हो रहे हैं तथा खेती छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं और पलायन के शिकार हो रहे हैं। जिन्दा रहना है तो खाना पड़ेगा, को सोचकर काम धंधों के लिए अपना गाँव छोड़कर शहर को जा रहे हैं।

किसानों के समक्ष कई समस्याएँ हैं जिसकी वजह से किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। योगेन्द्र यादव अपने साक्षात्कार में कहते हैं कि वर्तमान समय में भारतीय किसान के समक्ष आमद, खर्च, आपद और कर्ज ये चार मुख्य समस्याएँ हैं जिनकी वजह से किसानों की स्थिति दयनीय है। कहने का मतलब यह है कि किसान को खर्च की अपेक्षा उसे आमदनी या मुनाफा बहुत कम हो रहा है। खेती में दिनोंदिन खर्च बढ़ता जा रहा है। जिसकी वजह से किसान कर्जदार होता जा रहा है। इसके बाद प्राकृतिक आपदा सूखा या बाढ़ से किसानों को परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है और किसान कर्ज के बोझ तले दबता जा रहा है। उसके सामने सबसे

बड़ी समस्या कर्ज की है वह चाहे सरकारी कर्ज हो या निजी हो। पारिवारिक समस्या, खेत की सिंचाई की समस्या और बैंक के कर्ज की समस्या या साहूकार से लिया गया कर्ज, इन तमाम समस्याओं से परेशान किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। कर्ज की अदायगी न करने के कारण के अलावा किसानों द्वारा उत्पादित फसलों का उचित दाम न मिलना भी किसान आत्महत्या का एक बहुत बड़ा कारण है।

महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों में किसान कपास का उचित दाम न मिलने के कारण व सिंचाई की सुविधा बहुत कम होने के कारण आत्महत्या कर रहा है। किसानों द्वारा की गई आत्महत्या को जायज ठहराने को लेकर भ्रष्ट शासन तंत्र का भी खुलासा **संजीव और राजू शर्मा** जैसे उपन्यासकारों ने किया है। महिला किसान का भी जिक्र इस अध्याय में किया गया है। क्या मुआवजे की धनराशि आत्महत्या किए गए किसानों की पत्नियों को दी जा सकती है? या नहीं? इसके उत्तर में सरकार का कहना है कि मुआवजा उसी को दिया जा सकता है जिसके नाम जमीन है फिर चाहे किसान का बेटा ही क्यों न हो? बड़ी संख्या में महिला किसान मुआवजे को लेकर दिन-रात सरकारी दफ्तरों का चक्कर काटती हैं पर इन महिला किसानों को न्याय नहीं मिल रहा है। ये वही महिला किसान हैं जिनके पतियों ने आत्महत्या कर ली है। निम्न और मध्यम वर्ग के किसानों के जीवन में तो समस्याओं का अम्बार है। इनकी ही समस्याओं को नेता लोग राजनीति का आधार तो बनाते हैं पर ये समस्याएँ कहाँ से उत्पन्न हो रही हैं? इन समस्याओं के मूल कारण क्या हैं? इन समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं देता। कुछ कर्ज तो माफ हो जाता है परन्तु कर्ज माफ़ी ही समस्या का समाधान नहीं है।

पंचम अध्याय

विवेच्य उपन्यासों की भाषा-शैली

प्रस्तावना

- 5.1 विषय वस्तु और अंतर्वस्तु
- 5.2 उपन्यासों के नामकरण की सार्थकता
- 5.3 उपन्यासों की आंतरिक संरचना
- 5.4 उपन्यासों की भाषा
- 5.5 सरकारी तंत्र और प्रशासन की भाषा
- 5.6 साहूकारों की भाषा
- 5.7 अंग्रेजी भाषा का प्रयोग
- 5.8 स्थानीय या आंचलिक भाषा प्रयोग
- 5.9 मीडिया की उपन्यासों में भाषा प्रयोग
- 5.10 बिम्ब और प्रतीक
- 5.11 लोकोक्ति और मुहावरों का रचनात्मक प्रयोग
- 5.12 उपन्यासों का शिल्प
 - 5.12.1 वर्णनात्मक शैली
 - 5.12.2 संवादात्मक शैली

प्रस्तावना

साहित्य की किसी भी विधा के लिए भाषा की अहम भूमिका होती है। भाषा एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने भावों, विचारों और भावनाओं को एक दूसरे के सामने रख सकता है। सामान्यतः भाषा मनुष्य की सार्थक अभिव्यक्ति की वाणी को कहते हैं। ‘भाष्यक्तायामवाचि’ अर्थात् मनुष्य की व्यक्त वाणी ही भाषा है। इसी प्रकार भाषा के माध्यम से व्यक्त भावों एवं विचारों को ग्रहण भी किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि भाषा सामाजिक मनुष्यों के बीच भावों तथा विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान का एक सार्थक माध्यम है। भाषा एक सम्प्रेषण का कार्य करती है। भाषा के आधार पर ही हम एक दूसरे की सांस्कृतिक विरासत को जानते और पहचानते हैं। भाषा के सन्दर्भ में डॉ० श्यामसुन्दर दास का मानना है कि- ‘मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।’

किसी कवि या लेखक या रचनाकार की पहचान उसकी अपनी भाषा होती है। हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन भी आदिकाल से आधुनिक काल तक अपभ्रंश, अवधी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली में लिखा गया है। प्रत्येक युग की अपनी अलग-अलग भाषा रही है। यदि रीतिकाल और भक्तिकाल में ब्रजभाषा का वर्चस्व रहा तो आधुनिक काल तक आते-आते खड़ीबोली हिंदी साहित्य में प्रयोग की जाने लगी। खड़ीबोली भाषा के संवर्धन और विकास का कार्य ‘सरस्वती’ पत्रिका के महान संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। विविध विधाओं के माध्यम से लेखक समाज में व्याप्त सच्चाई को अभिव्यक्त करता है। आधुनिक काल की सबसे लोकप्रिय विधा उपन्यास है। उपन्यास की कथावस्तु विस्तृत होती है।

किसी भी लेखक के साहित्य में मानक भाषा के साथ ही उसकी अपनी स्थानीय बोली के पुट भी जाने-अनजाने रूप में प्रयुक्त होते रहते हैं। यह लेखक के सामाजिक परिवेश का प्रभाव

होता है। स्थानीय बोली ही लेखक की अपनी पहचान बताती है। साहित्य में उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें स्थानीय एवं शब्दों के प्रयुक्त होने की पर्याप्त संभावना रहती है। भाषा में कहावतें और मुहावरे होना आवश्यक है। कहावतें और मुहावरा तो भाषा के असली प्राण हैं। भाषा के सन्दर्भ में यह बात कही जाती है कि— “मुर्दा है वह, भाषा जिसमें कहावतें और मुहावरे नहीं हैं।”¹⁴⁷

उपन्यासों की भाषा के सन्दर्भ में गरिमा श्रीवास्तव लिखती हैं— “जीवन और साहित्य के बीच के सम्बन्ध को भाषा द्वारा ही जाना जा सकता है। निजी अनुभवों, सामाजिक उपलब्धियों को समाज तक सम्प्रेषित करने का काम भाषा ही करती है। साहित्य की भाषा-जन भाषा में से ही निकलती है। यह जितनी अकृत्रिम और जीवन्त होती है, यथार्थ को व्यक्त करने में उतनी ही सक्षम होती है। मुहावरों, लोक में प्रचलित उक्तियों एवं शब्द शक्तियाँ, बिम्ब एवं प्रतीक, मिथक, फैंटेसी के बल पर वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों, संवेदनाओं को पाठक तक सम्प्रेषित करती है। जबकि उपन्यास मनुष्य चरित्र के माध्यम से जीवन के विविध रूपों का उद्घाटन करता है। तब उसकी भाषिक संरचना की ओर उपन्यासकार को विशेष ध्यान देना पड़ता है। उपन्यास जटिल मानसिकता को वहन करने, जीवन की त्रासदियों को व्यक्त करने के लिए, कथा की बुनावट कल्पना, प्रचुरता, व्यंग्यात्मकता के लिए जन-भाषा में से ही अपनी भाषा की खोज करता है।”¹⁴⁸

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत उपन्यासकारों की भाषा प्रयोग के बारे में विस्तार से बात की गई है। इसके साथ ही भाषा का महत्त्व और सामाजिक परिवेश के अनुसार स्थानीय शब्द और बोलियों के प्रयोग को भी दिखाया गया है। एक किसान की भाषा में जो सीधेपन और ईमानदारी की मिलावट होती है, उसे भी बहुत सहज रूप से दिखाने की कोशिश की गई है। किसानों के

¹⁴⁷विमर्श : अकाल में उत्सव, संपादक- डॉ. ओम सुधा ढींगरा, पृष्ठ संख्या : 96

¹⁴⁸<https://solldulaclin/mod/book/view.php?id=2465&chapterid=1765>,

लिए साहूकारों के द्वारा प्रयोग की गई भाषा को भी दिखाया गया है। किसान-जीवन आधारित उपन्यासों की भाषा आमजन भाषा और किसानों की भाषा है।

5.1 विषय वस्तु और अंतर्वस्तु

एक साहित्यकार अपने लेखन के माध्यम से अपने समय सापेक्ष समाज की सच्चाई को कहानी, उपन्यास या किसी भी विधाओं के माध्यम से पाठक के समक्ष लाने का प्रयास करता है। इस लेखन के क्रम में प्रत्येक लेखक का अपना एक उद्देश्य होता है। इसी उद्देश्य से वह अपने मानस पटल में एक कल्पना करता है और अपने साहित्य में उसे विस्तार देता है। जिससे उसे एक विषय मिल जाता है। विषय वस्तु से तात्पर्य यह है कि किसी भी व्यक्ति का मूल विचार क्या है? कल्पना, विचार आदि के रूप में रहने वाला वह मूल तत्त्व जिसे आधार मानकर कोई कलात्मक या कौशलपूर्ण रचना की गई हो। हमारे इर्द-गिर्द कई घटनाएँ घटित होती रहती हैं। जिनके कई भाग और तत्व होते हैं। जिनके बीच स्थायी सम्बन्ध, संयोजन या अंतर्क्रियाएँ होती रहती हैं। इन अंतर्क्रियाओं को संरचना कहते हैं। इसी आधार पर किसी भी संरचना के दो पक्ष होते हैं। एक बाह्यपक्ष और दूसरा आंतरिक। संरचना के बाहरी पक्ष को रूप और भीतरी या आंतरिक पक्ष को अंतर्वस्तु कहते हैं।

मसलन यह कहा जा सकता है कि इन दोनों उपन्यासों में भले ही बहुत-कुछ समानता हो फिर भी दोनों की विषय-वस्तु एक दूसरे से भिन्न हो सकती है। जैसे- प्रेमचन्द के कथा साहित्य की विषय वस्तु ग्रामीण परिवेश होता है, जयशंकर प्रसाद के नाटकों की विषय वस्तु ऐतिहासिक परिवेश है। जैनेन्द्र के उपन्यासों की विषय वस्तु मनोविज्ञान है। उसी प्रकार चयनित शोध विषय में उपन्यासों का विषय वस्तु ग्रामीण परिवेश और भारतीय किसान है। हाँ भले ही भिन्न-भिन्न लेखकों की अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति अलग-अलग हो सकती है पर विषय वस्तु एक है और वह है— किसान जीवन। खासकर उन सभी उपन्यासों की विषय वस्तु गाँव और गाँव का परिवेश है

जो उपन्यासकार गाँव में पला-बढ़ा है। एक तरह से कहा जाय तो जिन लेखकों ने प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ाने का काम किया वही ग्रामीण-जीवन और ग्रामीण-संस्कृति का विषय वस्तु संजीव जैसे कथाकारों की कथाओं में दिखाई देती है। वे बातें या कथानक जिनका किसी लेख, ग्रंथ आदि में विवेचन हो या जिनका विवेचन करना हो वही उस लेख का विषय होता है।

किसी भी उपन्यास की विषय वस्तु भले ही एक हो सकती है परन्तु अंतर्वस्तु भिन्न-भिन्न होती है। उपन्यास के अन्दर जो कथाओं की आंतरिक बुनावट होती है उसे अंतर्वस्तु कहा जा सकता है। अंतर्वस्तु कथा की संरचना प्रांतीय भौगोलिक वातावरण या स्थानीय राजनीतिक परिघटना हो सकती है। प्रत्येक लेखक के सामाजिक परिवेश के कारण उसके उपन्यास की अंतर्वस्तु भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के तौर पर किसान जीवन से संबंधित सभी उपन्यासों की विषय वस्तु तो गाँव का जीवन, गाँवई संस्कृति, गाँव का भौगोलिक वातावरण और भारतीय किसानों के जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव को अपने लेखन का आधार बनाता है।

किसान जीवन पर केन्द्रित उपन्यासों का विषय वस्तु गाँव का भौगोलिक और सामाजिक परिवेश है जिसका उल्लेख उपन्यासों में इस प्रकार है- “गाँव के निकार पर पीपल का एक पुराना दरख्त था जिसके निचे चबूतरा बना था। पास में एक पुराना पक्का कुआँ था। जमींदार के ज़माने का बना हुआ। गाँव में बारात आती तो जनवासा वहीं लगता था। तीज-त्योहार और पद-पंचायत के लिए भी लोग वहीं जमा होते थे।”¹⁴⁹

इसी प्रकार **सत्यनारायण पटेल** का उपन्यास ‘गाँव भीतर गाँव’ की भी विषय वस्तु के केंद्र में गाँव है। भारतीय किसान का जो हुलिया होता है उसे पटेल जी इस प्रकार वर्णित करते हैं—“उस सुबह नगजी बा भजन गाते हुए अपने बैल-बक़्खर के पीछे चल रहा था। उसके एक हाथ में रास और दूसरे में पिराना था। सिर पर सफ़ेद टोपी, बदन पर लट्टे की फतवी। कंधे पर हल्का

¹⁴⁹बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 15

गुलाबी गमछा। कमर पर धोती थी जिसकी दोनों काँछ ओट रखी थी। पैरों में नायलान के बूट जो दो बार सिलाये जा चुके थे। मोटा अम्बा के नजदीक का खेत था, उसी को बखरने जा रहा था। नागजी बा की जिंदगी के अर्थशास्त्र की धुरी उसी एक मात्र खेत में गड़ी थी। लेकिन परिवार की जरूरत पूरा नहीं होती थी।”¹⁵⁰

बाजारवाद और नवउदारवाद के प्रभाव से भारतीय गाँवों में दिनोंदिन जो बदलाव आ रहा है उसे विवेकी राय के ‘नमामि ग्रामम्’ उपन्यास में देखा जा सकता है चूँकि विवेकी राय गाँव से जुड़े हुए ऐसे लेखक हैं जिन्होंने ग्रामीण जीवन को बहुत ही बारीकी से देखा और जिया है। इन्होंने गाँव की कल्पना एक बुजुर्ग व्यक्ति से की है। उसी गरीब-बुजुर्ग से बात-चीत के सहारे विवेकी राय भारतीय गाँव के बदलते स्वरूप और संरचना को पाठक के सामने रखने की कोशिश करते हैं। इनकी सभी कहानियों और उपन्यासों में गाँव का विस्तृत रूप उभरकर सामने आया है। निजीकरण, बाजारीकरण और उदारीकरण से गाँवों में बदलाव तो आया ही है इसके साथ ही बड़ी संख्या में आदिवासियों को उनकी ही जमीनों से बेदखल होने पर मजबूर किया गया है।

नवउदारवाद के प्रभाव से गाँवों में एकाएक जो परिवर्तन आया है उसका उल्लेख विवेकी राय इस प्रकार करते हैं- “यही चेहरा आज देखता हूँ कि मुरझाया है। गाँव बहुत आहत है। उदास है और समृद्धि की मार से उखड़ता-उखाड़ता जा रहा है। उसका दुखड़ा कोई सुनने वाला नहीं है। वह घोर अपेक्षापूर्वक घनघोर उपेक्षा का शिकार है। लोग उससे भाग रहे हैं, उससे कतरा रहे हैं और जहाँ तक बन पड़ता है उसके प्रति छल कर उसका अनेक स्तरीय दोहन-शोषण कर रहे हैं। वह अपनी नई नियति पर रो रहा है।”¹⁵¹

¹⁵⁰गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, पृष्ठ संख्या 117

¹⁵¹नमामि ग्रामम्, विवेकी राय, पृष्ठ संख्या : 5

गाँव अब गाँव नहीं रहा वह अब शहर और कस्बों में तब्दील होता जा रहा है। शहरी रीति-रिवाज जिसे शहर के लोग अपना संस्कृति कहते हैं, अब गाँव में पूरी तरह फैल गयी है। जिसे पाश्चात्य-संस्कृति कहा जाता है। यह बात भी सही है कि जब गाँव का विकास होगा तभी देश का विकास माना जायेगा क्योंकि भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। विकास, गाँव को समाप्त करके नहीं किया जा सकता है। गाँव में भी शहर जैसी शिक्षा और स्वास्थ्य की समुचित सुविधाएँ मुहैया करायी जाय।

काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रघू' उपन्यास की विषय वस्तु भी गाँव ही है। उपन्यास का नायक न तो शहरी संस्कृति को ठीक से अपनाना चाहते हैं और न ही गाँव की संस्कृति को पूरी तरह छोड़ना ही चाहते हैं। इसी ऊहापोह की स्थिति में फँसा हुआ है।

काशीनाथ सिंह गाँव के बदलते स्वरूप को रघुनाथ का हवाला दे कर कुछ इस प्रकार देखते हैं- "गाँव ही वह नहीं रहा तो वह गाँव में क्या रहते ? पहाड़पुर जाना जाता था अपने बगीचों, बँसवार और पोखर के कारण- जहाँ चिड़ियों की चहचआहट और गाय भैंसों के रंभाने और बैलों की घंटियों की टनटननाहत से बस्तियाँ गूँजती रहती थीं लेकिन अब पेड़ कट गए हैं, बँसवार साफ हो गई थी और पोखर धान के खंधों में बँट गई थी।"¹⁵²

कथाकार संजीव एक प्रयोगधर्मी और प्रत्यक्षदर्शी उपन्यासकार हैं। इन्होंने महाराष्ट्र के विदर्भ इलाके के किसानों के जीवन में आने वाली समस्याओं का चित्रण 'फाँस' उपन्यास में किया है। संजीव के इस उपन्यास की विषय वस्तु के केंद्र में गाँव और किसान-जीवन है। महाराष्ट्र के इस इलाके में किसानों की सबसे बड़ी और विकराल समस्या पानी की है। 'फाँस' उपन्यास में ग्रामीण जीवन और खेत-खलिहान तथा पेड़-पौधों को संजीव इस प्रकार दिखाते हैं- "देखते-देखते आ गई गर्मियाँ। महुए के फूल झर गए उसकी जगह उनके फलों ने ले ली थी।

¹⁵²रेहन पर रघू, काशीनाथ सिंह पृष्ठ संख्या : 61

आम, नीम, जामुन, महुआ, बेर सबके बीजों की गुठलियाँ सख्त हो गयीं और सबके सब पकने की तैयारी करने लगे । करौंदे, जंगली बेलें और दूसरे फलों की सुवास से भर गए जंगल । गिलहरियों, भौरों और तितलियों की मौज ।”¹⁵³

भारत देश में वनों की दृष्टि से सबसे ज्यादा हरे-भरे राज्य मध्यप्रदेश क्षेत्रों के गाँवों और वहां के किसानों के जीवन को युवा उपन्यासकार **पंकज सुबीर** ने अपने लेखन का विषय बनाया है । इन्होंने अपने उपन्यास ‘**अकाल में उत्सव**’ में गाँव का भौगोलिक दृश्य इस प्रकार दिखाया है- “सूखा पानी एक छोटा-सा गाँव । जितना विचित्र नाम, उतना ही विचित्र गाँव । पहाड़ों से घिरा हुआ गाँव, जहाँ पर जमीन अधिक उपजाऊ नहीं है । एक तो मिट्टी भी पथरीली है और उस पर सिंचाई की भी कोई बहुत अच्छी व्यवस्था नहीं है । शायद इसी कारण इस गाँव का नाम सूखा पानी पड़ा होगा । या यह भी हो सकता है कि किसी अपभ्रंश से सूखा पानी बना हो । मिश्रित-सी आबादी वाला यह गाँव है ।”¹⁵⁴

राजू शर्मा के उपन्यास लेखन के केंद्र में भी गाँव और किसान है । इन्होंने भी प्रेमचन्द की परंपरा की कड़ी को आगे बढ़ाने का काम किया है । इन्होंने आंध्रप्रदेश के किसानों की समस्याओं को अपने लेखन का केंद्र बिंदु बनाया है । यदि प्रेमचन्द के समय का किसान जमींदार, सामंतवाद, सूदखोर तथा साहूकार के जुल्म का शिकार था तो राजू शर्मा का उपन्यास ‘**हलफनामे**’ में वर्णित किसान पानी की समस्या और सरकारी मुआवजे को लेकर शोषित और प्रताड़ित है । साथ ही इस उपन्यास में साहूकार के द्वारा भी किसानों का शोषण किया जाता है ।

किसान-जीवन की छवि को राजू शर्मा इस प्रकार व्यक्त करते हैं- “उसने बताया कि उसका बाप- स्वामी रामप्रसाद एक किसान है, सरकारी भाषा में एक ‘लघु कृषक’ । अट्टारह पुश्तों

¹⁵³फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 31

¹⁵⁴अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 7

से वे एक गाँव में रहते आए, पुरखों ने इसी जमीन की मुगलों को लगान दी। यह समझ तो अब आया है कि सरकार ने छोटे काश्तकारों की वसूली माफ़ कर दी, पर जमीन परिवार में बँटकर धीरे-धीरे घटती गई। वह इकलौती औलाद है, यह गनीमत है क्योंकि खेती अब दस बीघे बची होगी, वह भी तीन अलग चकों में।”¹⁵⁵

कथाकार **मदन मोहन** के उपन्यास ‘**जहाँ एक जंगल था**’ की विषय वस्तु भी भारतीय किसानों के जीवन में आने वाले दुखों की गाथा है। यह उपन्यास किसान जीवन के साथ ही साथ ग्रामीण राजनीति के कलेवर को लिए हुए है। यह उपन्यास ठेठ ग्रामीण जीवन में हो रहे बदलाव का एक ऐसा आख्यान है जो गाँव की विकास की कलाई खोलता है। उपन्यास की कथा भूमि उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल का वह इलाका है जो नेपाल के निकट है परन्तु विषय वस्तु देश के समग्र पिछड़े इलाकों के लिए मौजूद है।

‘**जहाँ एक जंगल था**’ उपन्यास की भौगोलिक-संरचना मदन मोहन कुछ इस प्रकार खींचते हैं- “बीरगंज क्रस्बा के पूर्वी सीमांत से एक जंगल शुरू होता था। क्रस्बे के उक्त सीमांत पर एक थाना कायम था। थाने से लगकर ही उत्तर पूरब जंगल ही जंगल था। जंगल का सिलसिला नेपाल की सीमा तक पसरा था। बीच-बीच में जंगल का हिस्सा बनती गँवई बस्तियाँ भी थीं। जिसे वनटाँगिया या वनवासी बस्तियों के नाम से जाना जाता था। इन बस्तियों को वैधानिक रूप से भारतीय गाँव का दर्जा हासिल न था। इसमें ज्यादातर वनटाँगिया मजदूर ही रहा करते थे।”¹⁵⁶

इस प्रकार देखते हैं कि उपर्युक्त वर्णित सारे उपन्यासों की विषय वस्तु के अंतर्गत गाँव, किसान जीवन और गाँव के भौगोलिक वातावरण को दिखाया गया है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार लेखकों ने अपने-अपने इलाके के किसानों की समस्याओं, शोषण और तड़प को

¹⁵⁵हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 7

¹⁵⁶जहाँ एक जंगल था, मदन मोहन, पृष्ठ संख्या : 16-17

दिखाया है। वैसे कई लेखकों के उपन्यासों की विषय वस्तु एक हो सकती है परन्तु अंतर्वस्तु भिन्न-भिन्न होती है। भारतीय समाज अनेक वर्ग, जाति, धर्म और सम्प्रदाय से मिलकर बना है। इसीलिए मनुष्य की समस्याएँ भी अलग-अलग हैं। लेकिन मूल समस्या रोटी, कपड़ा और मकान तथा सम्मानित जीवन जीने की है। किसानों को अपनी किसानी बचाए रखने की समस्या है। उसके फसलों का उचित दाम न मिलने की समस्या है।

भारतीय किसानों के समक्ष कई समस्याएँ और चुनौतियाँ हैं। कॉरपोरेट खेती होने से किसान तबाह हो रहा है। बड़ी मात्रा में किसान, किसानी छोड़ रहे हैं और रोजी रोटी के लिए शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। हिंदी उपन्यासकारों ने इन्हीं समस्याओं को भिन्न-भिन्न अंतर्वस्तु के अनुसार उठाया है। संजीव जैसे कुछ उपन्यासकार तो किसानों द्वारा की गई आत्महत्या जैसी विकराल समस्या का समाधान भी बताते हैं।

किसान आत्महत्या से संबंधित उपन्यासकार **संजीव** के अतिरिक्त **राजू शर्मा** का 'हलफनामे', **शिवमूर्ति** का 'आखिरी छलाँग' और **पंकज सुबीर** का 'अकाल में उत्सव' है। इन लेखकों की विषय वस्तु भले ही एक है पर अंतर्वस्तु भिन्न-भिन्न है क्योंकि इनके उपन्यासों ने घटनाएँ अलग-अलग हैं। ये चार उपन्यासकारों ने भारत के चार क्षेत्रों के किसानों की समस्याओं को अपने-अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। 'हलफनामे' उपन्यास में भारत के उन किसानों की समस्या का वर्णन है जिसकी जो किसान पानी के अभाव के कारण बोरबेल की लिए वहाँ के साहूकार से कर्ज लेता है फिर भी उसकी समस्या का समाधान नहीं हो पाता है। अंत में निराश और हताश होकर आत्महत्या करने पर विवश हो जाता है।

'आखिरी छलाँग' उपन्यास में किसान की समस्या सरकारी कर्ज को लेकर है। उपन्यास का नायक पहलवान खेत और परिवार की परेशानियों के कारण सरकार से लिया कर्ज नहीं अदा कर पाता। अमीन द्वारा उसे बेज्जत किया जाता है। इससे परेशान होकर पहलवान आत्महत्या

कर लेता है। पंकज सुबीर के उपन्यास ‘अकाल में उत्सव’ की कथावस्तु मध्यप्रदेश के किसानों की समस्या को लेकर है। बिचौलिए और बैंककर्मी मिलकर किसानों के साथ छल, कपट और धोखा देकर ‘किसान क्रेडिट कार्ड’ योजना का लाभ स्वयं उठाते हैं। देश के कई इलाकों में किसान क्रेडिट कार्ड के जरिए बैंक और दलालों की तालमेल से इस योजना का अच्छे से दुष्प्रयोग किया जा रहा है जिसका चित्रण इस उपन्यास में किया गया है- “बड़ा तो होगा ही और केसीसी में तो पूरे देश में यही चल रहा है। किसान क्रेडिट कार्ड सबसे आसान तरीका है बैंक से छः महीने के लिए नामिनल ब्याज पर पैसा लेने का।”¹⁵⁷

5.2 उपन्यासों के नामकरण की सार्थकता

उपन्यास एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो अत्यंत लोकप्रिय और विस्तृत है। इस विधा के माध्यम से लेखक पौराणिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और समाज तथा समय सापेक्ष घटनाओं को केंद्र बिंदु बनाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति करता रहा है। जहाँ तक किसी उपन्यास के नामकरण की सार्थकता की बात की जाय तो प्रत्येक लेखक किसी न किसी उद्देश्य से ‘शीर्षक’ का चुनाव करता है। यदि ग्रामीण समाज और उसकी संस्कृति पर आधारित उपन्यासों के शीर्षक को देखें तो लेखकों द्वारा ऐसे शीर्षकों का चुनाव किया जाता है जो गाँव की परंपरा और धर्म के जुड़ाव के साथ ही साथ किसानों के जीवन में आने वाली समस्याओं से कहीं न कहीं जुड़ा रहता है।

भारतीय किसान परंपरा और धर्म के बंधन में इतना फँसा हुआ है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त इसे निर्वहन करने का प्रयास करता रहता है। ग्रामीण परिवेश और वातावरण का प्रभाव उनके शीर्षकों में दिखाई देता है। प्रेमचन्द का किसान जीवन केन्द्रित उपन्यास ‘गोदान’ के नामकरण की सार्थकता की बात करें तो यह ऐसा शब्द है जिसका संबंध हिन्दू धर्म से है। जिसके

¹⁵⁷अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या 139

अंतर्गत किसी व्यक्ति के मृत्यु के बाद ब्राह्मण को गाय दान में देकर सारे पापों से मुक्ति मिल सकती है। यह एक धार्मिक आडम्बर होते हुए भी भारतीय समाज में अपनी पैठ बनाए हुए है। प्रेमचन्द के समय का किसान सामन्ती व्यवस्था में बँधा हुआ था। किसान कर्ज के बेशुमार दंश से परेशान है फिर भी उसके परिवार वालों को गोदान करना पड़ता है। ऐसा हिन्दू परंपरा में होता रहा है। प्रेमचन्द ने इसी धार्मिक परंपरा को आधार बनाकर 'गोदान' उपन्यास में भारतीय किसान परिवार की समस्याओं को अभिव्यक्त किया है।

भारतीय किसानों की मुख्य समस्या जल और जमीन की है। **जगदीश चन्द्र** का उपन्यास '**जमीन अपनी तो थी**' शीर्षक की सार्थकता की बात करें तो यह शीर्षक नाम में ही जमीन है जो किसानों की अन्नदात्री है। भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी एक ऐसा मेहनतकश या कामकाजी वर्ग है जिसके पास खेती करने के लिए जमीन नहीं है फिर भी कृषि का कार्य करते हैं। ऐसे किसानों को भूमिहीन किसान या मजदूर किसान कहा जाता है। लेखक ने ऐसे ही भूमिहीन किसानों की दयनीय स्थिति और निम्नवर्गीय किसान परिवार की समस्याओं को दिखाया है। पाठक को उपन्यास के शीर्षक से ही ऐसा लगता है कि ऐसे किसान जिसके पास कभी जमीन थी लेकिन अब नहीं है। संवैधानिक तौर पर भारत में जमींदारी प्रथा समाप्त होने के बाद भी बहुत सारे ऐसे किसान हैं जिनके पास आवश्यकता से कई गुना ज्यादा जमीनें हैं।

कमलाकांत त्रिपाठी का उपन्यास 'बेदखल' की केन्द्रीय समस्या लगान संबंधी है। उपन्यास का शीर्षक बेदखल फारसी भाषा का शब्द है। यह ऐसा शीर्षक है जिसमें यह झलकता है कि ग्रामीण-संस्कृति और किसानों पर होने वाले अत्याचार को दिखाया गया है। जिसमें लेखक ने आजादी से पूर्व की घटनाओं का हवाला देते हुए ताल्लुकेदारी व्यवस्था तथा इसी व्यवस्था की गिरफ्त में फँसे हुए किसानों के शोषण का उल्लेख किया है।

भारतीय किसानों की सबसे ज्वलंत और मुख्य समस्या किसान आत्महत्या है। किसानों की आत्महत्या से संबंधित शब्दों का चयन करके लेखकों ने उपन्यासों का नामकरण किया है। भारतीय किसान कर्ज जैसी तमाम समस्याओं से तंग आकर कहीं कुँए में कूदकर, कहीं पेड़ से लटककर तो कहीं कीटनाशक दवाओं को खाकर आत्महत्या कर रहा है। शिवमूर्ति ग्रामीण परिवेश के कथाकार हैं। इनका ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास के केंद्र में किसान आत्महत्या है। जिसमें पहलवान नामक पात्र कर्ज और अमीन जैसे सरकारी कर्मचारियों से परेशान होकर आत्महत्या करने पर विवश होता है। इस व्यवस्था द्वारा पहलवान को पहलवानी का यह तोहफा मिलता है कि वह जीवन की आखिरी छलाँग लगाने पर मजबूर हो जाता है।

‘अधबुनी रस्सी एक परिकथा’ की सार्थकता यह है कि किसान जीवन की ज्यादातर इच्छाएँ, इच्छाएँ ही रह जाती हैं। लेखक ने डमरुआ जैसे गाँव का हवाला देते हुए गाँव की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति को आपातकाल के समय की सच्चाई से पाठकों को परिचय कराया है। डॉ. वेणुगोपाल उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं कि-“डमरुआ गाँव और उसमें रहने वालों की जिंदगी ऐसी ही एक अधबुनी रस्सी है। जीवंतता में कोई कमी नहीं है। लेकिन यह एक कड़ी सच्चाई है कि जिजीविषा अपने आपमें कोई गारंटी नहीं - न निर्माण की और न नाश के निराकरण की। फिर यह भी कि जहाँ जिजीविषा, वहाँ आस्था। भले ही अधबुनी जिंदगियाँ लेकिन जिंदगीपन भरपूर - जो आकर्षित भी करता है और अपने अधबुनेपन पर करुणा भी उपजाता है। और सबसे खास बात यह है कि लेखक ने कथा बड़ी सहजता से कही है।”¹⁵⁸ इस उपन्यास की सार्थकता एक यह भी है कि पाठक किसानों की भूमि से संबंधित चकबंदी व्यवस्था और चकबंदी अधिकारी की सच्चाई से रू-ब-रू होता है।

¹⁵⁸अधबुनी रस्सी एक परिकथा, सच्चिदानंद चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या : 6

मदन मोहन का उपन्यास ‘जहाँ एक जंगल था’ के नामकरण की सार्थकता को देखें तो ठेठ ग्रामीण-जीवन में हो रहे बदलाव को बहुत ही गहराई से देखता है और इसी के आधार पर उपन्यास के शीर्षक चुनता है। विकास के नाम पर दिनोंदिन जंगलों को काटा जा रहा है जिससे पर्यावरण असंतुलित हो रहा है। उपन्यास के शीर्षक के नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि किसी स्थान पर पहले जंगल था और अब समाप्त हो गया है। किसान-जीवन आधारित उपन्यासों के लेखकों ने ऐसे शीर्षकों का चुनाव किया है जिससे यह झलकता है कि किसान अपने जमीन को बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है।

सत्यनारायण पटेल के ‘गाँव भीतर गाँव’ उपन्यास के नामकरण की सार्थकता की बात करें तो यह एक ऐसा उपन्यास है जिससे यह स्पष्ट हो रहा है कि गाँव के भीतर भी एक गाँव है। उस गाँव के अन्दर तमाम समस्याएँ हैं, जिसमें दलित परिवार की समस्या, स्त्री स्वाधीनता की समस्या और एक मजदूर किसान किन-किन समस्याओं को झेल रहा है लेखक ने स्पष्ट रूप से दिखाया है। ‘फाँस’ उपन्यास जो संजीव द्वारा लिखा गया है। यह ऐसा उपन्यास है जिसमें किसान अपनी तमाम समस्याओं के दलदल में फँसा हुआ है। एक किसान की छटपटाहट, उसकी विवशता और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ के फँदे से फँसा आत्महत्या करते किसान की कारुणिक कहानी है। ‘फाँस’ शीर्षक नाम सुनते ही पाठक के मन में एक ऐसा प्रतिबिम्ब उभरता है जो किसान की दिक्कतों की गांठ की तरह है। खेती के लिए लिया गया कर्ज किसानों की गले का ऐसा फाँस बनता है जो उसे आत्महत्या पर मजबूर कर देता है। उपन्यास का शीर्षक फाँस रखने के पीछे लेखक की यह मंशा है कि किसान किस प्रकार कर्ज, मर्ज और फर्ज आदि समस्याओं से घिरा हुआ है। इन्हीं समस्याओं को पाठक से अवगत कराना है तथा किसानों की स्थिति में कैसे सुधार हो सकता है। इसका समाधान भी कैसे हो सकता है इसका संकेत भी फाँस शीर्षक के माध्यम से होता है।

भौगोलिक विभिन्नताओं के अनुसार किसानों की अलग-अलग समस्याएँ हैं। पंकज सुबीर का ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास मध्यप्रदेश के किसानों की समस्याओं को दर्शाता है। ‘अकाल में उत्सव’ शीर्षक की सार्थकता की बात करें तो यह शीर्षक दो विपरीत स्थितियों को व्यक्त करता है। एक तरफ किसानों में भुखमरी और अकाल है तो दूसरी तरफ सरकारी अमले और प्यादे राजनीति चमकाने के लिए उत्सव का आयोजन कर रहे हैं। उपन्यास की घटनाओं का अजीब दृश्य है एक तरफ सरकारी उत्सव का कार्यक्रम हो रहा है वहीं दूसरी तरफ आत्महत्या किए किसान का क्रियाकर्म। उपन्यास का शीर्षक यह बयां करता है कि तमाम अनुदान और किसान समस्याओं के समाधान हेतु योजनाओं के बावजूद भी किसान चैन से दो वक्त की रोटी भी नहीं खा पा रहा है।

जहाँ प्राकृतिक आपदाओं से परेशान किसान खेतों में बर्बाद हुई फसलों को देखकर रो रहा है। वह सोच रहा है कि भविष्य में खर्च कैसे चलेगा और दूसरी तरफ मोहन राठी जैसे सरकारी कर्मचारी किसानों की बर्बाद हुई फसलों से उत्सव की शोभा बढ़ाने की बात कर रहा है— “असल में गेहूँ की कुछ बालियाँ चाहिए होगी। कुछ का मतलब थोड़ी ज्यादा। केवल बालियाँ नहीं, पूरा पौधा ही चाहिए होगा। उसी से डेकोरेशन करेंगे असल। फूलों की जगह उसका ही उपयोग करेंगे।”¹⁵⁹

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास शीर्षक में लेखक का उद्देश्य यह है कि किसान बैंक के कर्ज, बिजली का बिल, सरकारी तंत्र का खोखलापन, बर्बाद हुई फसलों के मिलने वाले मुआवजे की सच्चाई और पारिवारिक समस्याओं से लड़ते हुए किसानों के दर्द को पाठक या आम जनता के समक्ष लाना है। यह उपन्यास देश के सरकारी अस्पतालों और सरकारी डॉक्टरों के सच्चाई से

¹⁵⁹अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 177

लोगों को अवगत कराता है तथा सरकारी और निजी अस्पतालों के आपसी गठजोड़ जैसे खोखलेपन को दिखाने का सार्थक प्रयास भी है।

5.3 उपन्यासों की आतंरिक संरचना

संरचना का शाब्दिक अर्थ है-कथावस्तु की बुनावट या गठन, बनने या बनाने का भाव या ढंग। यानी कथावस्तु की बुनावट, उसका आकार, उसकी केन्द्रीय अभिव्यक्ति, उपन्यास का केन्द्रीय विषय क्या है? किसी भी रचना के कथावस्तु का ताना-बाना किन परिस्थितियों के बुना जाता है। इसी कथावस्तु की बुनावट को संरचना कहा जाता है। घटनाओं का चित्रण आदि उसकी संरचना के अंतर्गत आता है। जिस तथ्य से साहित्यिक निर्मिति होती है वह तथ्य ही उस कथा की संरचना होती है। कोई रचनाकार या लेखक अपनी रचनाओं को कैसे और किस परिवेश में रहकर किसी भी घटनाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। उसे उस लेखक या कथाकार की रचनात्मक बुनावट कहते हैं। आतंरिक संरचना से तात्पर्य है कि किसी भी कथा साहित्य में उल्लिखित आतंरिक घटना। रूप और संरचना दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।

इस सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि-“रूप के भीतर ही संरचना की समस्या निहित है। प्रकृति अपने वस्तु रूपों की रचना किस प्रकार करती है हम यह नहीं जानते, पर मनुष्य अपने वस्तु-रूपों का किन उपादानों से और किस प्रक्रिया से निर्माण करता है, इसकी तलाश संभव है। उपन्यास को ध्यान में रखें तो कथ्य, विजन, संवेदना, अनुभव, विचार, कथा, पात्र, परिवेश भाषा आदि उसके प्रमुख उपादान हैं। इन्हीं से उपन्यास बनता है। इन्हीं का संयोजन संरचना है।”¹⁶⁰

प्रत्येक उपन्यासकार के उपन्यासों की संरचना उसके परिवेश के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। भारत देश में स्थानीय विविधता से साथ ही साथ भौगोलिक विविधता भी काफी है। उपन्यास

¹⁶⁰उपन्यास की संरचना, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 9

हिंदी साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें अनेक घटनाएँ समाहित रहती हैं। साहित्य की सभी विधाएँ केवल साहित्यिक रचना मात्र नहीं होती है वह एक राजनीतिक और सामाजिक संरचना भी होती है। किसान जीवन केन्द्रित हिंदी उपन्यासों की आंतरिक संरचना की बात इन उपन्यासों की कथाओं का नायक गरीब और मजदूर किसान है। इन उपन्यासों की कथावस्तु में किसान के जीवन से संबंधित घटनाओं का उल्लेख किया गया है। वर्तमान समय किसान किन-किन समस्याओं से जूझ रहा है और उसका जीवन-यापन कैसा है आदि का चित्रण किया गया है।

किसान-जीवन आधारित ऐसे उपन्यास हैं जिसमें भारतीय गाँव की संस्कृति और सभ्यता से पाठक रू-ब-रू होते हैं। भौगोलिक विविधता के आधार पर भारतीय किसानों की संस्कृति अपनी अलग पहचान बनाती है। गाँव की संस्कृति का ही दूसरा रूप है किसानी संस्कृति। इसी संस्कृति में भारतीय किसान पलता, बढ़ता है और अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनता है तथा अन्न उत्पादक कहलाता है। किसान केन्द्रित उपन्यासों में बाजारवाद की परतंत्रता सहते भारत के कृषक जीवन और ग्राम संस्कृति की करुणगाथा अत्यंत सजीव और मार्मिक रूप में चित्रित है। इनका केन्द्रीय कथ्य है- नवउदारवादी भारतीय समाज का शोषण चक्र।

आंतरिक संरचना के सन्दर्भ में फ्लोबेर और प्रेमचन्द का हवाला देते हुए गोपाल राय लिखते हैं कि-“फ्लोबेर का उद्देश्य उस दृश्य को हमारे सामने रख देना मात्र होता है। जिसे हम शनैः शनैः उभरने वाले चित्र या नाटक के रूप में ग्रहण कर सकें। प्रेमचन्द ने भी गोदान का आरम्भ इसी प्रकार के दृश्य से किया है। होरी अपने जमींदार मालिक राय साहब से मिलने के लिए तैयार है। उसकी पत्नी धनिया रस-पानी के आग्रह ही नहीं करती, उसके प्रायः राय साहब के यहाँ हाजिरी लगाने के लिए जाने पर खीज भी व्यक्त करती है। यह छोटा सा दृश्य हमें किसी

साधारण गाँव की मामूली सी दालान में पहुँचा देता है। जहाँ किसान पति-पत्नी किसी छोटी सी बात पर झगड़ रहे हैं। यह गाँव का एक अति सुपरिचित सामान्य दृश्य है।”¹⁶¹

एक उपन्यासकार अपने कथ्य या विजन को जिन कथाओं के माध्यम से सृजित करता है। ये सभी घटनाएँ किसी उपन्यास की संरचना के अंतर्गत आती हैं। मसलन कथाकार संजीव का उपन्यास ‘फाँस’ को ले तो इस उपन्यास की आंतरिक संरचना महाराष्ट्र के एक सीमान्त किसान ‘शीबू’ एक ऐसे किसान परिवार की कहानी है जो कपास की खेती करने के लिए कर्ज लेता है तथा खेतों में बीज डालता है। मानसून ने साथ नहीं दिया और वर्षा के कहर से बीज अंकुरित ही नहीं हुआ।

वह किसान पुनः कर्ज लेकर खेती करता है। इन तमाम परेशानियों के बाद फसल किसी तरह तैयार हो जाती है। तैयार फसल को वह मंडी ले जाता है। मंडी का भाव फसल के अनुकूल नहीं रहता। शिबू को 2-3 दिन वहीं रुकना पड़ता है फिर भी उसे फसल का वाजिब दाम मिलता नजर नहीं आता। कर्ज का दबाव बढ़ता ही जा रहा है। अंत में वह किसान इसी व्यवस्था से तंग आकर आत्महत्या करने पर विवश हो जाता है। इस तरह देखा जाय तो **फाँस** उपन्यास की जो आंतरिक संरचना है वह एक भारतीय किसान के दारुण दशा को रेखांकित करता है। जिसका उल्लेख संजीव इस प्रकार करते हैं-

“सुबह कुएँ पर पानी लेने गई थी बड़ी कि चीख मार कर भागी- आई उउ !

‘क्या है ?

‘लाश’ !

‘कहाँ’ ?

कुएँ में क्या ?”

¹⁶¹ उपन्यास की संरचना, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 107

बदहवास दौड़ पड़ी। गाँव जुटता गया। गल (काँटिया) कपड़े में फँसाकर छः-सात लोगों ने खींचकर निकाला शिबू की लाश को। नब्ज टटोली। पेट से पानी निकला। तरह-तरह के उपचार, पर लाश भला कहाँ जीवित होनी थी, बिलख रही है शकुन, बिलख रहीं है बेटियाँ।”¹⁶²

उपन्यास की संरचना के सन्दर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि-“उपन्यास की संरचना का विषय से अनिवार्य और घनिष्ठ संबंध होता है। विषय से अलग संरचना की कल्पना असंभव है उसका अस्तित्व ही विषय सापेक्ष होता है। यद्यपि कुछ आलोचक विषय को ही रूप का अनुवर्ती मानते हैं, पर यह मान्यता तर्कसंगत नहीं है। विषय के बिना रूप का अस्तित्व उसी प्रकार संभव नहीं है जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का। यदि द्रव्य को भी मूल माने तो उसका रूपायन नाना प्रकार की वस्तुओं से होता है। इसमें रूप का ही विषय का अनुवर्ती होना सिद्ध होता है।”¹⁶³

इसी प्रकार कमलाकांत त्रिपाठी के उपन्यास ‘बेदखल’ की आंतरिक संरचना में किसान आन्दोलन से संबंधित घटनाओं का उल्लेख किया गया है। समय से लगान न अदा कर पाने के कारण ये जमींदार किसानों को उसकी जमीन से बेदखल कर देते थे जिसकी लड़ाई बाबा रामचन्द्र जो किसान आन्दोलन के अग्रणी नेता रह चुके हैं, के माध्यम से लेखक किसानों की समस्या का समाधान ढूँढ़ने की कोशिश करता है। किसी भी उपन्यास की संरचना के लिए विषय का होना अत्यंत आवश्यक है। विषय के बिना किसी भी काव्य, कथा या उपन्यास की कल्पना नहीं की जा सकती है। विषय के माध्यम से ही कोई लेखक समाज की सच्चाई को अभिव्यक्त करता है।

¹⁶²फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 105

¹⁶³उपन्यास की संरचना, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या : 66

5.4 उपन्यासों की भाषा

भाषा एक ऐसा साधन है जिसके सहारे कोई भी सृजनकर्ता अपने विचारों को पाठक तक पहुँचाता है। साहित्य की किसी भी विधा को अभिव्यक्त करने का सबसे महत्वपूर्ण और सशक्त माध्यम भाषा ही है। भाषा के रचनात्मक प्रयोगों को साहित्य कहा जाता है। साहित्यिक भाषा नामक कोई एक सर्वमान्य मानक भाषा नहीं है जो किसी भाषा में रचित पूरे साहित्य में एक समान रूप से प्रयोग होती रहे। अपनी पृष्ठभूमि, अपने द्वारा रचित साहित्य की जरूरतों, कथ्य की मांग और समय की जरूरत इत्यादि के चलते प्रत्येक साहित्यकार भाषा में अपना अलग ही मुकाम तय करता है। प्रत्येक कवि या लेखक की भाषा सामाजिक परिवेश और स्थानीयता के अनुसार पृथक-पृथक होती है। किसान केन्द्रित हिंदी उपन्यासों पर विचार करें तो चूँकि इस विधा में पात्रों की संख्या अधिक होती है फिर भी भाषाएँ पात्रानुकूल हैं। किसान एक ऐसे समाज से आता है जो शिक्षा की दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ है लेकिन इनमें खेती किसानी करने का अनुभव बड़ा ही सराहनीय है। इन उपन्यासों में इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए उपन्यासकारों ने स्थानीय बोलियों और भाषाओं का प्रयोग किया है। किसान-जीवन केन्द्रित उपन्यासों की भाषाओं में लेखकों के परिवेश की कई बोलियों और भाषाओं का मिश्रण है।

5.5 सरकारी-तंत्र और प्रशासन की भाषा

भारतीय समाज विविध संस्कृतियों और विविध भाषाओं वाला समाज है। अनेकता में एकता ही इसकी अपनी अलग पहचान है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी-अपनी बोली और भाषा होती है। कुछ ऐसी भाषाएँ हैं जिसे सिर्फ आदिवासी समुदाय बोल-चाल के लिए प्रयोग करता है और उनका समाज ही समझ सकता है। अमूमन तौर पर तथाकथित जिसे सभ्य समाज कहा जाता है इसकी भाषा में अपनी मातृभाषा के साथ-साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हो रहा है। एक समय था

जब भारत देश में मुगलों का शासन था उस समय दरबारी भाषा फारसी होने के नाते यही समाज हिंदी या अपनी मातृभाषा के साथ फारसी शब्दों का प्रयोग किया करता था ।

आज भी कचहरी और तहसीलों में बहुत सारे फारसी के शब्द लेखन के लिए प्रयोग किए जाते हैं । आमजन की भाषा और प्रशासन की भाषा में बहुत अंतर होता है । किसान और मजदूर की भाषा में गाँव का अपना परिवेश झलकता रहता है । वह चाहे तमिल, तेलुगु, मराठी या हिंदी भाषा हो । ग्रामीण परिवेश और किसान-जीवन केन्द्रित उपन्यासों की भाषा को दो रूपों में देख सकते हैं पहला सरकारी तंत्र की भाषा जो वर्तमान में कई भाषाओं के साथ बोली जाती है और दूसरा आमजन यानी किसान, मजदूर की भाषा । किसानों और मजदूरों की भाषाओं में स्थानीय शब्द बहुतायत में प्रयोग किया जाता है । किसान जीवन से संबंधित उपन्यासों में सरकारी तंत्र की भाषा की बात करें तो लेखकों ने इस वर्ग की भाषा में पात्रों के माध्यम से स्थानीय शब्द के साथ-साथ मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है । दफ्तर के बाबू, बैंक के कर्मचारी और अन्य सरकारी बबुआन की भाषा में अंग्रेजी का लेप लगा रहता है ।

किसान केन्द्रित लगभग सभी उपन्यासों में अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू भाषाओं का मिलाजुला रूप है । ‘हलफनामे’ उपन्यास का नाम ही उर्दू भाषा का लग रहा है । मुख्यमंत्री चुनावी फायदे के लिए किसानों द्वारा लिए गए आत्महत्या को मुख्य मुद्दा बनाता है और एक किसान मकईराम को मुआवजा देकर ज्यादा से ज्यादा वोट बटोरना चाहता है । इस उपन्यास में सरकारी तंत्र की भाषा में अंग्रेजी भाषा के साथ फारसी भाषा का प्रयोग ज्यादातर किया गया है । इस उपन्यास के शासन तंत्र की भाषा इस प्रकार है-“मनी इज प्रॉब्लम, कलक्टर ने जोर देकर कई बार कहा । लाला की मकान की बगल की खुली जगह में विशाल बैठक हुई । वह इजलास भी

लगती थी। रैली भी। पूरा सरकारी महकमा मौजूद था, पुलिस की चुस्त गस्त में। पहले कलक्टर ने दिवंगत स्वामीराम के खेत का मुआयना किया।”¹⁶⁴

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास जिसकी भाषा कहावतों और मुहावरों से लबरेज है। इस उपन्यास की भाषा के सन्दर्भ में पवन कुमार लिखते हैं –“उपन्यास का यू० एस० पी० इसकी भाषा है और भाषा में भी मुहावरों और लोक कहावतों का प्रयोग है। ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास का एक प्रमुख पात्र मोहन राठी है जो प्रशासन का चाटुकार है। बेहतरीन मनोवैज्ञानिक है, अवसरवादी है और बेहतरीन वक्ता भी है। उसकी खासियत यह है कि वह अपनी बात मुहावरों से ही शुरू करता है।”¹⁶⁵

पंकज सुबीर मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के शिवनी मालवा कस्बे में जन्मे, कस्बाई और ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े और उसी इलाके के किसानों की समस्याओं को व्यंग्यात्मक भाषा में अपने लेखन का केंद्र बनाया है। एक पत्रकार होने के नाते ये किसानों के प्रति प्रशासन की रवैये से अच्छी तरफ परिचित हुए। प्रशासन की भाषा में अंग्रेजी के शब्द बहुतायत संख्या में प्रयोग किया है, जो इस प्रकार है –“हाउ एबाउट द प्रिपेरेशंस ऑफ द उत्सव ? सब कुछ ठीकठाक चल रहा है न ? एवरी थिंग इज गोइंग स्मूथली...? श्री राम परिहार ने विषय को बदलते हुए कहा।”¹⁶⁶ यह कैसी विडम्बना है एक तरफ सरकारी फंड को इस्तेमाल करने के लिए भव्य कार्यक्रम चल रहा है जिसमें लगभग सभी सरकारी अमले मौजूद और और दूसरी तरफ मृत राम प्रसाद का क्रियाकर्म हो रहा है। संजीव का ‘फाँस’ उपन्यास जो किसान आत्महत्या पर आधारित है। इसमें सरकारी तंत्र की भाषा को इस प्रकार दिखाया गया है-“पार्टिसिपेंट ने मराठी में कहा – एक भारतीय किसान ! जी ! बट दैट इज नॉट ए प्रोफेशनल ? क्यों ? टाक इन इंग्लिश

¹⁶⁴हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 201

¹⁶⁵विमर्श : अकाल में उत्सव, संपादक-डॉ. सुधा ओम दींगरा, पृष्ठ संख्या : 96

¹⁶⁶अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 155

वन्ली ऐज पर रूल ।”¹⁶⁷ ‘फाँस’ उपन्यास में लेखक ने गाँव की यथार्थ घटनाओं को और प्रशासन का किसानों के प्रति बेरुखी होते रवैये को भी दिखाया है। पी० साईनाथ का हवाला देते हुए संजीव ने किसान आत्महत्या और प्रशासन की सच्चाई को पात्रानुकूल भाषा में अभिव्यक्त किया है। मजबूरी में कर्ज लेने के लिए किसान को बैंक के कर्मचारी से बार-बार दीनतापूर्वक निवेदन करना पड़ता है। किसान और सरकारी कर्मचारी से बात-चीत को शासन तंत्र की हिंदी और अंग्रेजी मिश्रित भाषा का प्रयोग संजीव ने इस प्रकार किया है –

“सर !

साहब !

साहब !

वेट ! वेट रुको, मुझे कुछ बोलने दो। बैंक मैनेजर ने मक्खियों को उड़ाया।

ऐ चोप ! कोई सोर नहीं करेगा। एक किसान ने खैर ख्याही जतायी।

अखबार में क्या है मालूम है ?”¹⁶⁸

5.6 साहूकारों की भाषा

किसी भी व्यक्ति या लेखक की भाषा उसके सामाजिक परिवेश से अलग नहीं रह सकती। साहूकार गाँव का वह व्यक्ति होता है जो रुपये-पैसे से परिपूर्ण होता है तथा आवश्यकता पड़ने पर ब्याज पर लोगों को रुपया देता है। यही साहूकार भारतीय किसानों को संकट के समय कर्ज दे कर मदद किया करता था। फसल तैयार होने के बाद साहूकार सूद के साथ अपना रुपया वसूल करता था। आज के समय की तरह बैंक से कर्ज लेने की सुविधा नहीं थी।

¹⁶⁷फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 111

¹⁶⁸फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 97

सेठ, साहूकार और जमींदार ही किसानों के मुसीबत के समय काम आते थे। लेकिन बड़ी चालाकी से यही साहूकार भोले-भाले किसानों का एक का चार गुना पैसा भी वसूल करते थे। आजादी से पहले किसान इन्हीं साहूकारों और जमींदारों के द्वारा शोषण का शिकार हुआ करता था। साहूकारों का व्यवहार किसानों के प्रति कभी अच्छा नहीं था और न कभी होगा। यही सेठ साहूकार किसानों की जमीन को हथियाने में बहुत आगे थे। प्रेमचन्द के समय में जो महाजन और साहूकार हुआ करते थे। ठीक उसी तरह आज के समय में पूँजीपति वर्ग है। यही पूँजीपति मुक्त बाजार में अपनी पूँजी निवेश करके मुनाफा प्राप्त करने की जुगत में रहते हैं। इन्हें किसी की तबाही या हत्या से कोई लेना देना नहीं है। इनका उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा मुनाफा प्राप्त करना है।

सभी जमींदार या साहूकार किसान को हेय दृष्टि से ही देखते हैं वह उसे अपना नौकर समझता है। जिसका उल्लेख एक जमींदार के मार्फत 'बेदखल' उपन्यास में कमलाकांत त्रिपाठी लिखते हैं कि-“मार के भूत बात से नहीं मानते। ससुरे हमारी कबर खोदने जा रहे हैं और हम इन्हें छाती पर चढ़कर जाने दें। हमें मालूम है ये आपके बल पर कूद रहे हैं। इन्हें समझा दो वरना सारी हेकड़ी निकाल दूँगा...आओ सालों लौटकर आना तो देखेंगे। तुम लोगों को बेल न बिनवा दिया तो मेरा नाम कामता सिंह नहीं।”¹⁶⁹

साहूकारों की भाषा में जो रौब होता है उसे उपन्यासकारों ने दिखाया है। साहूकार गरीब या किसान को एक इन्सान की हैसियत से नहीं बल्कि हमेशा अपने फायदे के दृष्टि से देखता है और किसान को उसकी जमीन की हैसियत से देखता है। किसान मजबूर होकर इन सूदखारों से ब्याज पर कर्ज लेता है। इस कर्ज के एवज में किसान को कुछ सामान गिरवी रखना पड़ता है। यदि समय पर किसान पैसा नहीं दिया तो गिरवी रखा हुआ सामान साहूकार का हो जाता है।

¹⁶⁹बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 100

किसानों के कर्ज के सन्दर्भ में **भगवानदास मोरवाल** लिखते हैं कि-“तो कर्ज तुमने खेती के लिए नहीं लिया था ? हूँउउ तो अब समझ में आया । कर्ज लिया खेती के नाम पर जाता है और लगा दिया जाता है बेटियों के ब्याहने में । हिम्मत, एक बात बताओं जब कर्ज उतरेगा ही नहीं तो आत्महत्याएँ होंगी ही ।”¹⁷⁰

आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र के किसानों की सबसे बड़ी समस्या पानी की है । इस इलाके में भूमिगत जल स्तर बहुत नीचे है । अधिकतर किसान मानसून पर निर्भर हैं । ‘**हलफनामे**’ उपन्यास में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार पूरा क्षेत्र सूखा घोषित होने पर उस महकमे का सेठ पानी का व्यापार करता है । जबकि इसी क्षेत्र में स्वामीराम प्रसाद बोरबेल के लिए लिया गया कर्ज को अदा न कर पाने के कारण आत्महत्या कर लेता है । सेठ जैसे लोग नहीं चाहते की किसान के परिवार को मुआवजा मिले वह कहता है कि-“सारे लोग क्या मानते हैं ? कि स्वामी की मति मारी गई थी । दिमाग खिसक गया था उसका जूनून चढ़ गया था माथे में । मैं कहता हूँ ये तो ठीक है कि स्वामी बरगला गया था । पर उसे बरगलाया किसने, ये किसी ने सोचा ।”¹⁷¹

5.7 अंग्रेजी भाषा का प्रयोग

किसान-जीवन पर आधारित उपन्यासों में भाषा के सन्दर्भ में उपन्यासकारों ने मानक हिंदी जिसे साहित्यिक हिंदी कहा जाता है के साथ-साथ शिक्षित पात्रों जैसे- बैंक के कर्मचारी, जंगल के अधिकारी, किसान आन्दोलनकारी और सरकारी वकील आदि के द्वारा हिंदी और अंग्रेजी दोनों मिली-जुली भाषा का प्रयोग लेखकों ने किया है । संजीव ने इसका प्रयोग इस प्रकार किया है- “इस शेतकरी, आय मीन किसान को देखते ही पब्लिक स्कूल की अंग्रेजीदाँ मिस्ट्रेस की आँखें सिकुड़ गयीं । हिकारत से व्हाट दिस ?

¹⁷⁰नरक मसीहा, भगवान दास मोरवाल पृष्ठ संख्या : 132

¹⁷¹हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 93

पार्टिसिपेंट ने मराठी में कहा-एक भारतीय किसान !

आर यू ए पार्टिसिपेंट ? जी !

बट दैट इस नाट ए प्रोफेशन ? क्यों ?

टाक इन इंग्लिश वन्ली ऐज पर रूल...!”¹⁷²

किसान की जिंदगी में सचमुच परेशानियों का कोई अंत नहीं होता । एक परेशानी जा नहीं पाती की दूसरी आ जाती है । बैंक कर्मचारी और दलालों के बीच फँसकर किस प्रकार साधारण किसान ‘किसान क्रेडिट कार्ड’ योजना का शिकार होता है । उसके नाम पर बैंक से लोन ले लिया जाता है और किसानों को कानोंकान खबर नहीं पहुँचती । बैंक कर्मचारी चूँकी पढ़ा-लिखा तबका है । इसलिए लेखक ने पात्र के अनुसार अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया है जो इस प्रकार है-“सर एनदर केस...सेम एज आल द प्रिवियस केसेज । सूखा पानी का किसान है कोई । जी सर आवेदन लेकर आया है । हाँ सर सेम वैसा ही मामला है, उसे कुछ नहीं पता है इस सब के बारे में ।”¹⁷³

‘हलफनामे’ उपन्यास की मूल समस्या किसान आत्महत्या है । किसानों द्वारा की गई आत्महत्या, आत्महत्या है या हत्या इस सन्दर्भ में स्वयं राजू शर्मा लिखते हैं-“मृत्यु आत्महत्या है या हत्या इसका फैसला करना कभी-कभी असंभव होता है । और कभी बेमानी । क्योंकि जिन कारणों से आत्महत्या हुई वही कारण तो हत्यारे हुए । आत्महत्या तभी होती है जब कोई या कुछ हत्या करता है । इसलिए सवाल यह है कि कारण क्या है ? उनके पीछे कौन है ।”¹⁷⁴

हलफनामे उपन्यास में भी लेखक ने पात्रानुकूल अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया है-“मनी इज नो प्राब्लम, कलट्रर ने जोर देकर कई बार कहा ।”¹⁷⁵

¹⁷²फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 111

¹⁷³अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर पृष्ठ संख्या : 139

¹⁷⁴हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 147

¹⁷⁵हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 201

5.8 स्थानीय या आँचलिक भाषा का प्रयोग

हिंदी कथा साहित्य में गाँव और वहाँ की संस्कृति की चर्चा हो तो बोलियों और उपबोलियों का प्रयोग होना स्वाभाविक है क्योंकि कोई भी लेखक यदि वह ग्रामीण परिवेश का है तो उसके लेखन में आँचलिक भाषा बहुत ही सहजता से व्यक्त होगी। किसान-जीवन पर लिखने वाले उपन्यासकारों ने सेठ, साहूकार, महाजन, सूदखोर, सरकारी कर्मचारियों और पूँजीपतियों द्वारा शोषित वर्ग का चित्रण किया है। किसान के समक्ष आने वाली उन तमाम कठिनाईयों का उल्लेख किया है जिन्हें किसान झेल रहा है।

कमलाकांत त्रिपाठी का ‘बेदखल’ किसान समस्या केन्द्रित एक ऐसा उपन्यास है जिसमें अरबी-फारसी और अंग्रेजी भाषाओं के साथ स्थानीय भाषा या बोलियों का प्रयोग करते हैं। ‘बेरन’, मुखातिब, खरमिटाव और पुलपुली कांपना ऐसे स्थानीय शब्द हैं जिसका उत्तर भारत के लोगों द्वारा प्रयोग किया जाता है ‘बेरन’ ऐसा शब्द है जिसका बीजों के रोपने के अर्थ में प्रयोग किया जाता है जिसका प्रयोग लेखक ने इस प्रकार किया है-“एक बार बारिश होकर निकल गई फिर निकल है। सवनई की फसल जम तो गई लेकिन लगातार धूप होने से धीरे-धीरे सूखने लगी। जिन लोगों ने बेरन डाल दी थी। मुलायम पौधों को धूप में सूखते देखकर उसका दिल मुँह में आ जाता था।”¹⁷⁶

उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में एक किसान परिवार में पलने-बढ़ने के कारण मानक भाषा प्रयोग के अलावा, स्थानीय अवधी भाषा का प्रयोग उपन्यासकार इस प्रकार करते हैं-“इहै हैं भइया जवाहिर लाल। सुचित एक किनारे खड़ा अभिभूत-सा होता अनायास बोल पड़ा। इतना गोर, इतै कौनो अंगरेज लागत हैं। नार्हीं भइया इहै हैं। बलुआ घाट पेइहै त आवा रहेन। पहाड़ी हैं न। एतना सुकुवार देखो मुँहना कइसे लाल होई गवा है। ई कैसे गाँव माँ जइहैं? एक बबूल के पेड़

¹⁷⁶बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 120

की सिमटी छाया में जवाहर लाल खड़े थे।”¹⁷⁷ यह उदाहरण उपन्यास के एक किसान पात्र द्वारा पूर्वी हिंदी के अंतर्गत अवधी भाषा में चित्रित किया गया है।

संजीव ‘फाँस’ उपन्यास में महाराष्ट्र राज्य में बोली जाने वाली स्थानीय भाषाओं या शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे किसान के लिए ‘शेतकरी’ और बेटे और बेटियों के लिए इस राज्य में ‘मुलगा’ और ‘मुलगी’, मुँगड़े (चींटे) तथा कपास के लिए कापूस का प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों के अतिरिक्त लेखक ने अपने उपन्यास में स्थानीय भाषा का प्रयोग किस प्रकार किया है एक किसान और गन्ना मिल वर्कर के बात-चीत के माध्यम से देखा जा सकता है जो इस प्रकार है—“हाँ ! वो बोलता, कापूस में लॉस-ई-लॉस। परोफिट पूछो तो काँदा में है और ऊस में। पाँच रुपये किलो काँदा मारकेट और मंडी तक पचास रुपये किलो...उससे भी ज्यादा। ये गौरमिंट गरीब का नहीं। हाँ ऊस का क्या ? सेट का आदमी बोला, ऊस क गारंटी हम लेता है। गौरमिंट हमारा सेट का बात नई टाल सकता ?”¹⁷⁸

उपन्यास या साहित्य की किसी भी विधा में भाषा प्रयोग की विविधता से लेखक के बहुआयामी व्यक्तित्व की पहचान होती है। ‘हलफनामे’ एक ऐसा ही उपन्यास है जिसमें सूखा और अकाल से परेशान किसान आत्महत्या करने पर मजबूर होता है और उसके बाद सरकार से मुआवजे को लेकर उनके परिवार वालों को जिन-जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उसे पात्रानुकूल कई भाषाओं के सहारे उल्लेख किया गया है लेखक ने उस किसान की मनः स्थिति का जिक्र किया है जिसके परिवार में किसान मुखिया आत्महत्या का शिकार हुआ है— “मकईराम का सबकुछ उसका वजूद, संसार, ऐतबार—एकाकार गड्डमड्ड हो गया, चरमरा गया, उसकी

¹⁷⁷बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 107

¹⁷⁸फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 207

अस्मिता और आत्मगौरव, अतीत का गठन और आने वाले कल के ख्याब चकनाचूर हो गए। वह बस हड्डियों का ढाँचा ही बचा रह गया था।”¹⁷⁹

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में पंकज सुबीर ने मध्य प्रदेश के इलाके के किसानों की आत्महत्या जैसी घातक समस्याओं को स्थानीय भाषा ‘बघेली’ का प्रयोग करते हुए जिक्र किया है। नुकता, खसरा-खतौनी और रकबा एक स्थानीय शब्द है ‘नुकता’ का अर्थ मृत्युभोज होता है जिसका उपयोग भी पंकज सुबीर ने किया है। इस उपन्यास में किसानों के आपसी संवाद में स्थानीय बोली का बेहतर प्रयोग किया गया है। अधिकतर संवाद सरल और सहज हैं। प्रशासनिक शासन व्यवस्था के निर्मम चेहरे को रुचिकर तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

एक किसान आंधी, पानी और ओले से बर्बाद हुई फसल के मुआवजे के लिए रामप्रसाद जैसे किसान के पास पटवारी को जेब गरम करने के लिए पैसे नहीं है वह पटवारी से बार-बार खुशामद करता है कि जिस फसल की कुछ उम्मीद थी वह तो अब बर्बाद हो गई है तो पैसे कहाँ से आये। पटवारी गरीब किसान पर अपना रौब दिखता है तो किसान कहता है- “नी साब म्हारे कँई लेन्यों कलट्टरसाब से। म्यार तो कलट्टर आप हो। म्यार माई बाप तो। रामप्रसाद ने एक बार फिर हाथ जोड़ दिए। हूँ कित्ता नुकसान हुआ है? कितना रकबे में खड़ी थी फसल? क्या बोया था? गँउ बोयो था साब। पूरा खेत में बोयो थो, अने अधकरी से जो जमीन लई रखी थी ओमे भी गँउ बोया था।”¹⁸⁰

इस पूँजीवादी समाज में किसान अब किसान नहीं रहा। किसानों की जमीनों को लगातार पूँजीपतियों द्वारा छीनने की कोशिश की जा रही है ताकि ‘ठेके पर खेती’ की जा सके और सरकार भी इसके समर्थन में है। अपनी खेती और किसानी बचाने के लिए किसान सभा और सभी

¹⁷⁹हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 11

¹⁸⁰अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 201

किसान संगठन इसका पुरजोर तरीके से विरोध कर रहे हैं क्योंकि किसानों के पास जमीन ही नहीं रहेगी तो किसान कहाँ रहेगा ? ‘जहाँ एक जंगल था’ उपन्यास में मदन मोहन ने जमींदारों द्वारा भूमिहीन किसानों के शोषण को अवधी और भोजपुरी मिश्रित स्थानीय भाषा का प्रयोग करते हुए किसानों की स्थिति का चित्रण किया है। तात्कालिक राजनीति के कारण समाज में जो बदलाव आ रहा है उस बदलाव को लेखक ने इस प्रकार उल्लिखित किया है –

“गोल बनाये लोफर-लंपट

पोंछ डोलावें पिल्ली-पिल्ला।

टोला-टपरी राजनीति बा

गाँव भई बा लहुरी दिल्ली।”¹⁸¹

खेती किसानों आज घाटे का धंधा हो गया है। आजादी के पहले के किसानों और आज के किसानों में कोई ज्यादा अंतर नहीं आया है। किसान तब भी शोषित था और आज भी शोषित है। वर्तमान समय में किसान फसलों के दाम, कर्ज, प्राकृतिक आपदा और उसका खर्च इन चार चीजों से परेशान होकर किसान खेती नहीं करना चाहता है। महंगाई की मार सबसे ज्यादा किसानों पर पड़ रही है। खाद, बीज, पानी और मशीनों से जुताई, कटाई वगैरह महंगा होने से छोटी जोत का किसान कर्ज के बोझ से दबता जा रहा है।

कथाकार शिवमूर्ति ने ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में किसानों के कर्ज और सम्मानित जीवन की समस्या से जूझते किसान को दिखाया है शिवमूर्ति उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में बोली जाने वाली भाषा भोजपुरी मिश्रित हिंदी भाषा का प्रयोग अपने उपन्यासों में करते हैं। किस प्रकार आम जनता और किसान महंगाई के दंश से परेशान हैं कि वह सुख सुविधाओं को भूलता

¹⁸¹जहाँ एक जंगल था, मदन मोहन, पृष्ठ संख्या : 110

जा रहा है। शिवमूर्ति ने लोक गीत के माध्यम से पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग इस प्रकार किया है –

“महँगी के मार बिरहा बिसरिगा, भूलि गयी कजरी कबीर,

देखि के गोरिया कै उमड़ल जोबनवा, उठै ना कलेजवा मा पीर ॥”¹⁸²

अर्थात् महँगाई ने ऐसा मारा कि गोरी का उमड़ता यौवन भी कलेजे में पीर नहीं पैदा कर पाता। मतलब साफ है कि महँगाई इतनी बढ़ गई है कि किसान सुखपूर्वक नहीं जी पा रहा है। एस० आर० हरनोट का ‘हिडिम्ब’ उपन्यास दक्षिण-पूर्व क्षेत्र उत्तराखंड के तलहटी में रहने वाले किसानों की समस्याओं को केंद्र बिंदु बनाकर लिखा गया है। यह क्षेत्र पर्यटन स्थल होने के कारण किसानों की जमीनें बहुत उपयोगी हैं। यहाँ के किसानों की मुख्य समस्या यह है कि इनकी जमीनों को पूँजीपतियों द्वारा येन केन प्रकारेण तरीके से छीना जा रहा है। इस क्षेत्र की आम जनता विशेष रूप से गढ़वाली और कुमाऊँनी दो मुख्य भाषाओं का उपयोग करती हैं। जिसे पहाड़ी भाषा भी कहा जाता है। इस उपन्यास में लेखक ने इन्हीं भाषाओं का प्रयोग किया है जिसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है—“तू तो अपणा है शावणु तेरे से छोट। म्यारी औकात ने तो पता नी कौण-कौण अन्दर बाड़ दिए। पैदा होते ही मर जाते तो...”¹⁸³ इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने दो किसानों के वार्तालाप में स्थानीय भाषा का प्रयोग किया है।

5.9 मीडिया की भाषा का उपन्यासों में प्रयोग

मीडिया या सिनेमा एक ऐसा संजाल है जिसके माध्यम से सूचनाओं को आम जनता तक पहुँचाया जाता है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ भी कहा जाता है। मीडिया के क्षेत्र में किसानों की स्थिति कैसी है? क्या है? किसान मीडिया में कितना चर्चा का विषय है? किसानों

¹⁸²नया ज्ञानोदय, जनवरी 2008, पृष्ठ संख्या : 78

¹⁸³हिडिम्ब, एस० आर० हरनोट, पृष्ठ संख्या : 68

की अमीरी और गरीबी को मीडिया कहाँ तक दिखाता है ? इन प्रश्नों का मोटा-मोटी खाका जगदीश्वर चतुर्वेदी खींचते हैं। और राजनीतिज्ञों के सामने सवाल करते हैं कि किसान कहाँ है ? किसान की छवि मीडिया में कैसी है ? किसानों पर टेलीविजनों में खूब चर्चा होती है पर किसान नहीं है, जिसका जिक्र चतुर्वेदी जी इस प्रकार करते हैं-“टेलीविजन स्वभावतः रोमैंटिक है। इसमें रोमैंटिक भावबोध जितना बिकता है यथार्थ बोध उतना नहीं बिकता है। कृषि पर घमासान मचा था किंतु किसान गायब था।”¹⁸⁴ वास्तविकता यह है कि मीडिया द्वारा उन्हीं किसानों को चैनलों में दिखाया जाता है, जिनकी खेती-किसानी की स्थिति अच्छी है। छोटी जोत के किसान या निम्न स्तरीय किसानों की चर्चा बहुत कम होती है। ऐसे किसानों की चर्चा तब होती है जब किसी इलाके का किसान भूख से मरने या आत्महत्या संबंधी घटनाएँ होती है।

मिडिया के प्रभाव से उपजी संस्कृति के कारण भाषा भी बदली है उस भाषा का विज्ञापनी प्रभावकारी और सशक्त है। इससे लेखक बच नहीं सकता है। अतः उसके लेखन की भाषा पर मिडिया की संस्कृति के प्रभाव को देख सकते हैं। किसान जीवन आधारित हिंदी उपन्यासों में मीडिया का स्पष्ट असर दिखाई देता है। ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास जो किसानों की आत्महत्या पर केन्द्रित है, पंकज सुबीर ने मीडिया के चरित्र को दिखाया है। पटवारी द्वारा किसान का शोषण हो रहा होता है। किसान मुआवजे के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहा था। जब तक किसान जिन्दा था तब तक किसी मीडिया वाले ने उसकी समस्याओं को नहीं दिखाया परन्तु जैसे ही वह आत्महत्या कर लेता है रातोंरात यह बात आग की तरह फैल जाती है और मीडियाकर्मी सुबह होने से पहले ही ‘सूखापानी’ गाँव पहुँच जाते हैं, और खबरों को दिखाने की कोशिश करते हैं।

¹⁸⁴ मीडिया समग्र, भाग-8, जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या : 352

मीडियाकर्मियों के पहुँचने से पहले ही सच्चाई पर पर्दा डालने के लिए मंत्री के अमले और प्यादे किसान के परिवार वालों को निर्धारित कर चुके होते हैं कि मीडिया को क्या कहना है और मृतक किसान के परिवार से अपने मन माफिक बयान दर्ज करवाने में कामयाब हो जाते हैं। तथा परिवार और मीडिया के द्वारा किसान रामप्रसाद को पागल साबित कर दिया जाता है। जब मीडिया वाले मृतक किसान की पत्नी से बयान लेने जाते हैं और कहते हैं-“क्या आपके पति पागल हो गए थे ? एक महिला रिपोर्टर ने पूछा। अरी.. वो तो पागल हुई गया था। भोत दिन से पागल हुई गया था। पागल नी होता तो असा करता कई... अरी वो तो पागल हुई गया था। कमला ने पारंपरिक रूप से गाकर रोते हुए उत्तर दिया और चीख मारकर बेहोश हो गई।”¹⁸⁵ मीडिया अपना काम कर गई और मुख्यमंत्री के संत्री भी और रह गया तो सिर्फ दीवारों और दरख्तों से झाँकती हुई किसान की बीती हुई यादें।

5.10 बिम्ब और प्रतीक

हिंदी साहित्य की सभी विधाओं की अभिव्यक्ति के लिए जिस प्रकार की भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है उसी प्रकार बिम्ब और प्रतीक का भी योगदान होता है। रचनाकार या लेखक जाने-अनजाने में बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग करता रहता है। शुरुआती दौर में बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग कविताओं में हुआ करता था। निराला, मुक्तिबोध और केदारनाथ सिंह जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में बिम्बों और प्रतीकों का खुलकर प्रयोग किया है। नाटक, कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं में भी प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। बिम्ब क्या है ? और इसका प्रयोग क्यों किया जाता है ? इन प्रश्नों पर विचार करना अतिआवश्यक है।

‘बिम्ब’ का अर्थ है— परछाई, चित्र, अक्स या तस्वीर। अंग्रेजी में इसके लिए ‘इमेज’ शब्द का प्रयोग किया जाता है। इमेज को हिंदी में चित्र या प्रतिमा भी कहा जाता है। बिम्ब का

¹⁸⁵अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 223

अर्थ होता है— मूर्त रूप प्रदान करना । ‘बिम्ब एक मानसिक चित्र है जो रचना करते समय लेखक के मन में उभरता है जिसे लेखक शब्द बद्ध करता है और कविता या कहानी पढ़ते समय पाठक के दिलोदिमाग में एक चित्र बन जाता है । बिम्ब एक मानसिक संरचना है । जैसे कोई व्यक्ति किसी वस्तु को देखकर यह निश्चित कर लेता है कि वह चित्र किस पशु, पक्षी या आदमी का है । उसी तरह साहित्य में भी बिम्बों के माध्यम से यह समझ जाते हैं कि बात किसके बारे में की जा रही है । इस तरह बिम्ब विधान के माध्यम से कविता में न सिर्फ कथ्य को रोचक तरीके से प्रस्तुत करने में बल्कि पाठक के मन में एक प्रभावशाली तस्वीर रचने में भी मदद मिलती है ।

बिम्ब के सहारे कवि प्रस्तुत सन्दर्भ को अप्रस्तुत विधान से जोड़कर कविता में चारुता लाने का प्रयास करता है । कविता में बिम्ब संवेदनाओं को तीक्ष्ण बनाने, उसका प्रभाव बढ़ाने का काम करता है । हिंदी साहित्य में बिम्ब को प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को जाता है । इनके मतानुसार मूर्त भावना के अनुसार बिम्ब का निर्माण होता है । किसी रचना के विषय वस्तु के चित्रण को जीवन्त रखने के लिए बिम्ब का प्रयोग किया जाता है ।

बिम्ब के सन्दर्भ में **केदारनाथ सिंह** ने कहा है—“बिम्ब व्यक्ति चेतना के स्तर पर काल का प्राणवान बाँध है । व्यक्ति अपने देश और काल से हटकर कुछ ऊपर उठता हुआ अपनी इन्द्रियों और मन के द्वारा पूरे काल का अनुभव करने लगता है तो बिम्ब की सृष्टि होती है । हम पूरे काल को अपने अनुभव का विषय नहीं बना सकते हैं, लेकिन कुछ क्षणों को अपने अनुभव का एक सीमा में अनुभव कर सकते हैं । इसी प्रकार बिम्ब को परिभाषित करते हुए डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं— यह शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित ऐसी मानस-छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है ।”¹⁸⁶ उपर्युक्त परिभाषाओं के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य में बिम्ब एक

¹⁸⁶केदारनाथ सिंह के काव्य में बिम्ब-विधान, डॉ, गीता अस्थाना, पृष्ठ संख्या : 11

ऐसा शब्द संकेत है जिससे कविता या कथा साहित्य को रुचिकर और प्रभावशाली बनाया जाता है।

हिंदी उपन्यास भी इन बिम्बों और प्रतीकों के प्रयोग से अछूता नहीं रहा। उपन्यासकारों ने अपने परिवेश और अनुभव के आधार पर बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग किया है। किसानों की समस्या आधारित उपन्यासों में गाँव के परिवेश और किसानों के जीवन का ऐसा चित्र खींचा गया है कि न चाहते हुए भी पाठक के सामने गाँव और भारतीय किसान की छवि उभर आती है। दक्षिण भारत का एक किसान मकई राम के पिता स्वामीराम प्रसाद जो सीमांत किसान है, उसका हुलिया कैसा है। भारतीय किसान की शारीरिक बनावट कैसी होती है? वह दिखने में कैसा है? इसका जिक्र ‘हलफनामे’ उपन्यास में राजू शर्मा ने बिम्ब के माध्यम से इस प्रकार दिखाया है कि पाठक के सामने एक किसान की छवि उभर आती है जो इस प्रकार है -“ऊँचा कद, चौड़ा सीना, मेरे जैसा पतला, मुलायम नहीं सने हुए हाथ-पैर के बीच भी उसका आकार और फौलाद सनसनाहट पैदा करता था।”¹⁸⁷

‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में शिवमूर्ति ने किसानों के संगठन का संकेत करते हुए किसानों की आत्महत्या को दिखाया है। उपन्यास का मुख्य पात्र पहलवान का परिचय इस प्रकार देते हैं कि पाठक से समक्ष हू-ब-हू एक पहलवान का बिम्ब उभर आता है—“चेहरा जरूर सँवरा गया है लेकिन जब सज-धज लेते हैं तो अभी भी आँखों में बस जाते हैं। लम्बा शरीर, बोलती आँखें। मूँछें छोटी करवा लिए हैं फिर... पहले जब बड़ी-बड़ी मूँछें रखते थे तब देखते जरा।”¹⁸⁸

बाजारवाद और निजीकरण के बढ़ते प्रभाव तथा दिनोंदिन बढ़ती महंगाई से किसानों के जीवन और उसकी खेती-किसानी में जो परिवर्तन आया है उसे ‘हिडिम्ब’ उपन्यास में एस०आर०

¹⁸⁷हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 8

¹⁸⁸नया ज्ञानोदय, जनवरी 2008, पृष्ठ संख्या: 78

हरनोट ने दिखाया है। इन्होंने भी भारतीय किसान की छवि को बिम्ब के रूप में इस प्रकार दिखाया है-“उसका शरीर अखरोट के वृक्ष के तने जैसा गठीला मगर दुबला-पतला था। कद पांच फुट से थोड़ा अधिक। माथा चौड़ा। सिर के बाल खूब काले और घने। चेहरा लम्बा था पर भरा हुआ। सांवला रंग। छोटी-छोटी मूंछें। दाढ़ी पर छोटे-छोटे बाल हमेशा रहते।”¹⁸⁹

किसान जीवन आधारित उपन्यासों में गाँव की जो भौगोलिक पहचान होती है उसे लेखकों ने ऐसा चित्रित किया है कि पाठक के जेहन में वह गाँव दृश्यमान होने लगता है-“सूखा पानी ! एक छोटा सा गाँव। जितना विचित्र नाम, उनता ही विचित्र गाँव। पहाड़ों से घिरा हुआ गाँव। जहाँ पर जमीन बहुत उपजाऊ नहीं है। एक तो मिट्टी भी पथरीली है और उस पर सिंचाई की भी कोई बहुत अच्छी व्यवस्था नहीं है। शायद इसी कारण इस गाँव का नाम सूखा पानी पड़ा होगा। गाँव के चारों तरफ जंगल है, सागौन के वृक्षों का जंगल।”¹⁹⁰ साहित्य में कभी-कभी लेखक अपनी बात को सीधा-सीधा न कह कर प्रतीकों के माध्यम से कहता है। प्रतीकों के प्रयोग से उस कथन की रागात्मकता बढ़ जाती है और कथावस्तु रोचक व प्रभावकारी हो जाती है तथा पाठक को सोचने-विचारने का पूरा-पूरा अवकाश मिलता है। प्रतीक का अर्थ है कि किसी वस्तु को उसके वास्तविक रूप न देकर दूसरी किसी अवस्था, वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि के रूप में प्रस्तुत करना। किसान जीवन को केंद्र बनाकर उपन्यास लिखने वाले लेखकों ने भी बहुत सारे प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग किया है।

उपन्यासकार प्रेमचन्द ने ‘गोदान’ उपन्यास में प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग किया है जैसे- होरी का पुत्र गोबर कहने और देखने में एक साधारण नाम है पर यह प्रगतिशील चेतना का प्रतीक है। ‘हलफनामे’ उपन्यास का एक पात्र ‘मकई राम’ को लेखक ने प्रतीक के रूप में रखा

¹⁸⁹हिडिम्ब, एस० आर० हरनोट, पृष्ठ संख्या : 7

¹⁹⁰अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 7

है। मकई राम बिजलीसाज के साथ-साथ एक साधारण किसान भी है जिसके पिता स्वामीराम प्रसाद कर्ज से परेशान होकर आत्महत्या करते हैं। मकई राम भारत के उन सभी किसानों का प्रतिनिधित्व करता है जो किसान मुआवजे को लेकर सरकारी दफ्तरों का चक्कर लगाते हैं। तमाम परेशानियों और समस्याओं के बावजूद किसान को अंत में सरकारी कर्मचारियों को रिश्तत देनी पड़ती है। पानी की समस्या भारत के सभी राज्यों के किसानों की है पर कुछ स्थानों पर पानी की बहुत बड़ी समस्या है। आत्महत्या किए हुए किसान को यह शासन तंत्र किस नजरिए से देखता है ?

इसका उल्लेख राजू शर्मा ने इस प्रकार किया है-“स्वामीराम नाम का एक अत्यंत निर्बल, निर्धन और निम्न किसान था। वह महाभोला, महामूर्ख और महाअज्ञानी था। जिंदगी भर उसने खुद के पैरों पर कुल्हाड़ी मारी और विपत्तियों की मार झेली। खुश और खुशहाली से उसका कभी वास्ता नहीं रहा। वह महा डरपोक था।”¹⁹¹ किसान किस प्रकार खेती किसानी छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहा है। मकई राम पलायन तमाम भारतीय किसानों के प्रतीक रूप में है।

महाराष्ट्र एक ऐसा राज्य है जहाँ ज्यादातर खेती वर्षा पर निर्भर करती है और अन्य राज्यों की तुलना में यहाँ की जमीनों की उर्वरता भी कम है। खेती में खर्च प्रत्येक राज्यों के समान ही होता है। नतीजन किसानों को घाटे का सौदा करना पड़ता है। कथाकार संजीव ने ‘फाँस’ उपन्यास में ‘बनगाँव’ को प्रतीक बनाकर महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और किसानों की समस्याओं को दिखाने की कोशिश की है। भारत में बनगाँव जैसे कई गाँव हैं जहाँ एक तरफ पहाड़ी इलाका है और दूसरी तरफ गाँव बसा हुआ है। ऐसे परिवेश में लोग खेती-किसानी करते हैं। जिसका जिक्र उपन्यास में इस प्रकार किया गया है-“भला कोई कह सकता है कि सुखाड़ के ठनठनाते यवतमाल जिले के इस पूरबी छोर पर ‘बनगाँव’ जैसा कोई गाँव भी होगा जो आधा वन

¹⁹¹हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या: 162

होगा, आधा गाँव, आधा गीला होगा, आधा सूखा। स्कूल में लड़कों के साथ लड़कियाँ भी, जुए में भैंस के साथ बैल भी।”¹⁹² उपन्यास में उल्लिखित बनगाँव भारत में भौगोलिक विविधता का प्रतीक है।

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में लेखक ने एक ऐसे गाँव को प्रतीक बनाया है जहाँ पनकाल और अकाल दोनों ही स्थितियों से किसान परेशान हो रहा है। भारत के बहुत सारे इलाकों के किसानों की ज्यादातर समस्या आसमानी है। पंकज सुबीर ने मध्यप्रदेश के किसानों की समस्याओं को ‘सूखा पानी’ नामक गाँव को प्रतीक बनाकर सम्पूर्ण भारतीय किसानों की समस्याओं को दिखाया है। जिस गाँव का उल्लेख लेखक करता है वह इस प्रकार है-“सूखा पानी। एक छोटा-सा गाँव। जितना विचित्र नाम, उतना ही विचित्र गाँव। पहाड़ों से घिरा हुआ, जहाँ पर जमीन बहुत उपजाऊ नहीं है। एक तो मिट्टी भी पथरीली है और उस पर सिंचाई की भी कोई बहुत अच्छी व्यवस्था नहीं है। शायद इसी कारण इस गाँव का नाम सूखा पानी पड़ा होगा। या यह भी हो सकता है कि किसी अपभ्रंश से सूखा पानी शब्द बना हो।”¹⁹³ किसानों की भलाई के लिए बनाई गई सरकारी योजनाओं का लाभ कहाँ तक किसानों को मिलता है। इसकी हकीकत को पंकज सुबीर ने सूखा पानी गाँव के एक किसान रामप्रसाद के माध्यम से भारत से सभी किसानों की स्थिति को पाठकों के समक्ष रखा है।

‘अधबुनी रस्सी एक परिकथा’ उपन्यास में लेखक ने उत्तर भारत के किसानों के गाँव की रूपरेखा जो खीची है वह भी एक प्रतीक के रूप में ही है। ‘डमरुआ’ भारत देश में एक ऐसा गाँव है जो एक समान रूप से भारत के गाँव होते हैं। वैचारिक और राजनीतिक दोनों तरह से गाँव दो छोर में बंटा है, एक तरफ उच्च कहे जाने वाली जाति ब्राह्मणों का टोला है तो दूसरी तरफ

¹⁹²फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 9

¹⁹³अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 7

दलितों और मजदूर किसानों का। वैसे तो डमरुआ के माध्यम से पूरे गाँव की संरचना की गई है पर ऐसे नाम अक्सर तथाकथित निम्न स्तर के लोगों या मजदूरों के कुनबों के लिए प्रयोग किए जाते हैं। डमरुआ एक ऐसे गाँव का प्रतीक है जहाँ गाँव की राजनीति की सच्चाई को बखूबी समझा जा सकता है। किसानों की जमीनों की चकबंदी व्यवस्था के नाम पर गाँव में जमींदारों द्वारा छोटे किसानों के शोषण को देखा जा सकता है।

‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास में शिवमूर्ति ने एक पात्र ‘पहलवान’ नामक किसान के माध्यम से भारत के उन सभी किसानों के दुःख-दर्द को पहचान की है जो किसान बिजली के बिल का बकाया, बीज और खाद का बकाया से कर्जदार हैं। पहलवान ऐसे किसानों का प्रतीक है जो पारिवारिक खर्च और साहूकारों से लिया गया कर्ज से जूझते हुए निराशा जनक जीवन जी रहा है। किसानों द्वारा सरकारी बैंकों से लिए गए कर्ज की वसूली तो सरकार बड़े सख्त तरीके से करती है लेकिन बड़े-बड़े व्यापारी वर्ग जिनके नाम पर करोड़ों का कर्ज है उन्हें सरकार रियायत देती जा रही है। सरकार के इस दोहरे चरित्र को लेखक इस प्रकार दिखाया गया है -

“जेकर लाख रुपैया बाकी,
ओकर तलुआ अमिनावा चाटी।
सौ-सौ रुपया वाले खेवें बन्दीखनवा,
परनवा सबके गाढ़े मा परा।”¹⁹⁴

5.11 लोकोक्ति और मुहावरों का रचनात्मक प्रयोग

मुहावरा एक अरबी शब्द है जिसके कई अर्थ होते हैं— बातचीत करना, प्रश्नोत्तर करना, अभ्यास करना और रूढ़ प्रयोग। मुहावरा अब एक पारिभाषिक शब्द बन गया है। सामान्तः उस वाक्यांश या खंड वाक्य को कहते हैं जिसका अर्थ उस भाषा में साधारण या सीधा-सादा न होकर

¹⁹⁴नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृष्ठ संख्या : 82

विलक्षण और वैचित्रपूर्ण हो जिसमें लक्षणा और व्यंजना हो। कामता प्रसाद गुरु और राम दाहिन मिश्र आदि विद्वानों ने मुहावरा की उत्पत्ति तथा परिभाषा पर विचार किया है। डॉ० ओमप्रकाश गुप्त ने अपने प्रबंध ग्रन्थ ‘मुहावरा मीमांसा’ में मुहावरा को इस प्रकार परिभाषित किया है- “प्रायः शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियाँ, कहानी और कहावतों अथवा भाषा कतिपय विलक्षण प्रयोगों के अनुरूप या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गढ़े हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश अथवा शब्द इत्यादि को मुहावरा कहते हैं जैसे- हाथ पैर मारना, ही ही करना, सिर धुनना, टेढ़ी खीर होना इत्यादि।”¹⁹⁵ मुहावरा एक शब्द समूह है, इसका प्रयोग वाक्य के अंतर्गत किया जाता है। लोकोक्तियाँ एक स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण वाक्य होती हैं। जिसका प्रयोग वाक्य समूह के अंतर्गत किया जाता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ ही भाषा के प्राण होते हैं। कहावतों, लोकोक्तियाँ और मुहावरे से युक्त भाषा में प्रांजलता प्रवाहिता और अभिव्यक्ति शक्ति निहित होती है।

हिंदी साहित्य की कथा और कहानी जैसी विधाओं में मुहावरे के प्रयोग से भाषा में संप्रेषणीयता बढ़ जाती है। सच तो यह है कि ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसके मुहावरे न हों। जब साहित्य में लोक संचित इस सम्पत्ति का प्रयोग कम होने लगता है तब यह माना जाता है कि वह अच्छा साहित्य नहीं है भाषा में प्रभावोत्पादकता और भावों की स्पष्टता लाने के लिए मुहावरे उत्तम साधन हैं। छोटे-छोटे जो भाव भरे रहते हैं वे अच्छे से अच्छे लेखक के लेखन की कृति में प्रायः कम ही दिखाई देते हैं। भाषा कई जगह मुहावरेदार भाषा के रूप में प्रयुक्त हुई है।

मुहावरे की ही भाँति लोकोक्तियों का भी महत्त्व है। लोकोक्तियाँ लोक जीवन के अनुभवों से प्राप्त होती हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है- लोक अनुभव की उक्ति। मुहावरा वाक्यांश रूप में

¹⁹⁵ मुहावरा मीमांसा, डॉ. ओमप्रकाश, पृष्ठ संख्या : 49

होता है जबकि लोकोक्ति वाक्य मूलक इकाई के रूप में व्यवहृत होती है। लोकोक्ति का प्रयोग एक पूरे वाक्य में होता है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से कथा साहित्य में रोचकता आ जाती है। जिससे पाठक बिना रुके ही बड़ी तन्मयता के साथ अध्ययन करता रहता है। लेखक मुहावरे के सहारे ही गंभीर से गंभीर विषय को भी बड़ी सहजता से अभिव्यक्त कर देता है। कोई भी कथा साहित्य मुहावरे और लोकोक्तियों से अछूता नहीं रह सकता।

उपन्यास जैसी विस्तृत विधा में मुहावरे की बहुत बड़ी भूमिका होती है। किसान जीवन केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में मुहावरों और लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग किया गया है। जगदीश चन्द्र के उपन्यास ‘जमीन अपनी तो थी’ में भूमिहीन दलित किसान समुदायों पर साहूकारों और जमींदारों के शोषण को दिखाया गया है। जिसमें मुहावरों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है- “काली का दिल धक-धक करने लगा, होठ सिलना, उँगली फेरना, पिंड छुड़ाकर भागना, चित भी उसकी पट भी उसकी आदि।

‘हलफनामे’ उपन्यास की कथावस्तु किसानों की संवेदनाओं को झकझोरता है जिसमें लेखक ने कहावतों और मुहावरों का यथावत प्रयोग किया है। इस उपन्यास में किसानों की समस्याओं को ‘पनिया बाबा’ मिथक के माध्यम से कथावस्तु को और अधिक रोचक बनाया गया है। एक साधारण किसान के समक्ष समस्या और बड़ी हो जाती है जब सूखा या अकाल पड़ता है। इसी समस्या का उल्लेख मुहावरेदार भाषा के मार्फत राजू शर्मा इस प्रकार करते हैं- “यह कैसे हो सकता है, यह मन बहलाने की बात है। जब सूखा और अकाल पड़ता है तो पोखर, तालाब सब सूख जाते हैं, एक बूँद पानी नहीं रहता। रहेगा, कम रहे पर रहेगा। पानी की अधिकता भी अच्छी नहीं, किसान के किए मार एक सी है, अकाल हो या पनकाल।”¹⁹⁶

¹⁹⁶हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ संख्या : 124

अवध के किसानों की बेदखली संबंधी समस्या को केंद्र में रखकर कमलाकांत त्रिपाठी ने 'बेदखल' उपन्यास लिखा है। लेखक कहावतों और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पहले की किसान के जीवन संबंधी समस्या का जिक्र किया है। भारत के सभी इलाकों के किसानों की सबसे बड़ी समस्या कर्ज की है वह चाहे सेठ, साहूकारों से या सरकारी बैंकों से लिया गया हो। कर्ज के सन्दर्भ में देश के पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने कहा था कि 'किसान कर्ज में ही जन्म लेता है और कर्ज में ही मर जाता है'।

कथाकार संजीव ने 'फाँस' उपन्यास में एक पात्र शकुन से मुहावरेदार भाषा के माध्यम से इस प्रकार कहलवाया है-“इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में ही मर जाता है। बाप के हाथ-पाँव टीपते हुए छोटी को अपना ज्ञान बघारने का मौका मिला। कार्पोरेशन-सोशल रिसर्चिबिलिटी इन देशी-विदेशी सेठों की जिम्मेदारी। आपूर्ति उतनी ही होती है जितने में इसका ग्राहक बचा रहे।”¹⁹⁷ 'अकाल में उत्सव' एक ऐसा उपन्यास है जो कहावतों और मुहावरों से पाठक को बांधने की क्षमता रखता है। जिसमें बहुत ही सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया गया है। यह व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है जो अनायास ही पाठकों को आकर्षित करता है। कथावस्तु की घटनाएँ इसकी अलग पहचान कराती हैं। जिसमें एक भारतीय किसान की कारुणिक कथा कही गई है।

उपन्यास का एक पात्र मोहन राठी है जिसकी उपस्थिति बहुरंगी है। लेखक ने उसके बहाने लोक में व्याप्त कहावतों का इतना प्रयोग किया है कि लोक समाज की रचनात्मक प्रज्ञा और वाक् विदग्धता सूचित होती है। सम्पूर्ण उपन्यास कहावतों से लबरेज है मुख्यमंत्री के आगमन के समय एक उत्सव करवाना है। जिसमें कुछ सरकारी फंड भी मिला है। सरकारी अमलों के बात-चीत के माध्यम से पंकज सुबीर कहावतों का इस प्रकार प्रयोग करते हैं-“आप तो

¹⁹⁷फाँस, संजीव, पृष्ठ संख्या : 15

पूरा कार्यक्रम रमेश जी पर ही छोड़ दीजिए। ‘हिनहिनाया है तो प्यारे लीद भी कर दे जरा’। मोहन राठी ने रमेश चौरसिया के कंधे पर धौल जमाते हुए कहा.. ‘रांडतो रँड़ापा काट ले, पर तुम्हारे जैसे रंडवे काटने दें तब न?’ हाथ जोड़कर तुम ही आते हो कि चौरसिया जी मंत्री जी का कार्यक्रम है, कुछ सेविकाओं की जरूरत है।”¹⁹⁸ इस उपन्यास के भाषा के सन्दर्भ में नासिरा शर्मा ने कहा कि प्रेमचन्द का गाँव एक नई भाषा शैली में फिर से जिन्दा हो उठा है।

कितनी अजीब बात है आजादी के बाद देश में काफी बदलाव हुए पर किसानों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। पहले भी किसान की स्थिति दयनीय थी और आज भी है। जिसका उल्लेख पंकज सुबीर ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास में करते हैं। उपन्यास की भाषा के सम्बन्ध में गीता श्री लिखती हैं कि –“पंकज की भाषा बहुत चमकीली और पारदर्शी है। वे भाषा के दृश्य बुनते हैं और रोमांच पैदा करते हैं। भाषा के फाइव डी प्रभाव को महसूस किया है। कई बार। इसलिए उनके किरदारों की सांसे सुनाई देती है। उनका हँसना रोना और उनकी यातनाएँ। 5D प्रभाव में हम दृश्यों के साथ गूँज जाते हैं, हवा का झोंका सहते हैं, बारिश में भीगते हैं और उनके हमले भी वर्चुअल स्पेस में झेलते हैं।”¹⁹⁹

‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं एक यह कि इसकी घटना बहुत ही मार्मिक है और पाठक को सोचने पर विवश करती है तथा दूसरा यह है कि भाषा इस उपन्यास का महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे मुहावरे और धारदार बनाते हैं। कथा के अन्दर छोटी-छोटी कथाएँ भी जुड़ती जाती हैं। ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास भी भाषा की दृष्टि से बहुत ही सुव्यवस्थित है। मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग यथा स्थान किया गया है। स्थानीय शब्द मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है।

¹⁹⁸अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृष्ठ संख्या : 52, 54

¹⁹⁹विमर्श-अकाल में उत्सव, संपादक, डॉ सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ संख्या : 85

5.12 उपन्यासों का शिल्प

किसी भी रचना में भाषा की ही तरह शिल्प की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। शिल्प का अर्थ है— निर्माण अथवा गठन के तत्त्व। बात जिस तरीके से कही जाती है वह कहने का ढंग ही शैली कहलाता है। शिल्प क्या है ? इसे परिभाषित करते हुए डॉ० जवाहर सिंह लिखते हैं कि— “शिल्प के लिए अंग्रेजी में ‘टेक्नीक’ शब्द का प्रयोग होता है। शिल्प-विधि से तात्पर्य किसी कृति के निर्माण की उन सारी प्रक्रियाओं तथा रचना-पद्धतियों से है जिनके माध्यम से शिल्पकार या रचनाकार अपनी अमूर्त जीवनानुभूतियों, मनः प्रभावों तथा विचारों और भावों को मूर्तरूप देकर अधिकाधिक संवेद्य और सौन्दर्य मूलक बनाता है।”²⁰⁰

शैली किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का आईना होती है जो लेखक अपने विषय वस्तु का जितना अधिक जानकार होता है उसकी शैली उतनी ही सहज और प्रेषणीय होती है। किसी भी लेखक की व्यक्तित्व कला ही लिखने का तरीका है लिखने और कहने का तरीका ही शैली है। हिंदी साहित्य की सभी विधाओं की अभिव्यक्ति में शिल्प का बहुत योगदान होता है। प्रत्येक लेखक की अपनी अलग-अलग शैली होती है। लेखक के अभिव्यक्ति का लहजा उसके सामाजिक परिवेश, बुद्धि व विवेक पर आधारित होता है।

उपन्यासों के शिल्प के सन्दर्भ में डॉ० रेणु शाह लिखती हैं कि— “मनोगत विचारों को सम्पादित करने के लिए उपन्यासकार कुछ निश्चित विधियों का सहारा लेता है और इनकी सहायता से अपनी रचना में मानव जीवन का सजीव चित्र खड़ा करता है। ये विधियाँ या तरीके ही उपन्यास कला या शिल्प-विधि के नाम से पुकारे जाते हैं। उपन्यास की शिल्प विधि के अंतर्गत ये तत्त्व समाहित हैं—कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा, संवाद और उद्देश्य।”²⁰¹

²⁰⁰हिंदी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, डॉ० जवाहर सिंह, पृष्ठ संख्या : 1

²⁰¹फणीश्वरनाथ रेणु का कथा-शिल्प, डॉ० रेणु शाह, पृष्ठ संख्या : 10

शैली अपने आकार में व्यक्ति वैशिष्ट्य गुण से समन्वित होती है। शैली से वस्तु विशेष के रूप या आकार का बोध होता है। शैली के सहारे ही लेखक उपन्यास को आकर्षक और प्रभावशाली बनाता है।

शैली के गुण के बारे में डॉ० प्रताप नारायण टंडन लिखते हैं कि-“शैली के द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति को अधिक आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उपन्यास जिस ढंग से अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है उसी को शैली कहते हैं। आधुनिक उपन्यासों की सफलता बहुत कुछ उनकी शैली पर ही निर्भर करती है। शैली के गुण निम्न हो सकते हैं – सरलता, रोचकता और प्रभावपूर्णता।”²⁰²

किसान जीवन आधारित उपन्यासों में उपन्यासकार सर्वज्ञ रूप से सामने आता है और गाँव से जुड़े सभी पहलुओं को दिखाता है। कोई भी विषय उसके पहुँच से बाहर नहीं रहता है। सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा इन उपन्यासों का स्वर नया है। इन लेखकों का भाषिक प्रयोग और अंदाजे-बयां नया है। इन उपन्यासकारों का मूल तत्त्व किसानों की मूलभूत समस्याओं को दिखाना और समस्या का समाधान भी बताना है। किसानों, दलितों, मजदूरों और समाज में उपेक्षित वर्गों को मूल विषय बनाकर लिखने वाले लेखकों की भी अपनी-अपनी शैली है

5.12.1 वर्णनात्मक शैली

उपन्यास लेखन के क्षेत्र में यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें लेखक एक इतिहासकार के समान वर्ण्य विषय को उसकी सीमाओं के अनुसार उद्धाटित करता है। इस शैली का प्रयोग लगभग सभी उपन्यासकार करते हैं। इसमें लेखक की अभिव्यक्ति की सर्वज्ञता दिखाई देती है। इसका उदाहरण इस प्रकार है-“छज्जूराम ने सबको बताया-डमरुआ में चकबंदी होने

²⁰²हिंदी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास, डॉ० प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ संख्या : 89

वाली है। जिला कार्यालय में आदेश आ गए हैं। काम बहुत शीघ्र ही शुरू होगा। आप लोग बैठकर परस्पर विचार कर लीजिए कि कौन से खेत, कहाँ, कैसे लेना चाहते हैं? यह कोई जरूरी नहीं कि जो खेत आप चाहेंगे, वे आपको मिल ही जाएँगे। आपलोग जानते हैं कि डमरुआ में समतल सिंचित खेत बहुत कम है।”²⁰³ वर्णनात्मक शैली का एक और उदाहरण इस प्रकार है- “किसान, आदिवासी, दलित और बेरोजगारों के कान बहरे होने लगे। कोई गले में फँदा डालकर अम्बा की डगाल से झूलने लगा। कोई सल्फास खाकर सोने लगा। कागज के टुकड़े किसी के भेजे में जलती भट्टी को और भपकाने लगे।”²⁰⁴

5.12.2 संवादात्मक शैली

संवाद किसी भी कथा को रोचक और सबल बनाते हैं। संवाद जितना सशक्त होगा वर्ण्य विषय उतना ही प्रभावकारी होगा। कथानक को नवीन मोड़ और गतिशीलता लाने का काम संवाद ही करता है। किसान-जीवन आधारित उपन्यासों में संवाद शैली का खुलकर प्रयोग हुआ है। भावों को समझाने के लिए संवादों की आवश्यकता होती है इसीलिए किसान जीवन आधारित उपन्यासों में जीवन्तता दिखाई देती है। किसान फसलों के बेचने के लिए मंडी जाता है। सही भाव न मिलने के कारण उसे दो या तीन दिन वहीं मंडी के पास रुकना पड़ता है। संवाद शैली का सहारा लेकर संजीव ‘फाँस’ उपन्यास में किसान के दुःख-दर्द को बयां कतरे हैं। इन किसानों के संवाद इस प्रकार हैं-

“ठंड रख बेटा ठंड। जवाब में एक अनुभवी किसान बोलता है।

ये ठंड क्या बला है?

पंजाब गया है?

²⁰³अधबुनी रस्सी एक परिकथा, सच्चिदानंद चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या : 19

²⁰⁴गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, पृष्ठ संख्या : 287

मुम्बई ही नहीं गया और तुम पूछते हो पंजाब ?

तब क्या खाक समझेगा । ये पंजाबी भाषा है, मतलब धीरज रखो, शान्त रहो ।

अरे दुत तेरे धीरज की ऐसी की तैसी !”,²⁰⁵

संवाद के माध्यम से उपन्यासकार पात्रों में जीवन्तता ला देता है । किसान-जीवन पर आधारित ज्यादातर उपन्यासों में संवाद-शैली का प्रयोग किया गया है जो पाठक में उत्सुकता बनाये रखता है । कमलाकांत त्रिपाठी ने छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से किसानों को उनकी जमीनों से बेदखल होने का उल्लेख करते हैं । सुचित जो एक साधारण किसान है जैसे ही उसे अपनी जमीन से बेदखली की नोटिस सिपाही लेकर पहुँचता है तो वह हक्का-बक्का रह जाता है-
“सुचितवा है रे ?

हाँ महाराज ।

नोटिस है तुम्हारे नाम ।

नोटिस ?

कैसी नोटिस है सरकार ?

बेदखली की ।

सुचित की रूह कॉप उठी । सिपाही उसके हाथ में एक कागज थमाकर जल्दी-जल्दी डग बढ़ाता निकल गया ।²⁰⁶ किसान जीवन केन्द्रित उपन्यासों के संवादों का स्वरूप कहीं बड़ा है तो कहीं छोटा । ‘हलफनामे’, ‘गाँव भीतर गाँव’, ‘आखिरी छलाँग’, ‘हिडिम्ब’, ‘नमामि ग्रामम’, ‘जहाँ एक जंगल था’ और ‘अकाल में उत्सव’ आदि उपन्यासों में लम्बे-लम्बे संवादों के माध्यम से लेखकों ने किसान-जीवन का उल्लेख किया है ।

²⁰⁵फॉस, संजीव पृष्ठ संख्या : 140

²⁰⁶बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या : 61-62

निष्कर्ष

प्रत्येक उपन्यासकार का अपना अलग-अलग पारिवारिक और सामाजिक परिवेश होता है इसी परिवेश के अनुसार कोई साहित्यकार अपनी रचना का सृजन करता है। किसी कवि या लेखक या रचनाकार की पहचान उसकी अपनी भाषा होती है। किसान जीवन केन्द्रित उपन्यासों की भाषा सरल और सहज है। इन उपन्यासों की विषय वस्तु ग्रामीण परिवेश और किसान जीवन है। इस अध्याय के अंतर्गत उपन्यासकारों की भाषा प्रयोग के बारे में विस्तार से बात की गई है। इसके साथ ही भाषा का महत्त्व और सामाजिक परिवेश के अनुसार स्थानीय शब्द और बोलियों के प्रयोग को भी दिखाया गया है। एक किसान की भाषा में जो सीधेपन और ईमानदारी की मिलावट होती है उसे भी बहुत सहज रूप से उपन्यासकारों ने प्रयोग किया है जिसे उपन्यासों के माध्यम से दिखाने की कोशिश की गई है। किसानों के लिए साहूकारों के द्वारा प्रयोग की गई भाषा को भी दिखाया गया है। किसान-जीवन आधारित उपन्यासों की भाषा आमजन की भाषा और किसानों की भाषा है।

प्रत्येक उपन्यासकारों की विषय वस्तु की समानता होने पर भी अंतर्वस्तु भिन्न-भिन्न है। इसके साथ ही इस अध्याय में घटनाओं तथा भौगोलिक भिन्नता के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण किया गया है। लगभग सभी उपन्यासों की भाषा पात्रानुकूल है। सरकारी तंत्र और सेठ साहूकार की भाषा किस प्रकार की है उसे इन लेखकों ने बहुत बारीकी से दिखाया है। भाषा अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में मुख्य रूप से राजू शर्मा का 'हलफनामे' शिवमूर्ति का 'आखिरी छलाँग' संजीव का 'फाँस' और पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल में उत्सव' का उल्लेख किया गया है। उपन्यासकार मुख्य भाषा के साथ ही स्थानीय भाषा और बोली को भी कथावस्तु के अनुसार प्रयोग करता है। कहाँ कौन-सा पात्र किस भाषा या बोली का प्रयोग करता है इसे लेखकों ने बहुत बखूबी अभिव्यक्त किया है।

विवेच्य उपन्यासों का शिल्प विधान के अंतर्गत उपन्यासकारों ने जिन उपन्यासों के नामकरण किए हैं, वह कहाँ तक कथावस्तु और घटनाओं तक सही बैठता है उसकी सार्थकता पर विहंगम दृष्टि डाली गई है। कोई भी लेखक अपनी बात को सीधे-सीधे न कह कर प्रतीक या बिम्ब के माध्यम से कहता है। जिससे उपन्यास की कथावस्तु में रोचकता आ जाती है। उदाहरण के तौर पर पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' को लिया जा सकता है जिसका सृजन ही कहावतों और प्रतीकों के सहारे हुआ है।

उपसंहार

किसान हमारे देश की विभूति है जो अर्थव्यवस्था के साथ-साथ हमारी सभ्यता और संस्कृति का भी मेरुदंड है। किसान 'अन्नदाता' कहलाता है, क्योंकि खेत में जब वह हल चलाता है तो सारे देश को अन्न मिलता है। भारतीय किसान का स्वभाव सहज ही सरल और परिश्रमी होता है। कई बार वह स्वयं भूखा रहकर भी हम सबके लिए अन्न उगाता है। लेकिन चिंता की बात यह है कि आज़ादी के सात दशक बीतने के बावजूद हमारे देश के सामान्य किसान की माली-हालत में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है। किसान आज़ादी से पहले भी शोषित था और आज भी है। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कहे जाने वाले किसान की दशा आज बद से बदतर होती जा रही है। पूँजीवाद के इस दौर में किसान उदारीकरण और निजीकरण के जाल में फँस कर दरिद्रीकरण के गर्त में समाता जा रहा है।

आज़ादी के पश्चात् पूँजी का केन्द्रीकरण होता गया और कृषि-प्रधान देश की रीढ़ किसान कंगाल होते गए। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि अनाज को उगाने के लिए दिन-रात परिश्रम करने वाला किसान अपने ही अनाज यानी उत्पाद का मूल्य निर्धारण नहीं कर सकता है। जिस तरह कारखानों में श्रमिक अपने श्रम की कीमत नहीं तय कर सकता है उसी तरह इस देख का कृषक भी अपने अनाज, सब्जियों और फलों का मूल्य तय नहीं कर पाने की स्थिति में है। इस तरह किसानों की कई माँगें हैं जिन्हें पूरा करवाने तथा एम०एस०स्वामीनाथन की सिफारिसों को पूर्णतः लागू करवाने के लिए देश के किसान (विशेषकर पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और मध्यप्रदेश आदि राज्यों के) आन्दोलन कर रहे हैं।

नवउदारवाद के दौर में किसान पूरी तरह बाजारवाद पर निर्भर हो गया है। कृषि प्रबंधन और कृषि योजनाओं का सही तरीके से क्रियान्वयन न होने के कारण किसान आज कई समस्याओं से जूझ रहा है जिससे वह कर्जदार होता जा रहा है और कर्ज के इस मकड़जाल में

फँसकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर रहा है। किसानों की दुर्दशा देख कृषि चिंतक ही नहीं साहित्यकार भी विचलित हो रहे हैं। शोषित, दलित एवं उपेक्षित वर्ग की निरंतर चिंता करने वाले साहित्यकार कृषकों की दशा पर भी अपने साहित्य में विचार कर रहे हैं। पिछले कुछ दशकों से कविताओं के साथ-साथ कहानियों और उपन्यासों में भी किसान जीवन पर समुचित मात्रा में साहित्य रचा जा रहा है जिससे किसानों के दुःख-दर्द, पीड़ा और संत्रास तथा वस्तुओं के अभाव में किसानों की विवशता को अभिव्यक्ति मिली है।

नवउदारवाद के दौर के उपन्यासों में भारतीय किसानों की मुख्य समस्या पूँजीवादी समाज है। इस समाज ने मनुष्य को हृदयहीन और संवेदनाशून्य बना दिया है। इस दौर में किसानों को अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ रहा है जिनमें प्रमुख हैं बिजली का बिल जमा करने की समस्या, भूमाफियाओं से जमीन बचाने की समस्या, किसान कल्याण नीतियों से बिचौलिए की समस्या, खेती की उर्वरा शक्ति बचाए रखने की समस्या और उनके फसलों को उचित दाम न मिलने की समस्या आदि। इसी की कई अन्य समस्याओं से घिरा किसान आज बहुत परेशान है तथा उसकी स्थिति दिनोंदिन दयनीय होती जा रही है। वैसे, वर्तमान समय में किसानों के समक्ष सबसे बड़ी और मुख्य समस्या कर्ज की है। कर्ज चाहे सरकारी कर्ज हो या गैर-सरकारी, नवउदारवाद के दौर के उपन्यासकारों ने कर्ज की समस्या पर बखूबी विचार किया है।

नब्बे दशक के बाद किसानों के जीवन, उनकी संस्कृति तथा सभ्यता में जो परिवर्तन आया है उसे इस दौर के उपन्यासों में देखा जा सकता है। यही वह समय है जब भारत में नई अर्थनीति लागू होने से भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य कड़ी किसानों के जीवन में होने वाले उन तमाम बदलावों को लेखकों ने बड़ी गंभीरता से उल्लेखित किया है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद और विज्ञान-युग के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को इन लेखकों ने दिखाने का प्रयास

किया है। नवउदारवादी नीतियाँ ज्यादातर किसान विरोधी ही सिद्ध हो रही हैं जिस पर भी लेखकों ने बड़े संजीदगी के साथ विचार किया है।

किसानों के जीवन में आने वाली समस्याओं में प्रमुखतः जल, जंगल का जमीन का सवाल, काश्तकारों, साहूकारों, जमीनदारों तथा बैंकों से लिए गए कर्ज से उत्पन्न दबाव के कारण किसानों द्वारा किए जाने वाले आत्महत्या जैसी कई समस्याओं को दिखाया गया है। जिसे देख कर लगता है कि प्रेमचन्द के समय के किसानों की स्थिति और वर्तमान समय के किसानों की स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव नहीं आया है। किसान के जीवन का बेरुखीपन जो ‘गोदान’ के होरी में दिखाई देता है वही आज ‘अकाल में उत्सव’ उपन्यास के रामप्रसाद में, ‘फाँस’ उपन्यास के किसान शिबू में, ‘आखिरी छलाँग’ उपन्यास के पहलवान में दिखाई देता है। जिस तरह आर्थिक तंगी से परेशान होरी आत्महत्या में ही अपने कष्टों की मुक्ति देखता है उसी तरह रामप्रसाद भी प्रशासन की लापरवाही से आत्महत्या करता है। इतना ही नहीं ‘फाँस’ उपन्यास का शिबू भी इसी आर्थिक तंगी से तंग आकर आत्महत्या कर बैठता है।

किसानों की आत्महत्या का वर्णन नवउदारवाद दौर के कई उपन्यासों में मिलता है। ‘बेदखल’ उपन्यास में जहाँ एक तरफ भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय की घटनाओं का उल्लेख करते हुए लेखक ने जहाँ जमींदारों द्वारा किए जाने वाले किसानों के शोषण का चित्रण किया गया है वहीं दूसरी तरफ ‘फाँस’, ‘हलफनामे’ और ‘अकाल में उत्सव’ जैसे उपन्यासों में किसानों द्वारा सरकारी बैंकों से लिए गए कर्ज की अदायगी न करने के कारण आत्महत्या जैसी समस्याओं को बहुत बारीकी से दिखाया है। इतना ही नहीं, संजीव जैसे कुछ लेखकों ने किसानों की इस गंभीर समस्याओं से निजात पाने के लिए उपाय भी बताने की कोशिश की हैं।

हिंदी कथा साहित्य में विशेष रूप से उपन्यासों में किसान जीवन की अभिव्यक्ति की जो व्यापक और विस्तृत शुरुआत उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने की थी तथा समय एवं परिस्थिति के

अनुसार किसानों के शोषण का जिक्र किया था वही किसान आज नवउदारवाद और बाजारवाद के दौर में भी नए रूपों से शोषण का शिकार है जिसका उल्लेख नब्बे दशक के बाद के उपन्यासकारों ने किया है। भारत में नई अर्थनिति (1991) लागू होने के बाद निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण का दौर शुरू होता है। जिसके तहत सरकार द्वारा खुले बाजार की छूट दे दी जाती है यहाँ तक की खेती को भी कॉरपोरेट कंपनियों को ठेके पर दे कर करवाया जाना शुरू होता है जिसकी वजह से किसान अपनी ही जमीन पर मालिक से नौकर बनता जा रहा है। किसानों की इन्हीं समस्याओं का जिक्र इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकार शिवमूर्ति ने ‘आखिरी छल्लाँग’ और भगवान दास मोरवाल ने ‘नरक मसीहा’, एस०आर० हरनोट ने ‘हिडिम्ब’, राजू शर्मा ने ‘हलफनामे’ में बहुत ही बारीकी से किया गया है।

औद्योगीकरण और भूमंडलीकरण के प्रभाव से पारंपरिक कृषि में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इससे पहले कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से भारत में ‘हरित क्रान्ति’ हो चुकी थी। विज्ञान युग या यांत्रिक युग की शुरुआत इसी समय होती है। खेती के अधिकतर काम-काज अत्याधुनिक निर्मित उपकरणों से होने लगी। अधिक उत्पादन के लिए हाइब्रिड जैसे विदेशी बीजों का प्रयोग होने लगा। इसका किसानों के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा जिसकी वजह से बाजारवाद तेजी से बढ़ने लगा। परिणाम यह हुआ कि अधिकतर किसान बाजार पर पूर्णतः निर्भर होते गए। किसानों को बीज संरक्षण की जरूरत ही नहीं रही क्योंकि बाजार से अच्छे बीज सुलभता से मिल जाते थे। इससे किसानों को काफी लाभ भी हुआ जिसकी वजह से फसलों के उत्पादन में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी होती गई परन्तु महँगाई भी साथ-साथ बढ़ती गई जिससे फसलों की लागत में भी वृद्धि लगातार होती रही।

भारत में कॉरपोरेट खेती होने से किसानों के श्रम के योगदान की सामूहिकता धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है। वर्तमान समय में लोग एक-दूसरे के सहयोग की कोई जरूरत नहीं समझते

है। नवउदारवाद के दौर में किसान एक मशीन बनता जा रहा है। विज्ञान ने मनुष्य को एक तरफ बहुत कुछ दिया है तो दूसरी तरफ उसने उससे उसकी मनुष्यता को छीन ली है। किसानों के अन्दर मानवीयता का बहुत तेजी से हास होना आरंभ हुआ है। कृषि क्षेत्र में पूँजीपतियों और कॉर्पोरेट कंपनियों के उदय से बड़ी संख्या में किसान विस्थापित हो रहे हैं तथा खेती छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं। जीवित रहना है तो खाना पड़ेगा यह सोचकर किसान काम धंधों के लिए अपना गाँव छोड़कर शहर की ओर रुख कर रहे हैं।

किसानों के समक्ष कई समस्याएँ हैं जिसकी वजह से वे आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। योगेन्द्र यादव अपने साक्षात्कार में कहते हैं कि वर्तमान समय में भारतीय किसान के समक्ष **आमद, खर्च, आपद और कर्ज** ये चार मुख्य समस्याएँ हैं जिनकी वजह से किसानों की स्थिति दयनीय है। कहने का मतलब यह है कि किसान को खर्च की अपेक्षा उसे आमदनी यानी मुनाफा बहुत कम हो रहा है। खेती में दिनोंदिन खर्च बढ़ता जा रहा है। जिसकी वजह से किसान कर्जदार होता जा रहा है। इसके बाद प्राकृतिक आपदा सूखा या बाढ़ से किसानों को परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है और किसान कर्ज के बोझ तले दबता जा रहा है। पारिवारिक समस्या, सिंचाई की समस्या और बैंक या साहूकार से लिए गए कर्ज की समस्या आदि इन तमाम समस्याओं से परेशान किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। जिसका उल्लेख नवउदारवाद के दौर के उपन्यासकारों ने किया है जिसमें शिवमूर्ति का 'आखिरी छलाँग', राजू शर्मा का 'हलफनामे', संजीव का 'फाँस' और पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' प्रमुख हैं।

महाराष्ट्र और आंध्रप्रदेश जैसे राज्यों में किसान कपास का उचित दाम न मिलने के कारण व सिंचाई की सुविधा बहुत कम होने के कारण आत्महत्या कर रहा है। किसानों द्वारा की गई आत्महत्या को जायज ठहराने को लेकर भ्रष्ट शासनतंत्र का भी खुलासा संजीव और राजू शर्मा

जैसे उपन्यासकारों ने किया है। महिला किसान का भी जिक्र इन उपन्यासों में किया गया है। ये वही महिला किसान हैं जिनके पतियों ने आत्महत्या कर ली है। निम्न और मध्यम वर्ग के किसानों के जीवन में तो समस्याओं का अम्बार होता है। इनकी ही समस्याओं को नेता लोग राजनीति का आधार तो बनाते हैं पर ये समस्याएँ कहाँ से उत्पन्न हो रही हैं ? इन समस्याओं के मूल कारण क्या हैं ? इस पर कोई ध्यान नहीं देता। कुछ कर्ज तो माफ हो जाता है परन्तु कर्ज माफ़ी ही समस्या का समाधान नहीं है। कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि कर्जमाफी एक ऐसा जहर है जो भारत की फलती-फूलती अर्थव्यवस्था को बर्बाद कर सकता है। इसके अतिरिक्त भी भारतीय किसानों के समक्ष जो समस्याएँ हैं उसे निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है-

➤ भूमि असमानता और कृषि में निवेश का अभाव

कृषि क्षेत्रों में नए निवेश में कमी हुई है। अर्थशास्त्रियों ने इसके लिए कई कारण बताए हैं और कई लोग मानते हैं कि कृषि में दयनीयता का मूल कारण भूमि असमानता है। यह तर्क दिया जाता है कि खेती की व्यवस्था के तहत मकान मालिक-किरायेदार आदि द्वारा बाद के सभी उत्पादन खर्चों को वहन किया जाता है और किरायेदारों में निवेश योग्य संसाधनों की कमी होती है जो कृषि उत्पादकता पर असर डालती है।

➤ सुनियोजित और प्रभावी नीतियों का अभाव

भारत सरकार द्वारा कृषि से संबंधित समस्याओं को हल करने के लिए किए गए कई प्रयासों के बावजूद भारत में कोई सुसंगत कृषि नीति नहीं है। भारतीय कृषि में स्थिरता और उत्पादकता में वृद्धि को लेकर एक सुसंगत कृषि नीति पर एक विस्तृत समझौते की आवश्यकता है। राजनैतिक और आर्थिक दोनों कारणों से पिछले कुछ दशकों में भारतीय राज्य द्वारा व्यापक आधार पर कृषि

कार्यों की उपेक्षा की गयी है। पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत की तरह अधिकांश विकासशील देशों ने अपने कृषि क्षेत्र के संरचनात्मक विकास को नजरअंदाज किया है।

➤ मानसून पर निर्भरता

भौगोलिक भिन्नता और साधन की अनुपलब्धता के कारण आज भी भारत के कई राज्यों के किसान को सिंचाई के लिए वर्षा-जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अधिकतर किसानों को वे सारी सुविधाएँ नहीं मिल रही हैं जो सुविधा हरियाणा और पंजाब के किसानों को मिल रही है। हरियाणा जैसे सिंचित राज्य में जहाँ समय की बचत के लिए नए तकनीकी से बोरवेल को चालू और बंद करने के लिए तरकीबें हैं वहीं दूसरी तरफ बुंदेलखंड जैसे इलाकों के किसानों को मानसूनी वर्षा पर ही नज़रें टिकाए रहना पड़ता है। आज भी आधी फीसदी तक किसान बारिश के जल से ही सिंचाई करता है। सिंचाई के लिए नहर की व्यवस्था अब बहुत कम रह गई है। नहरें तो अब बाढ़ को कम करने या बांध को बचाने के लिए प्रयोग में लायी जा रही हैं। भारतीय किसानों की समस्याओं के समाधान निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा किया जा सकता है -

➤ भौगोलिक भिन्नता के आधार पर सिंचाई सुविधाएं मुहैया करना

फसलों को सही समय पर तैयार करने और स्वास्थ्य और सुरक्षित रहने के लिए यह जरूरी है कि उचित सिंचाई की व्यवस्था हो। जब कृषि की बात आती है तो इस क्षेत्र के लिए भारत ने अपने प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित और विकसित नहीं किया है, आए दिन वनों की कटाई और तालाबों का सिकुड़ता क्षेत्र से पर्यावरण में तेजी से बदलाव हो रहा है। मुख्य रूप से सिंचाई से संबंधित संसाधनों को संरक्षित करने के लिए बहुत कम प्रयास किया गया है। महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और बुंदेलखण्ड तथा अन्य जगहों पर गंभीर जल संकट से स्थिति की गंभीरता स्वतः

स्पष्ट हो जाती है। केवल किसान के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए पानी बहुत गंभीर समस्या है।

हाल ही (28 अगस्त 2020) में पत्रकार पंकज चतुर्वेदी ने ‘सिमटती सिसकती नदियाँ’ शीर्षक लेख में यह दिखाया है कि किस प्रकार दिनोंदिन पानी की कमी होती जा रही है। नदियों का आकार दिनोंदिन छोटा होता जा रहा है। पंकज चतुर्वेदी लिखते हैं कि – ‘नदिया अपने साथ अपने रास्ते की मिट्टी, चट्टानों के टुकड़े और बहुर सारा खनिज बहा कर लाती हैं। पहाड़ों और नदियों के मार्ग पर अंधाधुंध जंगल की कटाई, खनन, विस्फोटकों का इस्तेमाल आदि के चलते थोड़ी-सी बारिश में ही बहुत सारा मालवा बहकर नदियों में गिर जाता है। नतीजन नदियाँ उथली हो रही हैं। उनके रास्ते बदल रहे हैं और थोड़ा-सा पानी आने पर वे बाढ़ के रूप ले लेती हैं।’

➤ न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) निर्धारण में किसान की भूमिका

किसान दिन-रात नस तोड़ मेहनत करके, बीमारियों और मौसम के कहर से बच-बचाकर किसी तरह फसल को तैयार करता है। वह सोचता है कि इस बार फसल का अच्छा दाम मिलेगा। हँसते-हँसते वह मंडी जाता है। मन में तमाम अरमान लिए वह मंडी पहुँचता है लेकिन जैसे ही फसलों का दाम आढ़तियों और व्यापारियों से सुनता है उसके अरमानों पर पानी फिर जाता है और वह उदास हो जाता है और उसे कम दाम में ही फसल को बेचना पड़ता है। यह किसानों का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि रात-दिन मेहनत वह करे लेकिन फसल की कीमत कोई दूसरा निर्धारित करे। होना यह चाहिए कि किसान के किसी भी फसलों का दाम निर्धारित करने के लिए सरकार एक समिति का गठन करे और उस समिति में अलग-अलग क्षेत्रों के एक-एक अनुभवी किसान को रखा जाए और उनकी सहमति से ही फसलों का मूल्य निर्धारण किया जाए क्योंकि एक किसान ही अच्छी तरह से बता सकता है कि किस फसल को तैयार करने में कितना खर्च लगता है उसी हिसाब से फसलों का मूल्य निर्धारित किया जाए। खेती-किसानी का काम जो कभी नहीं

किया फसल की कीमत आंकते समय वह किसानों के साथ न्याय नहीं कर सकता है। उसे क्या मालूम की किस फसल में कितना लागत लगी होगी ? इसलिए किसानों की स्थिति में यदि सुधार लाना है तो बिना उसके सलाह के किसी भी फसल का मूल्य निर्धारण न किया जाय।

➤ ब्लॉक स्तर पर छोटे एवं लघु कुटीर-उद्योग होना

किसानों को उसकी फसलों का वाजिब दाम मिले और खेती घाटे का सौदा न हो तो उसके लिए सरकार को चाहिए कि प्रत्येक राज्य में ब्लॉक स्तर पर छोटे और लघु उद्योग स्थापित करे। इसके लिए यह भी जरूरी है कि सरकार कुछ आर्थिक मदद करे और किसान भी सहयोग करे। इससे किसान को फायदा यह होगा कि आलू, टमाटर, गेहूँ, धान आदि फसलों के अच्छे दाम भी मिल जाएंगे और अतिरिक्त किराया भी नहीं देना पड़ेगा। ब्लॉक स्तर पर छोटे और लघु उद्योग होने से खाली समय में किसान भी वहां काम कर सकेगा।

➤ किसान कल्याणकारी योजनाओं का सही से क्रियान्वयन

किसानों के बदहाली और दरिद्रीकरण का एक और मुख्य कारण यह है कि सरकार द्वारा चलाई जा रही किसान कल्याणकारी योजनाओं का सही तरीके से क्रियान्वयन न होना। इन योजनाओं के इर्द-गिर्द बिचौलिए इतनी ज्यादा सक्रिय है कि छोटे किसानों तक इन योजनाओं की सूचना ही नहीं मिल पाती है। अधिकतर योजनाओं का लाभ जिसे मिलना चाहिए उसे नहीं मिलता है बल्कि बड़े जोत के किसान ही सभी योजनाओं का अच्छे से फायदा उठाते हैं। कहने के लिए यूरिया खाद हर जगह पर समय से किसानों का बाजार से कम दाम में मिलती है पर सच्चाई यह है कि ऊँची जोत के ही किसान इसका भरपूर फायदा उठा रहा है। बहुत सारे किसानों को न तो समय पर बीज मिलता है और न ही यूरिया खाद ही मिलती है। कुछ गिने-चुने किसान को ही

इसका लाभ मिलता है। जब तक किसान और सरकार के बीच से इन बिचौलियों की टोली नहीं समाप्त होगी तब तक किसानों की स्थिति में सही तरीके से सुधार नहीं हो पाएगा।

किसान जागरूकता अभियान के तहत सरकार को यह चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र में 'किसान जागरूकता अभियान समिति' का गठन करे और इस समिति के सदस्यों द्वारा गाँव-गाँव जाकर किसान को सरकारी योजनाओं के बारे में जानकारी दे। हालांकि कुछ राज्यों में 'किसान मित्र' द्वारा यह काम किया जा रहा है किन्तु 'किसान मित्र' अपने काम को सही तरीके से नहीं कर रहे हैं।

➤ प्राकृतिक कृषि या जैविक कृषि को बढ़ावा देना

वर्तमान समय में हो रहे पर्यावरण में परिवर्तन का मुख्य कारण जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण है। रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा प्रदूषण दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और रासायनिक खादों के प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है जिसका दूरगामी परिणाम बहुत घातक होगा। हालांकि सरकार इसी को ध्यान में रखते हुए किसानों को जैविक खेती करने के लिए बढ़ावा दे रही है लेकिन अभी बहुत कम जगहों पर करने के उदाहरण मिलते हैं। हरियाणा, आंध्रप्रदेश और उत्तराखंड जैसे राज्यों के कुछ स्थानों पर जैविक खेती की जा रही है। जैविक खेती को हम कई नामों से जानते हैं जैसे- जीरो बजट खेती, प्राकृतिक खेती, कुदरती खेती, सजीव खेती और वैकल्पिक खेती आदि। प्राकृतिक खेती करने से किसान को फसलों के उत्पादन में अल्प खर्च लगता है। किसान को बाजार पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है लेकिन जीरो बजट खेती के लिए यह आवश्यक है कि किसान के पास पशु पर्याप्त संख्या में हो जो आज के समय के किसानों के पास बहुत कम है। हिंदी उपन्यास क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट और देशी खेती करने का कृषि वैज्ञानिकों द्वारा प्रोत्साहन देना और कृषि वैज्ञानिकों के समक्ष आने वाली समस्याओं का जिक्र 'ताकि बची रहे हरियाली' उपन्यास में अनंत कुमार सिंह ने किया है।

➤ फसलों के दाम को औसतन बनाये रखना

अक्सर अखबारों और न्यूज चैनलों में देखने, सुनने को मिलता है कि एक किसान ने टमाटर या आलू को मंडी ले जाने के बजाय सड़क के किनारे या अपने ही खेत में फेंक देता है क्योंकि इन सब्जियों की लागत मूल्य भी नहीं निकलता है। यह स्थिति जरूरी नहीं है कि सभी राज्यों की हो, कहीं इन सब्जियों को फेका जाता है तो कहीं इन सब्जियों के लिए लोग तरसते रहते हैं। फसलों का मूल्य किसी वर्ष इतना बढ़ जाता है कि साधारण जनता या किसान खरीद नहीं सकता जबकि व्यापारियों के माल गोदाम इन अनाजों से भरे रहते हैं। किसान की किसी भी फसल के मूल्यों में ज्यादा उतार-चढ़ाव न हो इसके लिए सरकार को चाहिए कि सभी राज्यों के कृषि प्रबंधन को सही करे इतना ही नहीं किसान कहीं भी किसी भी राज्य में बेरोकटोक अपनी फसलों का आयात और निर्यात कर सके।

शोध कार्य की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत शोध-कार्य 'नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन' की अग्रलिखित उपलब्धियाँ हैं --

- हिंदी उपन्यासों में गाँव और किसान जीवन का अभिव्यक्ति कब से हुई ? उपन्यासकारों के रचना के केंद्र में किसान कब से आया ? इस प्रश्नों के जवाब को प्रस्तुत शोध-प्रबंध के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है।
- आजादी के पहले और आजादी के बाद के किसानों की स्थिति में आए बदलाओं को दिखाने कोशिश की गई है।
- प्रेमचन्द युगीन किसानों के शोषण के स्वरूप और वर्तमान किसानों के शोषण के स्वरूप में जो परिवर्तन दिखाई दिया है, उसे दिखाने की कोशिश की गई है।
- नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में भारतीय किसान के सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को पहचाना जा सकता है।

- कृषि क्षेत्र में पूँजीपतियों के बढ़ते वर्चस्व और इससे उत्पन्न विस्थापन और पलायन जैसी समस्याओं को इस दौर के हिंदी उपन्यासों में दिखाने का यत्न किया गया है।
- सरकारी या गैर-सरकारी ऋण से परेशान होकर खुदकुशी करते किसानों की जो अभिव्यक्ति वैश्वीकरण के दौर के उपन्यासों में हुई है उसे दिखाया गया है।
- कर्जमाफी और मुआवजे को लेकर सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों के शोषण को इस दौर के उपन्यासों में दिखाया गया है।
- विदेशी बीजों और रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से किसानों के नफा और नुकसान को उपन्यासों के माध्यम से पड़ताल की गई है।
- बाजारवाद और वैश्वीकरण के प्रभाव से किसान कैसे दरिद्रीकरण तक पहुँच गया इस दौर के उपन्यासों में दिखाया गया है।
- नवउदारवाद के दौर के हिंदी उपन्यासों में महिला किसानों की खेती में सहभागिता और सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को समझा जा सकता है।
- फसलों के वाजिब दाम न मिलने से किसान किन-किन समस्याओं का सामना कर रहा है उसे समझा और देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, सिहोर, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण 2017
2. अधबुनी रस्सी एक परिकथा, प्रो.सच्चिदानंद चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण – 2009
3. आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2008
4. गाँव भीतर गाँव, सत्यनारायण पटेल, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2015
5. जमीन अपनी तो थी, जगदीशचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
6. ताकि बची रहे हरियाली, अनंत कुमार सिंह, रीवर पब्लिशिंग हाउस, गाजियाबाद , उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2015
7. धरती धन न अपना, जगदीश चंद्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007
8. नरक मसीहा, भगवान दास मोरवाल, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014
9. फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005
10. बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997
11. यह जमीन हमारी है, विश्वंभर मिश्रा, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
12. रेहन पर रघू, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008
13. हलफनामे, राजू शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006

14. हिडिम्ब, एस. आर. हरनोट, आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा, प्रथम संस्करण, 2002

सहायक ग्रन्थ

1. 21वीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, सं. डॉ. एस. वाई. होनगेकर/डॉ. आरिफ माहत, ए. बी. एस. पब्लिकेशन, वाराणसी(उ. प्र.) प्रथम संस्करण-2018
2. A brief History of neoliberalism, Devid Harvey, Oxford university press First published 2005 .
3. Neoliberalism from below, veronica gago, duke university press, London, 2017
4. आखिरी उदारीकरण और अन्य निबन्ध, रामचंद्र गुहा, पेंगुइन बुक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013
5. उदारीकरण और आर्थिक विकास, मान चन्द खंडेला, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर ,2007
6. उदारीकरण की तानाशाही, प्रेम सिंह, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008
7. उदारीकरण की राजनीति, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1998
8. उदारीकरण की राजनीति, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998
9. उपन्यास और लोकतंत्र, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
10. उपन्यास की महान परंपरा, खगेन्द्र ठाकुर, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
11. उपन्यास की संरचना, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

12. उपन्यासकार प्रेमचन्द, सुश्री सुभाषिनी शर्मा, नंदन प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1974
13. एक उदारवादी स्वर, चेस्टर वैल्स सं. हेनरी स्टील कोमागर. अनु. ओमप्रकाश दीपक, आत्माराम एंड संस, दिल्ली प्रथम संस्करण 1965
14. किसान आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि, सं. अवधेश प्रधान, ग्रन्थ शिल्पी, 2012
15. किसान आन्दोलन के साहित्यिक जमीन, रामाज्ञा शशिधर, अंकिता प्रकाशन, गाजियाबाद, 2012
16. किसान आन्दोलन दिशा और दशा, किशन पटनायक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
17. किसान, राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रेमचन्द: 1918-22, वीरभारत तलवार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990
18. खेतिहर समाज, प्रधान हरिशंकर प्रसाद, फिलहाल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण 2006
19. छह बीघा जमीन, फ़कीर मोहन सेनापति, अनुवादक युगजीत नवलपुरी, प्रथम संस्करण 1959, पुनर्मुद्रण 2017
20. जल टूटता हुआ, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969
21. नमामि ग्रामम, विवेकी राय, विद्या विहार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997
22. नवउदारवाद विविध आयाम, गिरीश मिश्र, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
23. नव-उदारवादी नीतियाँ नाकामी और दुराग्रह, सं. कमल नयन काबरा और अन्य, युवा संवाद प्रकाशन, 2013

24. पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति, रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 19 96
25. प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, प्रकाशक : मेहरचंद मुंशीराम, नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली प्रथम संस्करण 1992
26. प्रेमचन्द और भारतीय किसान, डॉ॰रामबक्ष, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981
27. 'प्रेमचन्द' किसान जीवन सम्बन्धी कहानियाँ और विचार, प्रधान संपादक रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013
28. भारत के मध्य वर्ग की अजीब दास्तान, पवन कुमार वर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009
29. भारत में आर्थिक उदारीकरण एवं निर्धनता निवारण, सं. डॉ.इंदुवार्ण्य एवं उषा शर्मा, गगन दीप प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
30. भारत में सामाजिक आन्दोलन, घनश्याम शाह, मिलिन्द प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2009
31. भारतीय इतिहास में मध्यकाल, इरफ़ान हबीब, संपादक और अनुवादक रमेश रावत, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1999
32. भारतीय कृषि आजादी के बाद, जी एस भल्ला, अनुवादक रजनीश कुमार, पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण 2016
33. भारतीय खेतिहरों की स्थिति, जी एस भल्ला, अनुवादक-गिरीश मिश्र, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007

34. भारतीय ग्राम, श्यामाचरण दुबे, अनुवादक-योगेश अटल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996
35. भारतीय महिला किसान, मैत्रेयी कृष्णराज/अरुणा कांची, अनुवादक अरविंद कुमार सिंह/रजनी कुमारी, पुस्तक न्यास भारत, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
36. भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
37. मीडिया समग्र, जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013
38. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
39. राममनोहर रचनावली, भाग 3, सं. मस्तराम कपूर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली 2013
40. विमर्श –अकाल में उत्सव, संपादक : डॉ० सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन. मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण 2017
41. शोषण के अभयारण्य, अशोक कुमार पाण्डेय, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली,
42. समकालीन हिंदी साहित्य : किसान एवं श्रमिक वर्ग, सं. सीताराम के. पवार, इंटरनैशनल पब्लिकेशन कानपुर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण, 2017
43. स्वातंत्रोत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, विवेकी राय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1974
44. स्वामी सहजानन्द सरस्वती किसान विश्वकोश, संपादक-डॉ० प्रिय रंजन त्रिवेदी/रत्नेश्वरी शर्मा, भारतीय खादी ग्रामोद्योग विकास अधिकरण, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
45. हमारी खेती का वसीयतनामा, अनु. प्रभाकर पंडित, साधना ग्राफिक प्रकाशन, इन्दौर, प्रथम संस्करण 2010

46. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
47. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण 1016
48. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपति चन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवाँ संस्करण, 2004

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अभिधा, प्रधान संपादक, अरविन्द कुमार, मुजफ्फर नगर, जुलाई 2016
2. अभिनव कदम, चन्द्रदेव राय, मऊ, दिसम्बर 2011-मई 2012
3. चौपाल, संपादक, कामेश्वर प्रसाद सिंह, एटा, उत्तर प्रदेश, मार्च 2013
4. जनसत्ता, दैनिक समाचार पत्र, संपादक, मुकेश भारद्वाज, दिल्ली, 2016, 2017, 2018
5. वागर्थ, संपादक, एकान्त श्रीवास्तव, कोलकाता, जून 2014
6. हंस, संपादक - राजेन्द्र यादव, दिल्ली, अगस्त 2006

इंटरनेट (अंतर्जाल)

1. www.indianfarmer.org/2019/09/kisano-ki-aatmhatya-ke-karan.html 25 Sep 2020
2. <http://aksharchhaya.blogspot.com/2020/08/blog-post.html>, 17 march 2017
3. http://arganikbhagyoday.blogspot.com/2013/05/blog-post_4982.html 12 may 2013

4. <https://www.kafaltree.com/poem-of-sudama-pandey-dhumil/> 18 march 2019
5. <https://www.orfonline.org/hindi/research/> ठेके-खेती-किसान, 30 नवंबर 2017 समय- 7:13pm
6. <http://sanjhivirasat.blogspot.com/2010/12/1965-1-2-1880-1886-3-18-1907.html>
7. <http://wwwldeshbandhulcolin/editorial/> जी-20 और वाशिंगटन-आम-राय-45669-2Reported by: Deshbandhu2009-04-09 20:31
8. <http://wwwlrachanakar.org/2015/12/blog-post66lhtml>
9. <https://doi.org/10.1080/03066150802681963>,Pages-557-620,
Published online: 10 Mar 2009
- 10.https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%A8%E0%A4%AF%E0%A5%80_%E0%A4%86%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A5%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%A8%E0%A5%80%E0%A4%A4%E0%A4%BF_%E0%A5%A7%E0%A5%AF%E0%A5%AF%E0%A5%A7
अन्तिम परिवर्तन 01:53, 15 जून 2020
11. <https://hindi.indiawaterportal.org/node/36432> 11-02-2011, 13: 44
12. <https://hindi.indiawaterportal.org/node/36432>, 11-02-2011, 13: 44
13. <https://hindi.mapsofindia.com/my-india/india/paramparagat-krisi-vikas-yojana> 2 Nov 2017

14. <https://hindilgoodreturnslin/personal-finance/2017/07/by-12-scheme-narendra-modi-farmer-can-be-increase-their-inco-002070lhtml>
15. https://kavitakosh.org/kk/अकाल_और_उसके_बाद_/_नागार्जुन 9जुलाई 2013, समय 9 : 39 बजे
16. https://kavitakosh.org/kk/तुम्हारी_फाइलों_में_गाँव_का_मौसम_गुलाबी_है_/_अदम_गोंडवी, 4 नवम्बर-2019 , 0 : 11 बजे
17. <https://solldulaclin/mod/book/viewlphp?id=2465&chapterid=1765>,
18. <https://web.sas.upenn.edu/business-hindi/module-12c-2/>
19. <https://www.jagran.com/bihar/katihar-13225960.html>, 28Nov 2015, 07:15PM
20. <https://www.researchgate.net/publication/312587453> January 2012 ,Publisher-george Ritzer
21. <https://www.scotbuzz.org/2019/03/udarvad.html?showComment=1587902924282#c357408104782645535> date-26april 2020 time-17:38
22. https://www.youtube.com/watch?v=hSikiC5x51o&ab_channel=PunyaPrasunBajpai
23. Keskin 2009. "Book Review of A Brief History of Neoliberalism." Societies Without Borders 4 (1): 94-95.

परिशिष्ट (साक्षात्कार)

उत्तर भारतीय सीमान्त किसान 'धर्मेन्द्र यादव' से शोध छात्र 'इंद्रदेव शर्मा' की बात-चीत

प्रश्न-1- आप खेती-किसानी का काम कब से कर रहे हैं ?

किसान – अरे ! भई हम जब से पैदा नहीं भएँ तब से खेती करित है यानी खेती-किसानी का काम तो मैं जब से पैदा नहीं हुआ था तब से ही खेती कर रहा हूँ। जैसे कि पिता जी किसान हैं वो खेती से जुड़े हैं और खेती का काम कर भी रहे हैं। मेरा कहने का मतलब यह है कि मुझे परंपरागत रूप से यह कार्य करने को प्राप्त हुआ है। मेरे पिता जी किसानों का काम करते ही हैं। बचपन से ही खेती करते देखते आ रहा हूँ। किसान परिवार में पैदा होने के कारण पूरा का पूरा माहौल खेती किसानों का ही था। पढ़ाई के साथ-साथ अक्सर खेतों में आना जाना लगा रहता ही था। इसलिए सामाजिक और पारिवारिक परिवेश खेती-किसानी का ही था। संयुक्त परिवार में पैदा होने के कारण दिनोदिन यह जिम्मेदारी मुझ पर बढ़ती गई क्योंकि मैं अपने परिवार में पिता जी के बाद सबसे बड़ा सदस्य जो ठहरा।

प्रश्न-2- आप युवा सोच के किसान हैं जिसे मैं युवा किसान कहूँगा, मैं यह जानना चाहता हूँ कि पारंपरिक खेती और आज की खेती में क्या बदलाव आया है ?

किसान - बदलाव देखा जाय तो बहुत कुछ हुआ है। पहले की अपेक्षा अच्छा भी है और इस समय की जो मुख्य समस्याएँ हैं – वह कि लागत मूल्य खेती का बढ़ गया है। लागत मूल्य जैसे रासायनिक उर्वरक आप जानते ही हैं कि हर वस्तुओं के दाम बढ़ चुका है और जो उत्पादन किसान को मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा है, वातावरण इतना प्रदूषित हो गया है उस वजह से जो किसान को प्रोडक्सन मिलना चाहिए वह नहीं मिल पा रहा है जो मिला सो मिला, उसके बाद मार्केट वैल्यू नहीं मिल पाती है। मतलब किसान जो अपना मूलधन लगाता है जिसे लागत मूल्य कहते हैं। जिसे इन्वेस्ट करता है, किसान को यह भरोसा नहीं है कि मैं जो लागत लगा रहा हूँ वह

मुझे वापस मिलेगा या नहीं ? उस लागत की कोई सिक्योरिटी नहीं है । जो इस समय के किसानों की सबसे बड़ी समस्या है । किसी भी फसल को किसान जो उत्पादित करता है वह निहित नहीं है । जितनी लागत लगा कर वह पैदा करता है उसका दाम नहीं मिल पाता है । तो उस समय वह अपने आप को बड़ा मायूस और ठगा ठगा-सा महसूस करता है ।

प्रश्न-3- आपके पास जो भी 6 एकड़ या 8 एकड़ जमीन है उससे पैदा किए गए अन्न से आपका पारिवारिक जीवन-यापन चल पाता है या नहीं ?

किसान - देखिए अगर खेती से देखा जाय तो आदमी सोचे की अच्छे से कपडे पहन ले , अच्छे से बच्चों की शिक्षा-दीक्षा करा दे, उसकी सारी व्यवस्था कर दे , तो आज के माहौल में इन सुविधाओं को पूरा करना संभव ही नहीं है । किसान और उसका परिवार सुकून से दो वक्त की रोटी ही खा ले यही बहुत बड़ी बात है । यानी समस्या ही समस्या है या यह कहिए बहुत ही जटिल समस्या है । भई कोई किसान जब अपनी फसल को उगाता है । जो दाम उसे मिलना चाहिए वह मिलता नहीं है । उसे मनमाने ढंग से व्यापारी खरीदता है और जो किसान पैदा करके व्यापारी को बेचता है, वह उस फसल को औने-पीने दाम से मजबूरी वश उसे बेचना पड़ता है और बाद में जो कोई लेता है तो जितना किसान परेशान होकर फसल पैदा करता है । फसल उत्पादित करने में जितना समय लगाता है, उससे अच्छे तो वे बिचौलिए हैं जो बहुत कम समय में एक-दो दिन या एक घंटे में ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमा लेते हैं । हम किसान से अच्छी जिंदगी तो उन बिचौलियों की है जो किसान से कम मेहनत करने पर भी ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाते हैं और मजे में रहते हैं । किसान तो बस किसी तरह अपनी जिंदगी काट रहा है ।

प्रश्न-4 एक समय ऐसा आता है कि बीज के दाम महंगे रहते हैं और किसानों को इनकी रोपाई में बड़ी परेशानी रहती है इसके लिए उसे कर्ज भी लेना पड़ता है । किसान कर्जदार हो जाता है । लेकिन जैसे ही फसल या सब्जी तैयार हुई । स्थिति यह हो जाती है कि फसल को मंडी तक ले

जाने की अपेक्षा किसी तालाब या गड्ढे में फेंकना उचित समझते हैं किस कारण से ऐसा हो रहा है ?

किसान – देखिए उस समय की स्थिति यह हो जाती है कि उस फसल की जो वैल्यू है, उसका जो रेट मिलना चाहिए वह नहीं मिलता है . 10 रुपये की लागत लगी है। उसे 10 रुपये तो क्या 8 रुपये भी मिलता संभव नहीं दिख रहा होता है। यह उस समय की सबसे बड़ी समस्या है यानि किसान जितना लगाता है उसे उतना भी मिलना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए मंडी में ले जाने से अच्छा उसे तालाबों या खेतों में फेंकना अच्छा समझता है। जिसके लिए सरकार को बहुत कुछ करना चाहिए परन्तु नहीं कर रही है। भई अभी कुछ समय पहले वर्तमान प्रधानमंत्री ‘नरेंद्र मोदी’ जी किसानों की आय दोगुना करने की बात कह रहे हैं या भविष्य में करेंगे। कैसे करेंगे वह बाद की बात है। वो राजनीतिक फंडे हैं। सबसे पहले यह है कि किसानों की वैल्यू निर्धारित हो जाय। जैसे मान लीजिए गेहूँ का उत्पादन हो रहा है, उसकी लागत मूल्य देखी जाय, एक हेक्टेयर या एक बीघे में कितनी लागत आ रही है और उसका उत्पादन कितना हो रहा है तथा बाजार में उसकी विक्रीदर क्या है ? जो बाजार में बिक रहा है। क्या उसे बेचकर किसान को लागत मूल्य मिल रहा है। वह अपना जीवकोपार्जन कर पा रहा है इसको भी सरकार को अमल करने की जरूरत है।

प्रश्न-5—दिनोंदिन बढ़ती महँगाई जो केवल किसान की ही नहीं बल्कि आमजन की भी सबसे बड़ी समस्या है इससे किसानों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

किसान – आज के इस समय में जो ये महँगाई है, महँगाई की मार तो सभी झेलते हैं। लेकिन कोई भी सरकारी कर्मचारी है उसका एक निहित वेतन होता है। उसको समय से वेतन मिलता है लेकिन जो किसान है, किसान की स्थिति इतनी दयनीय होती जा रही है कि उसके अपने फसल का उचित दाम न मिल पाना और रही सही बात प्रकृति से भी उसका काफी नुकसान हो रहा है।

जैसे-आंधी, तूफान। मौसम इनता बदल गया है, फसलों में इतने ज्यादा रोग लग रहे हैं उससे बचाने के लिए दवा के लिए आदि के लिए किसान जो लागत लगाता है तो उससे किसान का हार्मेट (शोषण) ही हो रहा है। कुल मिलाकर उसे जीवन यापन करने के लिए मजबूरन खेती करना पड़ रहा है। बाकी आज के समय में किसान शौक से खेती नहीं करना चाहता है। आधुनिक युग में जो युवा पीढ़ी है, खेती का वाजिब दाम और उचित मूल्य न मिलने के कारण, उसके खर्चे न पूरा हो पाना, कोई भी युवा पीढ़ी खेती नहीं करना चाहती है। वह अपने जीवन-यापन करने के लिए पलायन करता है। कोई अरब जाता है तो कोई दिल्ली, बम्बई भागता है और वहां जाकर काम करता है क्योंकि वह 10 हजार प्रति माह की नौकरी कर लेगा मगर खेती करना नहीं पसंद करता है। खेती की यह दयनीय स्थिति हो गई है कि 10 बीघे का किसान 10 हजार की नौकरी करना ज्यादा पसंद करता है क्योंकि 10 बीघे वाला किसान अपने बच्चों को सरकारी प्राइमरी के अलावा किसी प्राइवेट स्कूलों में शिक्षा नहीं दे सकता है। आज की युवा पीढ़ी खेती करने के लिए तैयार ही नहीं है। प्रकृति की भी मार उसे झेलनी पड़ती है। सारा कुछ तो किसानों को ही झेलना पड़ता है तो इस कारण से किसानों को कोई लाभ नहीं हो पा रहा है कि वह सही तरीके से जीवन-यापन कर ले।

प्रश्न-6—हाइब्रिड जैसे विदेशी बीजों और रासायनिक खादों के प्रयोग से फसलों और खेतों में क्या प्रभाव पड़ा है ?

किसान —हाइब्रिड बीज के प्रयोग से उत्पादन बहुत बढ़ा है। लेकिन देखा जाय तो हाइब्रिड बीज किसान को जो मिलता है वह बहुत महंगा होता है। देशी बीज की अपेक्षा यह बीज 10-12 गुना ज्यादा महंगा पड़ता है और हाइब्रिड बीजों से फसलों का उत्पादन एक ही बार होता है। देशी बीज किसान एक साल, दो साल या चार साल तक प्रयोग में ला सकता है लेकिन हाइब्रिड एक ऐसा बीज है जो कि जब नया बीज आएगा अभी उत्पादन देगा अन्यथा नहीं। दुबारा इस बीज का

प्रयोग नहीं कर सकते, किसी तरह अगर बोया भी जाता है तो उत्पादन नहीं देगा। महंगा बीज होने की वजह से सामान्य किसान इसका प्रयोग नहीं कर सकता है। देखिए विदेशी जो बीज हैं जो हाइब्रिड बीजों का प्रयोग किया जाता है उसे प्रोडक्सन तो मिलता है लेकिन रासायनिक खादों का जो अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है उससे हमारी भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण हो रही है पूरी तरह नष्ट हो रही है। प्रत्येक वर्ष जैसे खेत में 10 किलो यूरिया डालना है तो अगले वर्ष उसे 12 किलो यूरिया डालना पड़ता है यदि 12 किलो यूरिया नहीं डालते हैं तो ये हाइब्रिड बीज से उत्पादन अच्छी तरह से नहीं हो पा रहा है। इसका असर जो पड़ रहा है, उसे जो लाभ मिलना है वह उसी पर डिपेंड हो रहा है। मतलब लागत बढ़ रही है और लाभ उसको नहीं मिल पा रहा है। तरह-तरह की बीमारियाँ हो रहीं हैं उसका वह निस्तारण करता है तो बार-बार उसको रासायनिक उर्वरकों का छिड़काव करना पड़ता है।

इतनी महंगी-महंगी दवाएं आती हैं। तो वही प्वाइंट आता है कि किसान को जो फायदा मिलना चाहिए वह नहीं मिल पा रहा है। संकर बीजों के प्रयोग से बदलाव तो आया इसमें कोई संदेह नहीं है। पहले 10 कुंटल पैदा करते थे 2000 लागत लगाते थे। 1000 कुन्टल बेचते थे 10000 रुपये सूल होता था। आज की स्थिति यह है कि हाइब्रिड बीजों का इस्तेमाल करके 15 कुन्टल या 18 कुन्टल या 20 कुन्तल तो पैदा कर लेते हैं। लेकिन जहाँ वह दो हजार रुपये खर्च करके 10 कुंतल किसान पैदा करता था तो आज उसकी लागत 10 हजार रुपये हो गई है। तो जो आज किसान को लाभ मिल रहा है वह तो पहले से कम है। जो लाभ किसान पहले कम उत्पादन करके लाभ प्राप्त करता था आज वह ज्यादा उत्पादन करके भी नहीं लाभ पा रहा है। तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मजबूरन पलायन कर रहा है। यही स्थिति सामने आ रही है जो बहुत चिंता का विषय है।

प्रश्न-7- आप जैसे उत्तर भारतीय किसान एक वर्ष में कितने प्रकार की फसलों का उत्पादन करते हैं ?

किसान – जहाँ तक फसलों के उत्पादन की बात की जाय तो उत्तर भारत में मुख्यतः गेहूँ और चावल दो ही तरह की फसलों का उत्पादन होता है। कुछ सब्जियों की पैदावार भी होता है लेकिन सब्जी सभी किसान नहीं उत्पादित कर पाते। कुछ ही किसान करते हैं क्योंकि सिंचाई की सुविधाएँ सभी किसानों के पास नहीं है। फलों में हमारे यहाँ केला की खेती होती है। केले की खेती भी सब लोग नहीं करते हैं क्योंकि यह बहुत महँगी होती है। उसकी लागत पचास हजार प्रति बीघा होती है। और प्राकृतिक आपदा से भी इसमें बहुत बड़ा खतरा रहता है। 15 या 16 महीने की खेती होती है और केवल एक ही फल देता है। यह जग जाहिर है कि इस समय तो आंधी-तूफान के साथ खुले में छुट्टा घूमते जानवर(गाय) बहुत खतरनाक साबित हो रहे हैं। इससे बचने के लिए सरकार जो कदम उठा रही है वह भी खोखला साबित होता नजर आ रहा है। सिर्फ फोटो खिंचवाने के लिए बाड़े बनवाये जा रहे हैं। मान लीजिये इस बाड़े में कुछ जानवर इकट्ठा भी गए हो किसान को कोई खास फायदा नहीं होने वाला है। एक हजार जानवर खुले में घूम रहा है तो उससे कोई विशेष लाभ किसानों को नहीं मिलने वाला है।

प्रश्न-8- आज कल सरकार किसानों को ज्यादा से ज्यादा जैविक खादों के प्रयोग पर बल दे रही है। इसके प्रयोग से आप जैसे किसानों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

किसान- जैविक खादों का प्रयोग करना अच्छी बात है। सरकार इसके लिए जो पहल की है वह बहुत अच्छा है लेकिन समस्या तो वही खड़ी होती है। जैविक जो खाद है, उसके भी दाम आप देखिए चार किलो की जैविक खाद की जो पैकेट आता है उसका दाम 500 रुपये या 600 रुपये है अब किसान केवल जैविक खादों का प्रयोग करके फसल उत्पादन करता है तो संभव नहीं है कि वह उतना प्रोडक्सन(उत्पादन) पाएगा। इसके लिए सरकार को किसान जागरूकता अभियान

चलाना चाहिए। कर्मचारी लोग गाँव में जाएँ, उनको बताएं कि जो पशुपालक है, पशुओं के गोबर द्वारा जो खाद तैयार जाती है उसके लिए सरकार सुविधाएँ प्रदान करे और बीच-बीच में लोगों को बताया जाय। देशी खाद का प्रयोग ज्यादा किया जाय रासायनिक खादों का प्रयोग कम किया जाय। लेकिन रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग का लोग इतना आदी हो चुके हैं कि आज के समय में हमारी धरती पर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग इतना अंधाधुंध हो रहा है कि अब खेतों में जो खुराक एक बार दे दिए हैं तो दुबारा अगर उस फसल को वह खुराक नहीं मिलती है तो वह उत्पादन उसको नहीं मिल पायेगा। मेरे विचार से यह योजना तभी सफल हो सकती है जब जैविक खादों के दामों में कमी आये। रासायनिक उर्वरक से जैविक खाद महँगी है। अगर उस खाद का मूल्य कम किया जाय तो किसान उसके बारे में सोच सकता है। किसान को तो अपना जीवन चलाने को लगी है, अपना परिवार चलाने को लगी है।

प्रश्न-9- यह कहा जाता है कि भारत गाँवों का देश है और किसान को भारत की आत्मा कहा जाता है। आज स्थिति यह हो गई है कि भारत की आत्मा तड़प रही है या मर रही है। इसके पीछे सिंचाई की असुविधा एक बड़ा कारण बताया जा रहा है। बहुत सारे किसान आज भी वर्षा पर ही निर्भर हैं। इसके बारे में आप क्या कहना चाहते हैं ?

किसान - देखिए हमारे इलाके में सबसे बड़ी समस्या नलकूप की है, पर्याप्त मात्रा में नलकूप नहीं हैं यानी जितनी संख्या में होना चाहिए नहीं है जिससे कि किसानों को समय पर पानी मिल सके जो सबसे बड़ी समस्या है। इससे बड़ी समस्या बिजली की है। बिजली जो मिलना चाहिए वो नहीं मिल पा रही है। इसकी वजह से किसानों की फसलों की सही समय पर सिंचाई नहीं हो पाती है। आये दिन कोई न कोई फसल सूख ही जाती है तो सरकार को ट्यूबेल की व्यवस्था करनी चाहिए ताकि किसानों को सही समय पर पानी मिल सके और सस्ते दाम में सिंचाई कर पाएगा, जब सस्ते दाम में सिंचाई करेगा तो उससे उसे कुछ बचत होगी। प्राइवेट ट्यूबेल की लागत बहुत

ज्यादा है जो ट्यूबेल के मालिक हैं उनकी भी एक मजबूरी है कि सस्ते दाम में किसानों को पानी नहीं दे पाते हैं। आज से चार साल पहले जो 10 किलोवाट का समर सेबल चलता था उसकी 700 या 800 रुपये महीने की बिजली का बिल आती थी आज वह 2 हजार रुपये महीने का बिल दे रहा है। बिजली भी पूरी नहीं मिल पाती है। तो कहीं न कहीं इसमें सरकार का बहुत बड़ा हाथ है। अगर सरकार चाहे तो इसका निस्तारण हो सकता है।

प्रश्न-10- इस महंगाई के दौर में खेती की समस्याओं के साथ एक किसान के परिवार में कई समस्याएं रहती हैं जैसे बच्चों का पढ़ना, लिखना तथा तमाम बीमारियों से बचना इन सबों का खर्च क्या खेती से पूरा हो जाता है या फिर खेती के अलावा आप और भी कोई व्यवसाय करते हैं ?

किसान - भई खेती के बलबूते इन सारी समस्याओं का तो समाधान कतई संभव नहीं है तो साइडविजनेस के तौर पर कोई धंधा करने के लिए सोचता है जैसे-पशुपालन, मुर्गीपालन और मत्स्यपालन। पशुपालन भी खेती के साथ ठीक है लेकिन समस्या वही आती है की मान लो कोई किसान 10 जानवर पालता है एक भैस की कीमत अमूमन 30-70 हजार तक है। इसके साथ कई तरह की बीमारियाँ हैं उसके चपेट में आकर 2-3 मर जाती हैं तो किसान कर्जदार हो जाता है और किसान जो दूध का उत्पादन करता है उस दूध की कीमत नहीं मिल रही है। तो सबसे मूल समस्या होती है कि उसके उत्पादन का लागत मूल्य न मिल पाना। हालाँकि सरकार पशुधन बीमा योजना तो चला रही है लेकिन गरीब किसान इसका फायदा नहीं उठा पाता है। सबसे गंभीर समस्या यही है कि किसान उत्पादन तो किसी तरह कर लेता है चाहे वह कृषि से हो या पशुपालन दूध का उत्पादन करता है लेकिन उसे उसका वैल्यू मिल जाय तो किसान का जीवन खुशहाल हो जाय।

प्रश्न-11 आपने जब से खेती का कार्य भार संभाला है तब से लेकर अभी तक कृषि कार्यों में क्या बदलाव दिखाई दे रहा है ? हालाँकि सरकार समय-समय पर कृषि सुधार संबंधी योजनाएँ बनाती

है परन्तु इसका लाभ निम्न स्तर के किसानों को नहीं मिल पाता है ? इसके सम्बन्ध में आप क्या कहना चाहते हैं ?

किसान- देखा जाय तो किसानों के पहले का और आज का जीवन में कोई विशेष अंतर नहीं समझ में आ रहा है। वह अपनी समस्याओं की जद्दोजहद में जूझ रहा है। कल जो समस्याएं थी आज वह कहीं जटिल हैं। पहले की समस्या क्या थी ? पहले समस्या इतनी नहीं थी। लोगों को आसानी से मजदूर मिल जाते थे। सबसे बड़ी समस्या आज यह है कि खेतों में काम करने के लिए मजदूर नहीं मिल रहे हैं। किसी फसल की निराई-गुड़ाई करवाना है। पहले लोग गांवों में काम करते थे आज बाहर पलायन कर रहे हैं। मजदूर किसानों का बड़ी संख्या में पलायन शहरों की ओर हो रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण गांवों में फैली भुखमरी और गरीबी है। भाई मजदूरी बढ़ी है। उनकी भी अपनी आवश्यकताएं हैं लेकिन समस्या यह है कि समय से काम नहीं हो पाता है। पहले लोग ज्यादा मिलते थे काम भी ज्यादा होता था। धीरे-धीरे लोगों में जो सामूहिकता थी वह समाप्त होती जा रही है। नए-नए उपकरणों से खेती होने से उत्पादन में तो बढ़ोत्तरी हुई है इसमें कोई संदेह नहीं है। उत्पादन में बढ़ोत्तरी तो मिली है लेकिन उत्पादन की जो बढ़ोत्तरी हुई है। पहले जो लागत मूल्य 10 रुपये था वह आज लागत मूल्य 100 रुपये हो गया है। इस बढ़ोत्तरी से अगर आंकलन किया जाय तो ऐसा नहीं लगता कि बढ़ोत्तरी प्लस प्वाइंट है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि बढ़ोत्तरी न के बराबर हुई है क्योंकि लागत मूल्य 10 गुना बढ़ा है। जो किसान को शुद्ध लाभ मिलता था। पहले मान लीजिये कि 10 कुन्टल पैदावार होती थी तो उसमें लागत दो हजार रुपये थी या तीन हजार रुपये थी औसतन जो भी थी आज उसकी लागत मूल्य बढ़ गई है। इसके बढ़ जाने से जो प्रोडक्सन बढ़ा है वह कहीं घाटे में हो रहा है।

प्रश्न-12- दूसरे वस्तुओं की बढ़ती महँगाई की अपेक्षा किसानों द्वारा उत्पादित अनाज या सब्जी की महँगाई में कितनी समानता और असमानता है ?

किसान- किसानों की लागत मूल्य में तो बढ़ोत्तरी हुई है। रासायनिक खादों के दामों में जैसे-जिंक या डी० ए०पी० वगैरह के दामों में बहुत वृद्धि हुई है। आज से 10 वर्ष पहले D A P 500 रुपये में एक पैकेट मिल जाती थी। 10 वर्ष के बीच में अगर देखा जाय तो वही D A P अब 1500 रुपये में मिलती है। D A P जब 500 में मिलती थी तो उस समय मानकर चलिए कि एक हजार रुपये कुंटल गेहूँ बिकता था। आज 1500 की खाद हो गई तो वही गेहूँ दो हजार रुपये कुंटल हो गया है। मतलब लागत तो हमारी तीन गुना हो गई है लेकिन हमारी फसल का दाम दो गुना भी नहीं हुआ है। सरकार के उठाये गए कदमों से उत्पादकता तो बढ़ी है। जनसंख्या इतनी ज्यादा बढ़ी है कि यदि उत्पादकता नहीं बढ़ेगी तो लोगों को खाने के लिए नहीं मिलेगा। इसके साथ-साथ सरकार को यह सोचना चाहिए की किसान की लागत मूल्य को भी कम करे। सरकारी कर्मचारियों का तो वेतन आयोग लगा लगा कर उनके वेतनों को बढ़ा दिया जाता है लेकिन उस हिसाब से किसानों द्वारा उत्पादित की गई फसलों में वृद्धि नहीं हुई है। जो होनी चाहिए थी। जैसे हर साल सरकारी कर्मचारियों को 5-5 वर्ष में वेतन आयोग बनाकर उनका वेतन बढ़ाया जाता है। उसी प्रकार सराकर एक नियम बनाये कि गेहूँ या चावल में भी वृद्धि हो। तभी कुछ सुधार हो सकता है। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। जब चुनाव की सरगर्मी चढ़ती है तो सरकार किसान को लालायित करके थोड़ा-सा दाम बढ़ा देती है और किसानों को बड़े-बड़े सपने दिखाती है। जैसे ही सरकारें बन जाती है, सत्ता में आते ही सरकार किसानों को भूल जाती है।

प्रश्न-13- वर्तमान सरकार कर्जमाफ़ी और किसानों को प्रति माह भत्ता दे रही है। इससे किसानों के जीवन में क्या प्रभाव पड़ेगा ?

किसान- सरकार किसानों को जो भत्ता दे रही है। वह एक वोट लेने का माध्यम है। बाकी कुछ भी नहीं है ? इससे किसानों को कोई लाभ नहीं होने वाला है, सभी किसानों को यह सुविधाएँ मिल भी नहीं पा रही हैं। 100 में से 20-25 किसान को मिल गया तो मिल गया। 80 प्रतिशत

लोग तो इससे वंचित रह जाते हैं। महीने में यदि 2000 रुपये सरकार देती है तो कुछ नहीं होने वाला है। ये चुनावी जुमले बाजी है और कुछ नहीं? मान लीजिये एक किसान को 2000 रुपये दे भी दिए हैं तो उसके घर में गैस सिलेंडर है तो उसकी कीमत आज एक हजार हो गई है जहाँ पहले 400 रुपये में गैस मिलती थी वही आज 900 रुपये में मिल रहा है। किसान को सरकार दो हजार रुपये नहीं दे रही है बल्कि 5000 रुपये ले रही है। सरकार खादों का दाम बढ़ा रही है, पेट्रोल-डीजल का दाम बढ़ा रही है। जिससे किसान फसलों की सिंचाई करता है। इससे किसान का कुछ भला होने वाला नहीं है। इससे अच्छा तो यह है कि सरकार 2000 रुपये के बदले किसानों को समय से बीज दे दे। अगर बीज मिलता भी है तो समय से मिले। यह एक लाभ का तरीका हो सकता है। शायद यह संभव नहीं है।

प्रश्न – वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या किसान आत्महत्या की है। जो सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती भी है कि इन आत्महत्याओं पर कैसे रोक लगाई जाय इसके बारे में आप क्या कहना चाहते हैं?

किसान- कोई भी व्यक्ति आत्महत्या क्यों करता है? उसे शौक नहीं होता है? वह कर्ज को न चुकाने और अपनी इज्जत और आबरू बचाने के लिए ऐसा कदम उठाता है। किसान मजबूर होकर आत्महत्या करता है। उसके सामने खेती-किसानी की समस्याओं के अलावा परिवार की भी समस्याओं का एक बड़ा-सा अम्बार होता है। भौगोलिक विविधता के अनुसार किसानों की आत्महत्या करने के कारण भिन्न हो सकते हैं लेकिन इसके मूल में 'कर्ज' है। भारतीय किसान कर्ज में इतना फँसा हुआ है कि वह अपना जीवन समाप्त कर रहा है। किसान आत्महत्या के कई कारण हैं जैसे- प्राकृतिक आपदा आना, फसलों के तैयार होने पर उनके दाम घट जाना, सिंचाई की समुचित व्यवस्था न होना, दिनोंदिन महँगाई का बढ़ना और किसानों द्वारा उत्पादित फसलों का वाजिब दाम न मिलना इत्यादि। 'राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो' के अनुसार देश में लगभग

65 किसान प्रतिदिन आत्महत्या करते हैं। अनेकों कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन के बावजूद भी किसान आत्महत्या नहीं रुक रही है। यह नीति निर्माताओं और सरकार के समक्ष चुनौती भरा सवाल है। किसान आत्महत्या कैसे समाप्त हो इसके लिए सरकार को चाहिए की जितनी भी योजनाएँ चलाई जा रही है उसका सही तरह से क्रियान्वयन किया जाए, सामान्य किसान तक इन योजनाओं के बारे में बताया जाय तथा किसानों के कर्ज के कारणों को पता लगाकर उसे समाप्त किया जाय। तभी किसान आत्महत्या को रोका जा सकता है।

अपनी माटी APNI MAATI

India's Leading Hindi E-Magazine भारत की प्रसिद्ध साहित्यिक ई-पत्रिका (ISSN 2322-0724 Apni Maati)

सिद्धि लिखें अपने शिवा किसान विमर्श जातचीत हकी विमर्श अद्वितीय विमर्श दलित विमर्श लहानी कविता समीक्षा इच्छा की

संघीयता रचना

आलेख: सोशल मीडिया का बढ़ता साम्राज्य और हिन्दी पत्रकारिता/ डॉ. मनीष गोहिल

अनुक्रमिका: अपनी माटी ई-पत्रिका व

Home * 25 * आलेख * किसान विमर्श * किसान विशेषांक * डॉ.अभिषेक रंशन * प्रो.गजेन्द्र पाठक * शोध * किसान जीवन के संघर्षों की त्रिवेणी/इन्द्रदेव शर्मा

किसान जीवन के संघर्षों की त्रिवेणी/इन्द्रदेव शर्मा

□ 25, आलेख, किसान विमर्श, किसान विशेषांक, डॉ.अभिषेक रंशन, प्रो.गजेन्द्र पाठक, शोध,

त्रैमासिक ई-पत्रिका

अपनी माटी

(ISSN 2322-0724 Apni Maati)

वर्ष-4,अंक-25 (अप्रैल-सितम्बर, 2017)

किसान विशेषांक

किसान जीवन के संघर्षों की त्रिवेणी/इन्द्रदेव शर्मा

हिंदी साहित्य में गद्य की विभिन्न विधाओं के साथ ही उपन्यास विधा का भी आरम्भ आधुनिक काल अर्थात् भारतेंदु युग से माना जाता है। समय-समय पर उपन्यासकार भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का चित्रण उपन्यास में करते रहे हैं। हिंदी उपन्यास के इतिहास में जहाँ तक किसानों की दयनीय स्थिति, कर्ज की समस्या तथा किसानों के प्रति हो रहे शोषण की अभिव्यक्ति का प्रश्न है तो मुंशी प्रेमचन्द का नाम लिया जाता है। इन्होंने अपने उपन्यास 'गोदान' और 'प्रेमश्रम' में सामन्ती और महाजनी व्यवस्था का शिकार किसानों की दयनीय स्थितियों का चित्रण किया है। मध्यकालीन सामाजिक संरचना में लगान वसूली, नजराना, अब्दाब, हारी बेगारी के शोषणकारी मुद्दे का चित्रण किया गया है। हालांकि प्रेमचन्द से पहले भी किसानों को केंद्र बनाकर लिखा गया पर कथा साहित्य में नहीं बल्कि कविता जैसी विधाओं में। कबीरदास और तुलसीदास जैसे भक्तिकालीन कवियों में अपनी कविता में किसानों की स्थिति को बयां किया है। इस त्रिवेणी में मैंने तीन बहुचर्चित उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द, संजीव और पंकज सुबीर का चयन किया है। इनके उपन्यास क्रमशः 'गोदान', 'फाँस' और 'अकाल' में उत्सव है।

साहित्य समाज को देखने का एक अच्छा जरिया है। जिस समय प्रेमचन्द 'गोदान' और 'प्रेमश्रम' उपन्यास लिख रहे थे उस समय भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था। किसान सामन्ती और जमींदारी तथा महाजनी जैसी कुच्यवस्थाओं से जुड़ा रहा था। समाज में घटित होने वाली घटनाओं का प्रभाव लेखक पर पड़ना स्वाभाविक था। अगम तौर पर प्रेमचन्द को किसानों का कथाकार कहा जाता है और गोदान भारतीय किसानों के जीवन का महाकाव्य। हिंदी साहित्य में औपन्यासिक क्षेत्र में पहली बार ऐसा हुआ था जब प्रेमचन्द ने किसी किसान को नायक बनाकर उपन्यास लिखा तथा किसानों की दयनीय स्थिति को हृदय-हृ अभिव्यक्त किया है। खैर जो भी हो किसानों के प्रति हो रहे अन्याय, शोषण, सुदखोरो द्वारा बेरहमी में इन पर किया गया अत्याचार और किसान किस तरह अपने ही खेतों में मजदूर बन जाता है इन सभी का चित्रण प्रेमचन्द से ही प्रारम्भ होता है।

www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_18.html

हमारा ताज़ा अंक



ट्विटर-ट्विटर

Tweets by @ApniMaati

Apni Maati
@ApniMaati
#MahendraNandkis
कवितायेPoetry

टाइटल जरूरी कविताएँ
नंदकिशोर।
श्री. जरूरी कविताएँ
लिंक:youtu.be/1T2N

वाकी आनंद। शुक्रिया।
YouTuber Team@A
(Like,Share & Subs

1/9

9/9/2019

किसान जीवन के संघर्षों की त्रिवेणी/इन्द्रदेव शर्मा - अपनी माटी Apni Maati

आज का भारत प्रेमचन्द के भारत से काफी बदला है। मनुष्य अब उतना और वसा सामाजिक नहीं रहा जैसा पहले था। समाज में आये इन परिवर्तनों का असर उपन्यासकारों के लेखन में भी दिखाई देता है। नब्बे दशक में भारत सरकार द्वारा लागू की गई नई आर्थिक नीति (1991) अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारतीय समाज के निम्न तबके से उच्च तबको तक एक परिवर्तन दिखाई दिया और किसानों के जीवन शैली में भी कुछ बदलाव दिखाई दिया। एक वैश्विक ग्राम या बाजारवाद का प्रभाव समाज में दिखाई दे रहा है। इसी समय उदारवाद और नव-उदारवाद का दौर आरम्भ होता है और किस तरह साहित्य लेखन में भी एक नई शैली पनपती है। कॉर्पोरेट कंपनियों का लगातार विस्तार हो रहा है। किसानों के उपजाऊ जमीनों को पूंजीपतियों द्वारा अपार्टमेंट में बदल जा रहा है।

सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति के संबंधन और विकास के लिए अर्थ(रूपया) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत कृषि प्रधान देश माना जाता है। आज भी सत्तर फीसदी लोग जीवन यापन के लिए कृषि को आधार बनाया है। समय की मांग के अनुसार कृषि के उत्पादन में परिवर्तन होना लाजमी है। इंग्लैंड से भारत तक का औद्योगिक क्रांति का सफर और भारत में हरित क्रांति होने से कृषि उत्पादन में काफी बदलाव आया है परन्तु किसान किसी न किसी रूप से शोषित और प्रताड़ित रहा है। जिसकी अभिव्यक्ति उपन्यासकारों ने की है। किसानों के संघर्षमय जीवन को केन्द्रीय बिंदु बनाकर प्रेमचन्द से कथाकार संजीव और पंकज सुबौर तक एक लम्बी परम्परा रही है।

प्रेमचन्द के 'गोदान' और 'प्रेमाश्रम' उपन्यास के बाद भगवानदास मोरवाल (नरक मसीहा), राजू शर्मा (हतफनामा), जगदीश गुप्त(कभी न छोड़े खेत), विवेकी राय(सोना माटी) कमलाकांत त्रिपाठी(बेदखल) तथा काशीनाथ सिंह (रैदन पर रघु), संजीव (फांस) और पंकज सुबौर का 'अकाल' में उत्सव। इन उपन्यासकारों में सामन्ती व्यवस्था, महजनी सभ्यता, जमींदारी प्रथा, जमीन चकबंदी, जमीन से बेदखली, भूमिहीन होना तथा बाजारवाद का साधारण किसानों की चकाचीध से बदलती संस्कृति, सरकारी बैंकों में कर्ज अदायगी न करने की समस्या तथा किसान आत्महत्या इन सारी समस्याओं को लेखक अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्ति दी है। किसान जीवन पर आधारित सभी उपन्यासों का चित्रण करना तो संभव नहीं है फिर भी कुछ प्रमुख उपन्यासों में अभिव्यक्त कृषकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक स्थिति तथा दयनीय और भयावह स्थिति को दिखाया जा रहा है। गोदान महाकव्य का नायक 'होरी' है जो खेतों में जोतोड़ मेहनत करने के बाद भी अपने परिवार वालों का भरण-पोषण बड़ी मुश्किल से कर पाता है। भारतीय समाज में व्याप्त सामंती और सुदखौरी जैसी कुव्यवस्थाओं का शिकार 'होरी' होता है। नजराना देने के बाद भी जब होरी रायसाहब के यहाँ बेगार करने जाता है तो मुन्गी कड़े शब्दों में विरोध करती है। फिर भी सामाजिक परंपरा में बंधा होरी उसकी एक नहीं मनाता। अंततः होरी अपने खेतों में काम करते-करते प्राण त्याग देता है। ऐसी स्थिति केवल एक होरी की ही नहीं है बल्कि कई होरी इस समाज में कर्ज भरा जीवन जी रहे हैं। गोदान उपन्यास किसान जीवन के अंदरूनी तह को परत-दर-परत खोलता है। किसानों से लगान इतना अधिक लिया जाता था कि इन पकितों से समझा जा सकता है -

अहा विचारे दुख के मरे निसिदिन पच पच मरे किसान।

जब अनाज उत्पन्न होय तब सब उठवा ले जाय लगान।। --- बालमुकुन्द गुप्त

'फांस' उपन्यास कथाकार संजीव द्वारा लिखित है जो महाराष्ट्र राज्य के विदर्भ क्षेत्र में निवास करने वाले किसानों के जीवन तथा उनके जीवन में आने वाली तमाम विनाशकारी समस्याओं पर आधारित है। यह उपन्यास सबका पेट भरने वाले और तन ढकने वाले देश के लाखों किसानों द्वारा किए जा रहे आत्महत्या पर केन्द्रित है। यह कहा जाता रहा है कि भारत किसानों का देश है और भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। यहाँ आधे से अधिक जनता कृषि पर निर्भर रहती है। विगत कुछ दशकों से इस देश में किसान आत्महत्या तेजी से हो रही है। परिस्थितिवश किसान लगातार आत्महत्या कर रहे हैं। जिस त्रिवेणी कि मैं बात करना चाहता हूँ। उसने तीन उपन्यास- गोदान, फांस और अकाल में उत्सव, तीनों उपन्यास आत्महत्या पर केन्द्रित हैं।

बहरहाल यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कथाकार संजीव का यह उपन्यास भारतीय कृषक समस्या की दारुण दशा पर केन्द्रित है।

'फांस' उपन्यास के माध्यम से संजीव ने उन सभी पहलुओं को दिखाने की कोशिश करते हैं जिन पहलुओं से केवल विदर्भ का किसान ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय किसानों को गुजरना पड़ रहा है। हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि किसान लगातार आत्महत्या कर रहा है पिछले कुछ वर्षों से सांपदायिक हिंसा की घटनाओं में जितने लोग मारे गए हैं उनकी तुलना में आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या कई गुना ज्यादा है। सरकार द्वारा कृषि नीति बनाने और आत्महत्या जैसी भीषण समस्या को समूल खत्म करने के बजाय सिर्फ आर्थिक पैकेज के दिखावटी टोटकों के सहारे आत्महत्या जैसी समस्या को जीवित रखते हुए कृषि व्यवसाय को लगातार हाशिए पर ढकेला जा रहा है।

उपन्यास की कथावस्तु के शुरुआत महाराष्ट्र के 'यवतमाल' जिले से होती है जो आधा वन है और आधा गाँव, एक ओर देखो तो जंगल दिखाई देता है दूसरी ओर पठार। वनगाँव का चित्र संजीव इस तरह खींचते हैं- "भला कोई कह सकता है कि सुछाड़ के ठनठनाते यवतमाल जिले के इस पुरबी छोर पर 'बनगाँव' जैसा कोई गाँव भी होगा जो आधा वन होगा, आधा गाँव, आधा गीला होगा, आधा सूखा। स्कूल में लड़के के साथ लड़कियाँ भी, जुए में मैसे के साथ बैल भी। जो भी होगा आधा-आधा।"

संजीव के इस उपन्यास में एक किसान की बुनियादी समस्याओं जैसे- बीज बोने से लेकर छाद-पानी तथा घर परिवार की आर्थिक समस्या या फिर उत्पादित की गई फसलों को बेचने की जैसी समस्याओं को देखते हुए सहज ही प्रेमचन्द का उपन्यास 'गोदान' के केन्द्रीय पात्र 'होरी' की आ जाती है। संजीव प्रेमचन्द की लेखन परम्परा को आगे बढ़ाने का काम करते हैं। जिस प्रकार 'गोदान' में प्रेमचन्द 'होरी' में माध्यम से भारतीय किसानों की दयनीय स्थिति को दिखाया है उसी तरह 'फांस' उपन्यास में संजीव ने 'शिव' के माध्यम से किसानों की बढहाली को दिखाया है। फाँस इतना है कि होरी खेतों में काम करते-करते अपना प्राण त्याग देता है अर्थात् प्रेमचन्द के यहाँ संघर्ष दिखाई देता है। वास्तव में प्रेमचंद ने होरी को संघर्ष करते हुए प्राण त्यागते हुए दिखाते हैं पर सच्चाई कुछ और ही है वह यह कि उस समय की सामाजिक व्यवस्था का शिकार होकर होरी आत्महत्या करता है।

www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_18.html



Apni Maati
@ApniMaati
#Postcard #Educational
#MahendraNandki
टाइटल: Post Card C
Shoes
श्री: Educational Inn
by Mahendra Nand
प्रिमियर समय: 11 am
लिंक: you. be/4nGt



Apni Maati
@ApniMaati
#GandhiFellowship
#ApniMaati
टाइटल: गुजरात में प्रा
भाई के अनुभव II
श्री: Interaction With
Fellowship
लिंक: you. be/4Mu4
वाणि आनंद। श्रुतिया।
YouTuber Team@A

YouTube @YouTul



Apni Maati
@ApniMaati
#MulaqaatWithMa
#DrSatyaNarayanV
"मेरा कोई गुरु नहीं रहा
हमीरमोद" को बिदयाधी
श्री: 'अध्यापक होने क
Interview by Dr. Raj
लिंक: you. be/4nGt

2/9

9/9/2019

किसान जीवन के संघर्षों की विवेणी/इन्द्रदेव शर्मा - अपनी माटी Apni Maati

'फॉस' उपन्यास में किसान आर्थिक समस्याओं का सामना करते-करते अंत में हताश और निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। संजीव का यह उपन्यास सामाजिक संरचना के तमाम जटिलताओं के बीच खेती किसानों की त्रासदी के हकीकतों को परत-दर-परत भेदते हुए समस्या और विकास के नाम पर जारी उपक्रमों की समीक्षा करता है। यह किसान जो कभी 'भारत की आत्मा' के नाम से जाना जाता रहा है वही आज अपनी गरीबी भरी जिंदगी से दूटकर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। यह आत्महत्या एक किसान की आत्महत्या नहीं है बल्कि यह किसानों की संस्कृति की हत्या है।

उपन्यास में एक पात्र शिव जब समस्याओं का सामना नहीं कर पाता और आत्महत्या कर लेता है तब उसके आत्महत्या को पात्र ठहराने के लिए घरवालों को काफी मशक्कत करनी पड़ती है यदि सरकारी कर्मचारी, विधायी, दलालों को कुछ नहीं मिलता तो आत्महत्या, आत्महत्या नहीं ठहराते। अंत में घरवालों को मुआवजा भी नहीं मिलता है।

कर्ज की जाल में फंस कर किसान आत्महत्या कर रहे हैं। बहुचर्चित उपन्यास फॉस को पढ़ते हुए ऐसा लग रहा है कि यह व्यवस्था किसानों के साथ छल कर रही है। बड़े जमींदारों, काश्तकारों तथा साधारण किसान और माध्यम वर्ग के किसानों का यही हाल है। महंगाई आकाश चूम रही है। पहले किसान फसल बोने के लिए अपने घर में ही रखे बीज का प्रयोग करते थे। उत्पादन की वृद्धि के लिए नए-नए बीजों प्रयोग तथा उर्वर शक्ति बढ़ाने के लिए नई-नई खादों जैसी सामग्री का प्रयोग किया जाने लगा जिससे खेतों की उर्वर शक्ति धीरे-धीरे समाप्त होती गई। परिस्थिति से मजबूर किसान कर्ज के लिए बैंकों या ग्रामीण स्तर के सूदखोरों का मदद लेने लगा। फसल अच्छी न होने से या सूखा, बाढ़ से किसान इन कर्ज को चुका नहीं पाता था। दिन प्रतिदिन कर्ज बढ़ता जाता इन्हीं समस्याओं की मकड़जाल में फंसकर किसान आत्महत्या कर रहा है।

विदेशी बीजों के प्रयोग से कर्ज तो बढ़ता ही था साथ ही साथ जमीन की उर्वर शक्ति भी नष्ट होती रही। बी. टी. काटन और सोयाबीन की खेती करने वाले किसानों ने सबसे ज्यादा इस त्रासदी के शिकार हुए। कापूस की खेती से परेशान होकर किसान इस प्रकार फसलों को बदलने की बात करते हैं- 'कापूस में क्या है ? आत्महत्या ! हमने तो ताई कापूस छोड़कर उस (ईंछ) की शेती (खेती) करने का निर्णय ले लिया है। आप बताओ सबको, सबका भला हो जाए। सिर्फ बताया ही नहीं, उत्साह में उसे सरपंच के घर तक लाकर ही दम लिया। सरपंच के यहाँ तीन धोतीधारी, दो पेट वाले चाय-पानी कर रहे थे। बीस-एक शेतकरी पहले से हाजिर थे।'

यह माना जाता है कि चीन दुनिया का सबसे ज्यादा कपास उत्पादन करने वाला देश है। पूरे विश्व में होने वाले कपास उत्पादन का एक चौथाई भाग भारत के हिस्से में आता है। विश्व पटल पर खासकर चीन की तुलना में कपास उत्पादन और किसानों की बढ़ती से संबंधित भारतीय आंकड़े चिंतनीय हैं। आखिर क्या कारण है कि इसी कपास की खेती करने वाला चीन लगातार समृद्ध होता जाता है और भारतीय किसान लगातार आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। कथाकार संजीव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस उपन्यास में कहीं विखराव नहीं दिखाई देता है। ये सिर्फ किसान समस्या या उसकी विडम्बना की ही बात नहीं करते बल्कि उसके समाधान का विकल्प भी प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यासों में किसान जीवन की अभिव्यक्ति की अगली कड़ी में पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' उपन्यास है जो गाँव और किसानों की संस्कृति का एक बहुत ही बेहतरीन उपन्यास है। किस प्रकार किसान महाजनी, सामंती व्यवस्था सूदखोरी और कर्ज के दलदल में फंसकर आत्महत्या करने पर विवश हो रहा है। पंकज सुबीर के इस उपन्यास को पढ़ते समय प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान और गबन की याद दिलाती है। दरअसल प्रेमचन्द के समय में किसान के समक्ष जो समस्याएँ थीं चाहे वह ऋण सम्बन्धी समस्याएँ हो या किसानों की बढ़ती सम्बन्धी अन्य समस्याएँ हो उसी कड़ी या परम्परा को उपन्यास जगत में आगे बढ़ाने का काम पंकज सुबीर ने किया है।

अकाल में उत्सव उपन्यास का शीर्षक जैसे ही मैंने देखा कुछ अजीब-सा लगा। पढ़ने के बाद मानूँ हुआ कि एक तरफ सरकारी फंड को सही समय में उपयोग करने के लिए सरकारी प्यादी द्वारा उत्सव मनाया जा रहा है और वहीं दूसरी तरफ 'सूखापानी' नामक गाँव के किसान आत्महत्या कर रहा है। इस उपन्यास में चित्रित गाँव 'सूखापानी' का एक अजीब नाम है। यानी किसान की फसल को अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही स्थिति में नुकसान है। किसान जीवन सम्बन्धी समस्याओं का केन्द्रीय विंदु बनाकर यद्यपि कई उपन्यास लिखे गए। किसी उपन्यास में जमीन बेटखली की समस्या तो किसी में काश्तकारों द्वारा किया जा रहा बेरहमी से शोषण। लेकिन कर्ज जैसी समस्याओं के वैशुमार मार से आत्महत्या करते किसान पर मेरे संज्ञान में अभी तक दो ही उपन्यास हैं एक है- कथाकार संजीव का उपन्यास 'फॉस' और दूसरा पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव'। इन दोनों उपन्यासों में कर्ज जैसी समस्या को किसान परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी ट्रांसफर होता दिखाया गया है।

'अकाल में उत्सव' उपन्यास की कथावस्तु 'सूखापानी' नामक गाँव से प्रारम्भ होती है जो मध्य प्रदेश का एक आदिवासी गाँव है। इसकी कहानी दो एकड़ जमीन के जोत वाले छोटे किसान रामप्रसाद के इर्द-गिर्द घूमती है। किसान खेतों में रात दिन जीतोड़ मेहनत करता है तभी तो फसलें भी अच्छी होती हैं परन्तु महाजन खलिहान पर ही फसल को उठवा लेता है। अंत में रामप्रसाद बैंक द्वारा लिया गया कर्ज के फर्जीवाड़े का शिकार होता है। ऊपर से प्रकृति की मार से उसकी सारी फसल बर्बाद हो जाती है। बैंक के कर्ज को सुनकर उसे ऐसा सदमा लगता है कि वह आत्महत्या कर लेता है। और अंत में भ्रष्ट शासन तंत्र के चलते उसे पागल सिद्ध कर दिया जाता था।

पंकज सुबीर छोटे-छोटे वाक्यों में पूरा दृश्य खड़ा कर देते हैं। 'कमला की तोड़ी बिक गई, बिकनी ही थी, छोटे जोत किसान की पत्नी के शरीर पर के जेवर क्रमशः घटने के लिए ही होते हैं। और हर घटाव का एक भौतिक अंत शून्य से होता है, घटाव की प्रक्रिया शून्य होने तक जारी रहती है।' 3 इस अपार दुःख में दाम्पत्य का विरल प्रसंग भी है जो बेहत मर्मस्पर्शी है। संवेदना और विचार में संतुलन 'अकाल में उत्सव' की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस उपन्यास में प्रशासन की कथित चालाकियों को बेपटी किया गया है। शासन तंत्र इतना भ्रष्ट है कि किसानों के हित में सरकार द्वारा चलाई गई योजना जिसके अंतर्गत किसान अपना क्रेडिट कार्ड दिखाकर कृषिकार्य हेतु बैंक से लोन के रूप में रूपया ले सकता है।

www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_18.html



Apni Maati
@ApniMaati
#AkrutiKalaSanstha
#KailashPaliya #M
#डाइटल:जमीन से जुड़े :
पालिया का सफर
श्री.Mulaaqaat With
लिक you.tu.be/SXOI
बाकी आनंद ! शुक्रिया।
YouTuber Team@A
(Like, Share & Subs

YouTube @YouTu



Apni Maati
@ApniMaati
#ApniMaati #Pushp
#MulaaqaatWithMa
#डाइटल:एक भारतीय यु
उसकी संजीदा कहानी।
श्री.Mulaaqaat With
लिक you.tu.be/dayU
बाकी आनंद ! शुक्रिया।
YouTuber Team@A
Like Share & Subsc

YouTube @YouTu



Apni Maati
@ApniMaati
#mahtmaGandhi #E
#DrAmbedkar #DrF
#Mah
#DrRi

3/9

9/9/2019

किसान जीवन के संघर्षों की विवेणी/इन्द्रदेव शर्मा - अपनी माटी Apni Maati
समाज में फर्जीवाड़ा इतना हो रहा है कि बैंक अधिकारी और दलाल की मिली भगत से गरीब और भोले भाले किसानों के नाम पर लोन ले लिया करते हैं।

अकाल में उत्सव उपन्यास की कथावस्तु दो खण्डों में चलती है। एक तरफ मुख्यमंत्री के आदेशानुसार भव्य उत्सव के आयोजन की चर्चा हो रही है तो दूसरी तरफ वर्षा, तूफान और ओले पड़ने से किसानों के नष्ट हुए फसल का दृश्य दिखाई दे रहा है। प्रशासनिक अधिकारियों को मंच की राजावट की चिंता ज्यादा रहती है। भारत का अन्नदाता किसान की कोई चिंता नहीं रहती है। वास्तव में यह उपन्यास किसानों के शोषण का रेशे-रेशे को उधेड़ने वाला उपन्यास है जो यह जाहिर करता है कि किसानों की आत्महत्या के पीछे केवल ओला वृष्टि, सूखा और प्रशासनिक निष्पक्षता ही जवाबदार है। इसके पीछे और भी कई कारण हैं जो साफ-साफ दिखाई नहीं देते हैं।

भारतीय किसानों का हृदय इतना सरल और निष्कपट होता है कि वह मनुष्य तथा मानवतर प्राणियों से भी भावनात्मक लगाव रखता है। 'तोड़ी' नामक आभूषण जिसे स्त्रियों पैंरो में पहनती हैं को आधार बनाकर लेखक ने किसानों का जो गहनों के प्रति परंपरागत लगाव होता है उसे बड़े ही हृदयविदारक लहजे में अभिव्यक्त किया है। रामप्रसाद जब तोड़ी बेचने महाजन के पास जाता है वहाँ का दृश्य उसे अपने पुरखों की बनी बनाई इमारत को ढहते दिखाई देता है। तोड़ी पिघल रही है ऐसा लग रहा है कि कोई पदार्थ नहीं बल्कि रामप्रसाद का हृदय पिघल रहा है।

अकाल में उत्सव उपन्यास का ताना बना मुहावरों और कहावतों से बुना गया है। इस उपन्यास को आलोचकों ने अपने अपने तरीके से व्याख्यायित किया है। नासिरा शर्मा ने इसे 'प्रेमचन्द का गाँव एक नई भाषा शैली में फिर से जन्मदा हो उठा' कहा है, महेश कटार ने 'भारतीय किसान के जीवन का शोकगीत', डॉ. पुष्पा दुबे ने 'कंपकंपाती ली और धरधराते धुँएँ की दुख भरी कहानी' कहा, ब्रजेश राजपूत ने 'किसानों के दुःख दर्द का बेचैन करने वाला किस्सा' कहा, ओम शर्मा ने 'आज के किसान की जिंदगी का सच्चा दस्तावेज़' कहा। मेरे हिसाब से यह उपन्यास 'किसान की बदकिस्मती का जीता जागता आईना' है। ऐसा आईना जिसमें किसानों की दयनीयता को देखा जा सकता है। एक बार फिर से पंकज सुबीर ने गंवाई जीवन शैली और किसान आत्महत्या जैसे विषय को कथा साहित्य में पाठकों, आलोचकों और समीक्षकों को सोचने पर मजबूर करता है।

निष्कर्ष- गोदान, फॉस और अकाल में उत्सव इन तीनों उपन्यास में किसानों की संघर्ष की कारुणिक कहानी है किसी में किसान महाजनी या जमींदारी व्यवस्था का शिकार है तो किसी में सरकारी बैंकों से लिया गया कर्ज का। कर्ज की अदायगी न होने के कारण किसान आत्महत्या कर रहा है इन त्रासदियों की घटनाचक्र की सम्पूर्ण सामाजिक विडम्बनाओं के साथ शब्दबद्ध किया गया है। वह सिर्फ हमारी संवेदना को झकझोरता ही नहीं बल्कि उपन्यास को एक कलात्मक ऊँचाई भी प्रदान करता है। देखा जाय तो आज भी सामंती और पूँजीवादी संस्कृति की टकराव में किसानी संस्कृति पिस रही है। इसका इतना बड़ा दुष्परिणाम है यही है कि वर्तमान समय में किसान लाखों की संख्या में आत्महत्या कर रहे हैं।

संदर्भ

1. फॉस, संजीव, पृ. सं - 9
2. फॉस, संजीव, पृ. सं - 153
3. अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, पृ. सं. 107

इन्द्रदेव शर्मा

शोधार्थी, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद मो. 7668904682

Tags व 25 # आलेख # किसान चिन्मयी # किसान विरोधक # नौ आर्थिक रोशन # पोलोनेन्द्र पाठक # रोप

RESPONSIVE ADS HERE

Share This

http://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_18.html

About Unknown

✉ Newer Article

www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_18.html

Older Article

लिक:youtu.be/prEpi



Apni Maati
@ApniMaati
पोमो! आज के परिप्रेक्ष्य
संवाद। बातचीत की है उ
नंदकिशोर। Campus
Management Chitc
share youtube.com



Apni Maati
@ApniMaati
#MulaqaatWithMa
#StoryOfIndianYout

टाइटल: पेंटिंग मेरा पैरा
II Story of Indian Yc
शी: Mulaqaat With
पोमियर समय: 19 Ju
लिक:youtu.be/on_la
बाकी आनंद। शुक्रिया।



Apni Maati
@ApniMaati
youtu.be/4SDDg7Y

YouTube @YouTul



4/9

ISSN No. 2348-6163

साहित्य-सेतु

जनवरी-मार्च, 2019



साहित्य-सेतु

त्रैमासिक

वर्ष : 5 ♦ अंक : 18 ♦ जनवरी-मार्च 2019 ई.

संपादक

डॉ. घनश्याम

निदेशक

हिंदी अकादमी

परामर्शमंडल

डॉ. एम. वेंकटेश्वर

डॉ. बी. सत्यनारायण

डॉ. शुभदा वांजपे

डॉ. अनिता गांगुलि

डॉ. वी. कृष्ण

डॉ. ऋषभदेव शर्मा

सह संपादक

श्रीमती पी. उज्ज्वला वाणी



प्रकाशक

हिन्दी अकादमी

हैदराबाद

I.D. Sharma

* Hindi Academy, Hyderabad -

As per the Xth Schedule the Gazette of India Extraordinary Part-II S.N.50 Dated 01.03.2014.

विषय-क्रम

पृ.सं.

5

संपादकीय

आलेख

- 11 प्रवासी कथा साहित्य में स्त्री जीवन की अंतर कथा - डॉ.एम.वेंकटेश्वर
- 17 विश्व में हिन्दी की महत्ता - डॉ. एम.आंजनेयुलु
- 21 राग कविता का मूल्यांकन - दिनेश कुमार यादव
- 27 दर्द का हृद से गुज़रना है दवा हो जाना - सीताराम गुप्ता
- 31 'ठाकुर का कुआँ, और 'गावँ का कुआँ' कहानी में दलित स्त्री
- सुभाष कुमार
- 36 समकालीन हिन्दी कविता और पर्यावरणीय चिंतन - अमरनाथ प्रजापति
- 40 केदारनाथ सिंह की कविता में लोक और वैश्वीकरण - आज़ाद
- 49 समकालीन हिन्दी आलोचना की समस्या और युवा लेखन का महत्व
- विशाल कुमार सिंह
- 58 असगर वजाहत का उपन्यास 'कैसी आगी लगाई' में सामाजिक चिंतन
- सय्यद ताहेर
- 61 प्राचीन बौद्ध शिक्षा का केन्द्र : नालन्दा - डॉ. मनोज कुमार
- 66 21 वीं सदी का आदिवासी विमर्श और हिन्दी नाटक
- डॉ.करन सिंह ऊटवाल
- 72 "समकालीन महिला कथाकारों की कहानियों में भाषा का बदलता रूप"
- डॉ. आर.सपना
- 74 प्रो.सुवास कुमार की रचनाशीलता के विविध आयाम - वंदना शर्मा
- 78 नागार्जुन का काव्य : सामाजिक सरोकार - कुमारी सलमा असलम
- 84 भूमंडलीकरण के दौर के हिन्दी उपन्यासों में अन्नदाता (किसान) की
करुणगाथा - इन्द्रदेव शर्मा
- 90 वर्चस्ववाद के विरुद्ध फ़ैज़ - प्रियंका

भूमंडलीकरण के दौर के हिन्दी उपन्यासों में अन्नदाता (किसान) की करुणगाथा

- इन्द्रदेव शर्मा

भारत विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं वाला देश है। इस देश की आधी से ज्यादा आबादी आज भी गांवों में निवास करती है। ऐतिहासिक परिपेक्ष्य को देखते हुए यहाँ समय-समय पर राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उथल-पुथल होता रहा है। किसी भी देश की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था तभी सुदृढ़ या मजबूत रहती है जब उस देश की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ या मजबूत होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि है। कृषि का कार्य भारत की आधी आबादी से ज्यादा ग्रामीण जनता करती है। जिसकी वजह से प्रधानतः भारत गांवों का देश कहलाता है। कृषि उत्पादन का कार्य करने वाली ग्रामीण जनता को सामान्यतः किसान कहा जाता है। वह (किसान) तमाम चिंताओं को लिए दिन-रात कड़ी मेहनत करता रहता है। भारतीय किसान अत्यंत परिश्रमी और संघर्षशील है। वही किसान आज तमाम चिंताओं और समस्याओं से घिरा हुआ है। भारत को आजादी मिलने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ हेतु कई योजनाएँ चलायी गईं लेकिन उस गति से सुधार नहीं हुआ जिस गति से होना चाहिए। वर्तमान समय में देश किसान आन्दोलनों और कर्जा माफी की मांग के दौर से गुजर रहा है। कहीं न कहीं किसान अपनी समस्याओं को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं। स्थिति यह हो गई है कि किसानों की मांगों को सरकार द्वारा अनसुनी करने के कारण दिल्ली के जंतर मंतर नामक स्थान पर हुए विशाल आन्दोलन में किसान अपने मल-मूत्र खाने पीने की बात कर रहे होते हैं।

बहरहाल किसान अपनी जायज मांगों को समय-समय पर उठाता रहा है। नब्बे दशक के बाद भूमंडलीकरण की आंधी ने भारतीय गांवों को भी अपने गिरफ्त में लेना शुरू किया। किसी भी देश या राज्य के विकास में किसानों और मजदूरों जैसे तमाम मेहनतकशों की अहम भूमिका होती है। जहाँ तक विमर्शों की बात की जाय तो स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श और आदिवासी विमर्श के बाद साहित्यिक इतिहास में किसान विमर्श पाठकों और आलोचकों के सामने श्रमशील विमर्श के रूप में सामने आता है क्योंकि यह विमर्श सभी धार्मिक समुदायों का ऐसा समुच्चय है जो सभी कौम, धर्म, जाति और समुदायों के व्यक्तियों से बना है। जिसका सम्बन्ध सीधे-सीधे उस देश की खेती-बाड़ी तथा अर्थव्यवस्था से होता है। अक्सर यह कहा जाता है कि भारत कृषि प्रधान देश है। हाँ बात तो सही है पर किसी समय भारत कृषि प्रधान देश रहा होगा लेकिन आज भारत कृषि प्रधान देश नहीं बल्कि विदेशी कम्पनी प्रधान हो गया है जो किसानों से किसानों छीन रहा है।

“मुद्दा ऐ मेरा उछाल
संसद से कर सवाल
बता हम कहां जाएं।
खेतों का पानी पी गई संसद डकार कर
कंधे पर ले कुदाल बता हम कहां जाएं।

यहाँ किसान को अन्नदाता कहा जाता है। वैश्वीकरण के दौर में सरकार द्वारा अनेक योजनाओं को लागू करने के बावजूद भी कृषकों की स्थिति बहुत दयनीय है। वह किसान जो शहरवासियों के जीवन का आधार स्तंभ है। वही किसान आज अपनी समस्याओं का निवारण न होने के कारण आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। किसानों की आत्महत्या करने के तो कारण कई हो सकते हैं परंतु सबसे मुख्य और भयावह कारण है सरकार द्वारा कृषि हेतु किए गए कर्ज को समय पर न चुका पाना और जमींदारों, सरकारी प्यादों द्वारा बेरहमी से किया गया शोषण है। इसी सन्दर्भ में **अदम गोंडवी** की एक गजल है जो किसानों और गरीबों की स्थिति को बयां करती है। जो इस प्रकार है-

आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है जिन्दगी।
हम गरीबों की नजर में एक कहर है जिन्दगी॥

हिन्दी उपन्यास के इतिहास में जहाँ तक किसानों की दयनीय स्थिति, उनकी समस्याओं तथा किसानों के प्रति हो रहे शोषण की अभिव्यक्ति का प्रश्न है तो मुंशी प्रेमचंद का नाम लिया जाता है। इन्होंने अपने उपन्यास ‘गोदान’ और ‘प्रेमाश्रम’ में सामन्ती और महाजनी व्यवस्था का शिकार किसानों की दयनीय स्थितियों का चित्रण किया है। मध्यकालीन सामाजिक संरचना में लगान वसूली, नजराना, अबवाब, हारी बेगारी के शोषणकारी मुद्दे का चित्रण किया गया है। हालांकि प्रेमचन्द से पहले किसानों को केंद्र बनाकर लिखा गया पर कथा साहित्य में नहीं बल्कि कविता जैसी विधाओं में। कबीरदास और तुलसीदास जैसे भक्तिकालीन कवियों में अपनी कविता में किसानों की स्थिति को बयां किया है। इन कवियों ने किसानों की स्थितियों को रेखांकित करने का थोड़ा-बहुत प्रयास किया था। कबीर ने एक आध्यात्मिक पद में लगान वसूलने वालों को बहुत ही निर्दयी बताया है।

हिन्दी साहित्य से इतर खासकर कथा साहित्य में कृषकों की केन्द्रीय समस्या को आधार बनाकर प्रेमचन्द से बहुत पहले उड़िया भाषा में **फकीर मोहन सेनापति** का उपन्यास ‘छमाण आठ गुंठ’ अर्थात् ‘छः बीघा जमीन’ में शिशु विहीन जुलाहे किसान दम्पती की कथा कही गई है। जिसमें एक गाँव के साहूकार इस दम्पती को पीड़ित और प्रताड़ित किया करता था। परमानन्द श्रीवास्तव ‘उपन्यास का पुनर्जन्म’ पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- “फकीर मोहन सेनापति के उपन्यास ‘छमाण आठ गुंठ’ प्रेमचन्द से बहुत पहले एक शिशु विहीन जुलाहे दम्पती की कथा है। जिसे एक गाँव के साहूकार ने पीड़ित और आतंकित किया था। उस्मानिया में गोपीनाथ महंती का उपन्यास ‘कृषक के वंशज’ भारतीय यथार्थवादी परंपरा का उपन्यास है। बंगला में तारा शंकर बंदोपाध्याय,

शिवमूर्ति बंधोपाध्याय, मानिक बंधोपाध्याय के उपन्यासों में तनाव भरे भारतीय सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है।¹¹ भारतीय उपन्यास में यथार्थवाद और उपन्यास का स्वतंत्र रूप तब विकसित हुआ जब उपन्यास रचना के केंद्र में किसान आया, जो भारत के अभिन्न अंग है। किसान जीवन से जुड़कर ही भारतीय उपन्यास के सच्ची भारतीयता विकसित हुई और उपन्यास राष्ट्रीय जीवन की महागाथा का प्रतिनिधि साहित्य रूप बना। किसान भारतीय समाज का मेरुदंड है फिर भी यह वर्ग शोषण और उत्पीड़न का शिकार भी है।

किसान केन्द्रित उपन्यास के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि- “भारतीय उपन्यास को किसान जीवन की महागाथा बनाने की परम्परा का आरम्भ उड़िया के कथाकार **फकीर मोहन सेनापति** (1943-1918) के उपन्यास **‘छमाड़ आठ गुंठ’** (1897) से होता है। उड़िया के समालोचक मानसिंह ने यह सवाल ठीक ही पूछा है कि फकीर मोहन से पहले किस भारतीय लेखक ने गाँव के फटेहाल और मूर्ख लोगों को अपनी रचनाओं का नायक बनाया है? उनकी रचनाओं का सबसे जीवंत पात्र नाई, जुलाहा, खेतिहर मजदूर और अछूत हैं। उन्होंने साहित्य की दुनिया में आम आदमी और औरत को महत्व प्रदान किया। इस उपन्यास के साथ उड़िया में उपन्यास का उदय हुआ और भारतीय उपन्यास में किसान जीवन के यथार्थवादी उपन्यास की परम्परा का सूत्रपात भी हुआ। ‘छमाड़ आठ गुंठ’ में गरीबों और शोषितों से गहरी सहानुभूति है और जमींदार तथा नये धनिकों से तीखी घृणा है। शोषितों पर जगह-जगह आक्रमण भी है। उपन्यास में उस प्रक्रिया की ओर संकेत भी है जिसमें गरीबी आम आदमी को अमानवीय और क्रूर बना देती है। ‘छमाड़ आठ गुंठ’ में जहां तहां भाग्यवाद की झलक भी है, जिसकी कुछ लोगों ने आलोचना की है। लेकिन यह भारतीय किसान की ऐसी विशेषता है, जिसकी उपेक्षा प्रेमचन्द भी नहीं कर पाये।¹² उड़िया उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति के बाद भारतीय उपन्यास में किसान जीवन के यथार्थवादी चित्रण की परम्परा और कला को प्रेमचन्द ने विकसित किया। प्रेमचन्द ने भारतीय उपन्यास और उसकी यथार्थवादी कला को अधिक उन्नत बनाया। जिस समय प्रेमचन्द साहित्य लेखन कर रहे थे उस समय भारतीय समाज सामंतवाद, पूंजीवाद और विदेशी साम्राज्यवाद से ग्रस्त था। तो उनके लेखन में समसामयिक परिस्थितियों का आना स्वाभाविक था।

आज का भारत प्रेमचन्द के भारत से काफी बदला है। मनुष्य अब उतना और वैसा सामाजिक नहीं रहा जैसा पहले था। समाज में आये इन परिवर्तनों का असर उपन्यासकारों के लेखन में भी दिखाई देता है। नब्बे दशक में भारत सरकार द्वारा लागू की गई ‘नई आर्थिक नीति’ (1991) अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारतीय समाज के निम्न तबके से उच्च तबकों तक एक परिवर्तन दिखाई दिया और किसानों के जीवन शैली में भी बहुत बदलाव दिखाई दिया। खेती करने का तरीके, नियम और कायदे पूरी तरह से बदल गया। एक वैश्विक ग्राम या बाजारवाद का प्रभाव समाज में दिखाई दे रहा है। इसी समय उदारवाद और नव-उदारवाद का दौर आरम्भ होता है और किस तरह साहित्य लेखन में भी एक नई शैली पनपती है। यह लेखन शैली इस समय के उपन्यासकारों में दृष्टिगत होती है। स्वतंत्रता के बाद सामंती व्यवस्था का संवैधानिक तरीके से अंत कर दिया गया फिर भी किसानों

का शोषण होता रहा। उदारीकरण, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण के कारण कार्पोरेशन पूंजी की ललचाई नजरें नए ढंग से खेतिहर समाज पर गडनी शुरू हो गई। अब नई व्यवस्थाओं के अनुसार पूंजीपति ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन खरीद सकेंगे। कार्पोरेट कंपनियों का लगातार विस्तार हो रहा है। किसानों के उपजाऊ जमीनों को पूंजीपतियों द्वारा अपार्टमेंट्स में बदला जा रहा है।

सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति के संवर्धन और विकास के लिए अर्थ(रूपया) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत कृषि प्रधान देश माना जाता है। आज भी सत्तर फीसदी लोग जीवन यापन के लिए कृषि को आधार बनाया है। समय की मांग के अनुसार कृषि के उत्पादन में परिवर्तन होना लाजमी है। इंग्लैंड से भारत तक का औद्योगिक क्रांति का सफ़र और भारत में हरित क्रांति होने से कृषि उत्पादन में काफी बदलाव आया है परन्तु किसान किसी न किसी रूप से शोषित और प्रताड़ित रहा है। जिसकी अभिव्यक्ति उपन्यासकारों ने की है। किसानों के जीवन को केन्द्रीय बिंदु बनाकर प्रेमचन्द से कथाकार संजीव और पंकज सुबीर तक एक लम्बी परम्परा रही है। कमलकांत त्रिपाठी का पाही घर-(1991), बेदखल-(1997), हरनोट हिडिम्ब-(2002), राजू शर्मा का हलफनामा- (2006), कशीनाथ सिंह-रेहन पर रग्धू-(2008), शिवमूर्ति - आखिरी छलांग- (2008), प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी का अधबुनी रस्सी एक परिकथा-(2009), भगवान दास मोरवाल का नरक मसीहा-(2014), मदन मोहन का 'जहां तक जंगल था'-(2012), सत्यनारायण पटेल का 'गाँव भीतर गाँव' -(2015), संजीव का 'फाँस'-(2015), पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' -(2017)।

उपर्युक्त सभी उपन्यासों में किसानों की स्थितियों की चर्चा करना तो सम्भव नहीं है फिर भी कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों में किसानों की स्थिति कुछ इस प्रकार है- सच्चिदानंद चतुर्वेदी द्वारा लिखित उपन्यास 'अधबुनी रस्सी एक परिकथा' आंचलिक उपन्यास की एक ऐसी कड़ी है जिसमें ग्रामीण परिवेश, ग्राम कथाओं तथा किसान जीवन के चित्रण बखूबी किया गया है। वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से इसमें नयेपन को निखारा गया है। उपन्यास की कथावस्तु का ताना-बाना 'डमरुआ' नामक गाँव को लेकर बुना गया है। इस उपन्यास की कथावस्तु दो खण्डों में चलती है। जहाँ एक तरफ ब्राह्मणों का टोला है तो वहीं दूसरी तरफ मजदूर और किसानों का।

जिसमें किसान की जमीन से सम्बंधित 'चकबंदी' व्यवस्था को लेकर चित्रांकन किया गया है। जमींदारों का दबदबा या रोब किस प्रकार गरीब किसानों पर रहता है। ऊँचे ओहदे के किसान छोटे किसानों की जमीन को चकबंदी का हवाला देकर हड़पना चाहते हैं और कामयाब भी हो रहे हैं। लेखक ने 'चकबंदी व्यवस्था' के माध्यम से भ्रष्ट शासन तंत्र को बड़े सीधे और सपाट शब्दों से उजागर किया है। किस प्रकार अपने मन मर्जी का अधिकारी न मिलने के कारण पूरा बामन टोला चिंतित है- "सी। ओ। बामन नहीं है चकबंदी में बामनों की लुटिया डूबी समझो"¹³। फिर भी लेखक हाशियाकृत समाज के प्रति चिंता व्यक्त की है।

'फाँस' उपन्यास कथाकार संजीव द्वारा लिखित है जो महाराष्ट्र राज्य के विदर्भ क्षेत्र में निवास करने वाले किसानों के जीवन तथा उनके जीवन में आने वाली तमाम विनाशकारी समस्याओं पर आधारित है। यह उपन्यास सबका पेट भरने वाले और तन ढकने वाले देश के लाखों किसानों

द्वारा किए जा रहे आत्महत्या पर केन्द्रित है। देश के लाखों किसानों और उनके परिवारों जिनकी हत्या या आत्महत्या को हम रोक नहीं पा रहे हैं। फाँस उपन्यास खतरे की घंटी भी है और आत्महत्या के विरुद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और जमीनी संजीवनी का संकल्प भी। दरअसल यह उपन्यास कथाकार संजीव द्वारा लिखे गए विषय किसान आत्महत्या पर केन्द्रित अनेक वर्षों के शोध का परिणाम है।

यह कहा जाता रहा है कि भारत किसानों का देश है और भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। यहाँ आधे से अधिक जनता कृषि पर निर्भर रहती है। विगत कुछ दशकों से इस देश में किसान आत्महत्या तेजी से हो रही है। परिस्थितिवश किसान लगातार आत्महत्या कर रहे हैं। वैरहाल यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कथाकार संजीव का यह उपन्यास भारतीय कृषक समस्या की दारुण दशा पर केन्द्रित है। 'फाँस' उपन्यास के माध्यम से संजीव ने उन सभी पहलुओं को दिखाने की कोशिश करते हैं जिन पहलुओं से केवल विदर्भ का किसान ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय किसानों को गुजरना पड़ रहा है।

इसी कड़ी या परम्परा को उपन्यास जगत में आगे बढ़ाने का काम पंकज सुबीर ने किया है। 'अकाल में उत्सव' इनका किसान समस्या पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास में चित्रित गाँव 'सूखापानी' का एक अजीब नाम है। यानी किसान की फसल को अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों ही स्थिति में नुकसान है। किसान जीवन सम्बन्धी समस्याओं का केन्द्रीय बिंदु बनाकर यद्यपि कई उपन्यास लिखे गए, किसी उपन्यास में जमीन बेदखली की समस्या तो किसी में कास्तकारों द्वारा किया जा रहा बेरहमी से शोषण। इन उपन्यासों में कर्ज जैसी समस्या को किसान परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी ट्रांसफर होता दिखाया गया है। किसान ही आत्महत्या के कारणों की बखूबी कलात्मक और भावनात्मक स्तर पर अद्भुत तरीके से लेखक द्वारा व्यक्त किया गया है। 'आखिरी छलांग' उपन्यास शिवमूर्ति का इसी आर्थिक परिस्थितियों की दीनता का जीवन्त दस्तावेज है। इसमें किसान जीवन के संघर्षों की त्रासदी को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। इसकी कथावस्तु का आधार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ग्रामांचल है। इसका नायक पहलवान एक किसान है। उसके सामने विरासत में मिली तथा नई विकास नीतियों के कारण निर्मित अनेक समस्याएँ हैं। आज किसानों के समक्ष गरीबी, अशिक्षा, भुखमरी एवं आत्महत्या जैसी अनेक समस्याएँ हैं।

“भारतीय कृषि मानसून का जुआ है

जिसके रास्ते में धुआं ही धुआं है

बारिश कभी ज्यादा कभी कम होती है

ये घटनाएँ अक्सर होती ही रहती है

कभी माँ, कभी बेटी तो कभी धरती स्वयं रोती है।”

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. उपन्यास का पुनर्जन्म - परमानन्द श्रीवास्तव

2. उपन्यास और लोकतंत्र - मैनेजर पाण्डेय

3.अधबुनी रस्सी एक परिकथा, सच्चिदानंद चतुर्वेदी

4.फ्रांस - संजीव

5.आखिरी छलांग - शिवमूर्ति

6.अकाल में उत्सव - पंकज सुबीर

सन्दर्भ :-

1.उपन्यास का पुनर्जन्म - परमानन्द श्रीवास्तव, पृ.सं.7

2.उपन्यास और लोक तंत्र, मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं.88

3.अधबुनी रस्सी एक परिकथा, सच्चिदानंद चतुर्वेदी, पृ.सं.79

....

संपर्क-सूत्र :- शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500 046.

मो:7668904682

शोध प्रपत्र

॥ श्रम एव जयते ॥
दे.भ.बाबासाहेब भाऊसाहेब खजिरे शिक्षण संस्थेचे,

नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स अँड कॉमर्स, इचलकरंजी.
नॅक पुनर्मूल्यांकन 'B' (2.80 स्कोर) (शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर संलग्न)

हिंदी विभाग एवं
शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद के
संयुक्त तत्वावधान में परिषद का
पंचम अधिवेशन तथा एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी
शनिवार दि. 07 दिसंबर, 2019

“इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श” (सन-2010 से अब तक)

प्रमाणपत्र

प्रा./डॉ./श्री./श्रीमती इन्द्रदेव शर्मा
हैदराबाद को एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में मीडिअमनक/सम्राट्यक्ष/विमर्शतज्ञ/आलेख प्रस्तोता
(विषय किसान से मजदूर बना भारत का अन्नदाता) प्रतिभागी/संयोजन समिति सदस्य
के रूप में उपस्थित रहने के उपलक्ष्य में यह प्रमाणपत्र दिया जाता है।

डॉ. रघुनाथ देसाई
अध्यक्ष
शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद

डॉ. सुनील बनसोडे
सचिव
शिवाजी विद्यापीठ हिंदी प्राध्यापक परिषद

डॉ. माधव मुंडकर
संयोजक
अध्यक्ष, हिंदी विभाग

डॉ. पुरंधर नारें
प्राचार्य, नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट्स
अँड कॉमर्स, इचलकरंजी.

श्री. बाबासाहेब भाऊसाहेब खजिरे शिक्षण संस्था



Rashtriya Shikshan Prasarak Mandal Beed's
LOKMANYA TILAK MAHAVIDYALAYA, WADWANI,
Arts, Science & Commerce

Tq. Wadwani, Dist. Beed- Pin- 431144 Maharashtra

NAAC Accredited 'B' Grade

Affiliated to- Dr. Babasaheb Ambedkar Marathwada University, Aurangabad (M.S.)

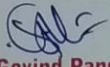


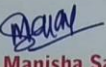
• **CERTIFICATE** •

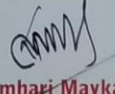
This is to certify that Prof./Dr./Mr./Ms. इन्द्रदेव शर्मा
of केन्द्रीय विश्वविद्यालय, देहली has
attended /Participated as a resource person / Chairperson / Delegate / Guest of Honour in One Day
National seminar on recent trends in Literature organized by IQAC and Departments of Marathi, Hindi,
English on 7 February 2020 He/She has also Presented a Paper entitled वैश्विकता के दौर के
हिंदी उपन्यासों में महिला किसानों का संघर्ष.

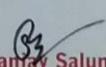
Venue : Wadwani, Dist. Beed (M.S.)

Date : 07 February 2020


Dr. Govind Pandav
Dept. of Hindi


Dr. Manisha Sasane
Dept. of English


Dr. Ramhari Maykar
Dept. of Marathi


Sanjay Salunke
IQAC Coordinator


Dr. Kishan Pawar
Principal